सम्मेलन-पत्रिका

[त्रैमासिक]

[भाग—४३, संख्या—१]
पौष शुक्ल प्रतिपदा, सम्वत् २०१३

सम्पादक
रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

वार्षिक आठ रुपये | हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग | एक प्रति दो रुपये

विषय-सूची

श्री देवर्षि सनाढ्य एम० ए०

हिन्दी के पौराणिक नाटकों का अध्ययन (१)

वैदिक--साहित्य के उपरान्त भारतीय साहित्य मे पौराणिक साहित्य का महत्त्व विशेष रूप से माना गया है। कुछ स्थानो पर तो पुराणो को वेदो से भी महत्त्वपूर्ण और प्राचीन माना गया है। मत्स्य पुराण मे लिखा है —

पुराण सर्व शास्त्राणा प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तर च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः[१]॥

—सब शास्त्रो से पहिले ब्रह्मा जी ने पुराणो को कहा है, वेद तो इनके बाद उनके मुख से निकले।

यह कथन एक पुराण मे आया कथन ही है और इस कारण यह भी सम्भव होना समीचीन लगता है कि यह एक पुराणो की अतिप्रशसा मात्र हो, किन्तु यह मान लेने में किसी को आपत्ति नही है कि वेदो से प्राचीन न होने पर भी पौराणिक साहित्य कम महत्त्वपूर्ण नही है। अनेक स्थानो[२] पर पुराण और वेद का एक साथ आदर पूर्वक उल्लेख हुआ है और पुराणो को पचम वेद माना गया है। अनेक विद्वानो[३] ने पुराणो को ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य निधि माना है और "भारतीय इतिहास, सभ्यता और सस्कृति की दृष्टि से पुराणो" का विशेष महत्त्व स्वीकार किया है।

यह पौराणिक साहित्य सख्या की दृष्टि से भी पर्याप्त विशाल है। अठारह पुराण, अठारह उपपुराण, जैन पुराण-उपपुराण, महाभारत, रामायण आदि सभी पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत आते है, पुराणो की सख्या भी आज अठारह तक ही सीमित नही है। इस पुराण-साहित्य मे वेद, श्रुति, स्मृति के पुराने सिद्धान्तो को नया करके लाया गया है। अनेक मनोहर और दिव्य कथाओ के सहारे पुराण-लेखको ने जब-तब आध्यात्मिक और मानसिक तत्त्वो को रूपकात्मक शैली में व्यक्त किया है। महाभारत[४] के अनुसार पुराणो मे दिव्यकथाओ और परम बुद्धिमान् व्यक्तियो का वर्णन है।

---

१. मत्स्य पुराण, अध्याय ५३, श्लोक ३।

२ महाभारत, आदि पर्व, अध्याय ५ तथा छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।१।

३. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य प्र० सं० पृ० १६६।

४. महाभारत, आदि पर्व, अ० ५, श्लोक २।

परम बुद्धिमान् व्यक्तियो के इस दिव्य पौराणिक कथा-साहित्य ने भारतीय कवियों को सदा से प्रेरणा दी है। पुराणो की दिव्य कथाओ को लेकर भारत में अनेक श्रव्य और दृश्य काव्य (नाटक) रचे गये है। हिन्दी ही नही, भारतीय आर्य भाषाओं की जननी सस्कृत और दूसरी भारतीय भाषाओ में इन पुराणो की प्रेरणामयी कथाओ की नीव पर अनेक नाटक रचे गये हैं। पौराणिक कथा-साहित्य को इसीलिए प्रेरणा का साहित्य कहना उचित प्रतीत होता है। प्राचीन विश्वासो के अनुसार पौराणिक साहित्य के प्रधान ग्रन्थ महाभारत मे "सब कुछ" है। जो उसमें है, वही सब कही है। जो उसमे नही है, वह कही नही है —

यदिहास्ति तत् सर्वत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।

पौराणिक नाटको की परम्परा

(१) संस्कृत

जैसा कि कहा गया, हिन्दी ही नही, सस्कृत और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओ मे पौराणिक कथाओ को लेकर बहुत-से नाटको की रचना हुई है। सस्कृत और अन्य भाषाओ के नाटकीय इतिहास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट पता चलता है कि प्राय प्रत्येक भारतीय भाषा मे नाटक-रचना का श्रीगणेश पौराणिक नाटक से हुआ है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थो में जिन नाटको का उल्लेख मिलता है, वे सभी पौराणिक कथा के आधार पर रचे गये है। पतजलि (काल ई० पू० २ शती) के "महाभाष्य"[1] मे "कसवध" और "बलि वन्धन" नाम के दो नाटको का उल्लेख हुआ है, नाट्य-शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाली प्राचीनतम पुस्तक भरत के "नाट्य-शास्त्र" में "अमृत-मन्थन" और "त्रिपुरदाह" नामक दो नाटको के अभिनय होने का उल्लेख हुआ है। ये ही वे नाटक है, जिनका भारतीय साहित्य में सबसे पुराना उल्लेख मिलता है। यह स्पष्ट ही है कि इनकी कथा का आधार पौराणिक कथाएँ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नाटक को सब से प्रथम शरीर पाने का अवसर पुराणो से ही मिला है, यह दूसरी बात है कि सवाद रूप मे नाटक-रचना के आदि बीज वेदो मे भी हो।

सस्कृत मे पौराणिक नाटको की एक लम्बी परम्परा है, परन्तु उनमे सब प्राप्त नही होते, बहुतो का तो उल्लेख मात्र ही लक्षण-ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। फिर भी जितने पौराणिक नाटक प्राप्त होते है, वे इस तथ्य का निर्देश करने को पर्याप्त है कि सस्कृत-नाटक-ससार में पौरा-णिक कथा का योग अत्यधिक है। सस्कृत के सबसे प्राचीन माने गये नाटककार भास के तेरह नाटको में नौ का आधार पौराणिक कथा-साहित्य है। विश्व विख्यात भारतीय नाटककार कालि-दास के तीन नाटको मे दो पौराणिक नाटक है। यही हाल भवभूति का है। उनके तीन नाटकों

---

१. महाभाष्य, अ० ३, पा० १, आ० २, सू० २६।

२ नाट्यशास्त्र, अ० ४, श्लोक २ और १०।

३. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६।

में दो पौराणिक हैं। कालिदास का सर्वश्रेष्ठ नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" माना जाता है, जिसका आधार महाभारत[1] है, इसी प्रकार पौराणिक कथा को लेकर रचे गये नाटक "उत्तर रामचरितम्" मे सबसे अधिक सफलता मिली है :—

उत्तरेरामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पौराणिक कथावस्तु को आधार बना कर नाटक लिखने में सस्कृत नाटककार अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं।

संस्कृत के पौराणिक नाटको में भास, कालिदास तथा भवभूति के नाटको के अतिरिक्त भट्ट-नारायण का "वेणी-सहार" (आनुमानिक काल ई० ८०० के पूर्व), मुरारि का "अनर्घ राघव" (ई० ८५० के लगभग), राजशेखर का "बाल रामायण" (९०० ई०) क्षेमीश्वर का "चण्ड-कौशिक", मधुसूदन मिश्र और दामोदर मिश्र के "हनुमन्नाटक", जयदेव का "प्रसन्नराघव" तथा धीर नाग अथवा दिङ्नाग का "कुन्दमाला" आदि प्रसिद्ध नाटक हैं।

सस्कृत के ये विभिन्न पौराणिक नाटक महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों से कथा ग्रहण करके साहित्य-जगत् मे आये है, किन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि इनकी रचना मे इनके मूल आधार पर विशेष ध्यान दिया गया है, नाटककारो ने मूल पौराणिक कथा में इच्छानुसार-परिवर्तन, परिवर्द्धन किया है और अपना उद्देश्य सिद्ध कर लिया है। नाटककारो ने तो बस मूल आधार से एक स्फुलिग ले लिया है और अपनी प्रतिभा के तीव्र समीरण मे उसे सुलगाकर एक दिव्यज्योति मे परिवर्तित कर दिया है। वस्तुत सस्कृत मे नाटक-वस्तु तो गौण है, मुख्य तो रस है, जिसकी अभिव्यक्ति नाटककार का मुख्य उद्देश्य रहा है।[2]

सस्कृत नाटको की मूल कथा मे यद्यपि परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य रसानुभूति को तीव्र करना ही है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी परिवर्तन के कारण रहे है—ये परिवर्तन कभी "चतुर्वर्गफल प्राप्ति" के लिए किये गये, कभी किसी पात्र विशेष के प्रति परम्परास्थित मनोभावना को परि-वर्तित करने के लिए किये गये। कालिदास के "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" मे मूल महाभारतीय कथा से पर्याप्त परिवर्तन तथा परिवर्द्धन है—इसके मूल मे सर्वप्रथम उद्देश्य रसानुभूति को तीव्र करना तो है किन्तु प्रेम की मनोरम व्याख्या करना और भारतीय नरेश के गौरव तथा भारतीय सस्कृति और मर्यादा का मनोरम रूप प्रस्तुत करना भी इस परिवर्तन के उद्देश्य हैं। भास के "प्रतिभा" और भवभूति के "महावीर चरित" मे कैकेयी का चरित्र निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा की गयी है। जयदेव के "प्रसन्नराघव" मे रावण को अधिक मानवता से देखने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य रसानुभूति को तीव्र करना तथा अधर्म पर धर्म की विजय ही है। नाटक एक प्रकार का काव्य ही है—उसे "दृश्य-काव्य" कहा गया है—और काव्य का उद्देश्य ही प्राचीन आचार्यों ने अल्पधी जनो को भी सुखपूर्वक धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति स्वीकार

---

१. महाभारत, आदि पर्व अ० २१—२५।

२. ए० बी० कीथ सस्कृत ड्रामा पृ० २७७ तथा ३१६।

किया है।[1] भरत मुनि ने भी दुःखी, श्रमपीडित, शोकार्त तपस्विजनो की विश्रान्ति के लिए नाटक की उत्पत्ति स्वीकार की है। साथ ही यह भी बताया है कि नाटक धर्म, यश, आयु, हित, बुद्धि और विनोद का कारण होता है।[2]

इसी कारण ग्रीक ट्रेजेडी से सस्कृत-नाटक की समानता नही की जा सकती। सस्कृत में, भारतीय कला में, मानव जीवन को जैसे का तैसा चित्रित करना नही माना गया,मानव-जीवन को अधिक से अधिक अभिनय मे उतार कर उसमे जो नही है, उदाहरण प्रस्तुत कर, उसे प्राप्त करने की भावना को तीव्र करना नाटक का उद्देश्य स्वीकार किया गया। सस्कृत नाटको की कथा मे जो परिवर्तन किये गये, वे मानव-जीवन को कलात्मक रूप से ऊँचा उठाने के लिए ही किये गये। यहाँ कभी धार्मिक अधार्मिक से नही हारा, पुण्य के सम्मुख पाप सदा नतमस्तक रहा, सत्य बराबर असत्य को पराजित करता रहा। गुणी, धार्मिक, तपस्वी सदा जीता, सदा उसकी विजय का घोष सस्कृत के नाटककार अपनी रसमयीवाणी मे करते रहे——इसी कारण बराबर सस्कृत के पौराणिक नाटको मे ही नही, अन्य विषयक नाटको मे भी सत् की विजय और असत् की पराजय प्रदर्शित की गयी है।

सस्कृत से आरम्भ हुई पौराणिक नाटको की परम्परा सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ मे आयी है, किन्तु सस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाओ के बीच प्राकृत और अपभ्रश भाषाओ का एक विस्तृत क्षेत्र है। नाटक-रचना को ध्यान मे रखते हुए यह क्षेत्र समतल मैदान नही, एक बडी गहरी खाई है। इन भाषाओ मे सबद्ध नाट्य-रचना नही प्राप्त होती——अब तक तो ऐसा ही विश्वास किया जाता है कि शायद इन भाषाओ मे बहुत कम नाटक-जैसी रचना हुई। प्राकृत मे तो "कर्पूर मजरी" आदि अन्य विषयक नाटक लिये भी गये और सस्कृत के साथ नीच पात्र और स्त्री पात्रो मे प्रयुक्त होकर वह तो सस्कृत-नाटकों का एक अग ही बन गयी——परन्तु अपभ्रश में नाटको का अन्वेषण करने पर नाटक-रचना के नाम पर जो कुछ मिला, वह रासक और रास-ग्रंथ है। आज वे श्रव्य काव्य ही प्रतीत होते है, हाँ कभी इनमे जनता को विमुग्ध करने की अभिनय शक्ति थी, ऐसा कुछ विद्वानो का विश्वास[3] है। परन्तु उस अभिनय शक्ति का विकास आधुनिक रास और स्वाग के रूप मे हुआ है।

(२) बंगला

सस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाओ के बीच के इस विषम मैदान को पार कर जब हम इस पार आते है तो हिन्दी-नाटक के अध्येता की दृष्टि सबसे पूर्व बगला-नाट्य-ससार पर जाती है। बगला का नाट्य-साहित्य उच्च श्रेणी का माना जाता है। पौराणिक नाटको की परम्परा

---

१. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परि० १, कारिका २।

२. नाट्यशास्त्र, अ० १, श्लोक ११४-११५।

३. डॉ०दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास (प्र० स०), प्राक्कथन पृ० २।

बंगला में भी कम नही है। बगाली-साहित्य का आरम्भ ही पौराणिक गाथा से हुआ है। बगाली-साहित्य का सर्वप्रथम प्राप्त ग्रथ ८ वी शताब्दी में अभिनन्द द्वारा संस्कृत में रचित "राम-चरित" है। दूसरा प्राप्त ग्रथ भी सस्कृत मे ही है। यह भी पौराणिक गाथा को लेकर लिखा गया है—इसका नाम भी "राम-चरित्र" है। इसके कवि सध्याकर नन्दी है, जो पालवश के राजा परमाल (दशम शताब्दी) के समय में थे।

बगला मे नाटकों की उत्पत्ति उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में हुई है और बीसवी शताब्दी तक नाट्य-कला का विकास होता रहा है, परन्तु नाटकीयता, गीत, नृत्य आदि की चर्चा बारहवी शताब्दी के चर्या पदो म प्राप्त होती है और पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी के कृष्ण-सम्बन्धी कीर्तन-पदो मे कथोपकथन[1] भी प्राप्त होने लगते है। ये कथोपकथन पौराणिक नायक कृष्ण को लेकर है। चैतन्य महाप्रभु के समय और उनके उपरान्तकी चरित-गाथाओ मे स्पष्ट रूप से नाट्य-तत्व का समावेश मिलता है—अवश्य यह कथोपकथन पद्य मे है—कहा जाता है, चैतन्य महाप्रभु ने स्वय "रुक्मिणी-हरण" में अभिनय किया था।[2] ये कथोपकथन ही धीरे-धीरे "झूमर" के रूप मे परिवर्तित हुए और "झूमर" समय पाकर "यात्रा" के रूप मे बदले। ये "यात्राएँ", जिन्हें हिन्दी, स्वाँग या रास मे मिलती-जुलती कहा जा सकता है, बगला नाटक की जननी है, जिन्होने रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणो की आख्यायिकाओ को नाट्य-रूप मे प्रस्तुत कर बगाल के जन-मन को बहुत दिनो तक आनन्द-सागर मे आप्लावित किया। इन तथ्यो पर दृष्टिपात करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि बगला-नाट्य का आरभ भी पौराणिक गाथाओ से ही हुआ है।

बगला-नाटको के प्रणयन मे उनकी अभिनेयता का योग पर्याप्त रहा है। "यात्राएँ", "नाट्य-मन्दिरो" मे अभिनीत होती थी, और इन्ही के बहाने ग्राम-गोष्ठियो मे रामकृष्ण का नाम सुन पडता था। आधुनिक बगला-नाटको की समृद्धि मे भी रगमच का बडा हाथ रहा है। नाटको के विकास मे रगमच प्रतिष्ठा का योग कभी भुलाया ही नही जा सकता।

अठारहवी शताब्दी मे एक रूसी कला प्रेमी हेरासिम लेवेडक ने कलकत्ता मे एक रगमंच की स्थापना की—लेवेडक की रगशाला को भारतीय अथवा बगला रंगमच का नाम देना ठीक नही लगता, क्योकि एक तो उन्होने जो दो नाटक "दि डिसगाइस" तथा "लव इज दी बेस्ट डाक्टर"—खेले, वे बगला अथवा भारतीय नाटक नही थे, विदेशी अनुवाद थे। दूसरे वे अपनी नाट्य-शाला को बन्द करके विलायत चले गये। बगाल का अपना रगमच १८३१ ई० मे प्रसन्न कुमार ठाकुर द्वारा स्थापित हुआ। प्रसन्नकुमार ठाकुर के भवन मे इस "हिन्दू थियेटर" की स्थापना के विषय मे "रिफार्मर" नाम से एक सज्जन ने बहुत कुछ लिखा।[3] इसमे शेक्सपियर के "जूलियस सीजर"

---

१. बडू चंडीदास "कृष्ण कीर्तन," यमुना खंड।
२. हंसकुमार तिवारी, बंगला और उसका साहित्य (प्र० सं०) पृ० ६६।
३. हेमेन्द्रनाथदास गुप्त, इंडियन स्टेज, वाल्यूम २, (१९४६ सं०) पृ० १–२।
४. कलकत्ता जर्नल, जनवरी १८३२, पृ० ६–७।

और संस्कृत नाटककार भवभूति के "उत्तर रामचरित" के अनुवादों का अभिनय हुआ। इस प्रकार बंगाल में शेक्सपियर की नाटच-कला ने बगला नाटच-कला को विशेष रूप से अनुप्राणित किया और संस्कृत के पौराणिक नाटकीय आदर्श को लेकर बगला-नाटक का जन्म हुआ। १८३५ ई० में स्थापित श्याम बाजार के नवीन चन्द्र बसु की नाटच-शाला में जब भारतीयता की ओर ध्यान गया तो नन्दकुमार राय द्वारा अनूदित कालिदास के "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" का ही सर्व-प्रथम अभिनय हुआ। बगला-नाटक आरम्भ में सस्कृत-शिल्पविधि के आधार पर बना, पर धीरे-धीरे यह सस्कृत-पद्धति को छोडता गया और पाश्चात्य प्रकार को अपना बैठा। बगला-रगमच का क्रमिक विकास और बगला-नाटच-रचना मे परिवर्तनशीलता—दोनो साथ-साथ चलते रहे है—दोनो मे नवीन विकास, नवीन भावनाएँ, नवीन शिल्पविधि आदि का प्रवेश बडी क्रमिक पद्धति के साथ हुआ है, बडे सोच-विचार और बडे परिश्रम के साथ। (पौराणिक नाटको का भी इस सबमें महत्त्वपूर्ण योग रहा है) बगला-नाटक तथा बगला रगमच साथ ही साथ चले, नाटको की रचना का मूल उद्देश्य अभिनय ही रहा, जिससे नाटको मे दृश्यत्व प्रधान रहा। रविबाबू के नाटचकला मे अभिनेयता से दूर रहने का भाव है। परिणाम-स्वरूप आज बगला-नाटक का प्रकाश मन्द पड गया है, वहाँ किसी नवीन नाटककार का उदय नही हो रहा। चलचित्रो ने आज नाटकीय कला पर विजय पा ली है। बगाल मे यद्यपि अब भी नाटच-शालाएँ है, पर उनमे प्राय प्राचीन नाटको का ही अभिनय होता है। बगला नाटक का वर्तमान रूप प्राचीन रूप की तुलना मे सुन्दर नही है।

बगला पौराणिक नाटको के आरम्भ मे तो मूल कथा का विशेष रूप से परिपालन हुआ, पर धीरे-धीरे उनमे देश-प्रेम, नारी पूजा आदि भावो का समावेश और द्विजेन्द्रलाल राय के आते-आते उसमे पौराणिकता को बुद्धि ग्राह्यता के साथ समझौता करना पडा—पाश्चात्य शैली की प्रधानता हो गयी और पौराणिक गाथाएँ आधार मात्र रह गयी। रवीन्द्रनाथ के युग मे इन पौराणिक गाथाओ को नवीन दृष्टि प्राप्त हुई और आधुनिक मानव जीवन के यथार्थ और आदर्श का पूर्ण प्रतिबिम्ब उनके नाटको मे झलका।

बगला नाटक का आरभ पौराणिक नाटक भारतचन्द्र के "चडी नाटक" से हुआ है, जो "यात्रा" का एक विकासोन्मुख रूप है। इसमे सबसे प्रथम बगला भाषा का प्रयोग किया गया है, यह १७६० ई० की रचना है—बगला पौराणिक नाटको मे ताराचरण सिकदार का "भद्रार्जुन" (१७७४ ई०), काली प्रसन्नसिह का "सावित्री-सत्यवान" (१८५८ ई०), माईकेल मधुसूदन दत्त का "शर्मिष्ठा" (१८५६ ई०), मनमोहन बसु का "हरिश्चन्द्र" (१८७४ई०), गिरीशचन्द्र घोष, क्षीरोप्रसाद विद्याविनोद, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि के नाटक उल्लेखनीय है।

(२) मराठी

बगला के समान ही मराठी-नाटको का आरम्भ भी पौराणिक रचना से हुआ है। यद्यपि सत ज्ञानेश्वर (स० १३३२-५३), सत तुकाराम (१६६५-१७०७ वि०), स्वामी रामदास

(१६६५-१७३८ वि०) आदि के काव्यो में नाटकों के उल्लेख[1] के आधार पर मराठी नाटकों का उद्गम बारहवीं शताब्दी माना जा सकता है, किन्तु मराठी का सबसे प्राचीन उपलब्ध नाटक "श्री लक्ष्मीनारायण कल्याण" है, जो सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक श्री विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे को तजौर के एक रामदासी-मठ में मिला[2] था। "श्री लक्ष्मीनारायण कल्याण" पौराणिक नाटक है, जिससे मराठी-नाटक का आरम्भ पौराणिक नाटक से हुआ—यह प्रमाणित हो जाता है। वि० का० राजवाडे की सम्मति के अनुसार १६९० ई० के लगभग व्यकोजी के पुत्र शाहू राजा ने इसकी रचना की थी, उनके और भी नाटक मिलते है।

मराठी पौराणिक नाटको के पर्यवेक्षण से सहज ही मे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि मराठी में नाटको की रचना जितनी अधिक हुई और हो रही है, उतनी भारत की किसी अन्य भाषा मे नही। इसमे पौराणिक नाटक भी बहुसख्यक है, जिनमे पुराण-वर्णित शायद ही कोई कथा छोडी गयी है। हरिश्चन्द्र, कर्ण, जयद्रथ, सीता-वनवास आदि प्रसिद्ध घटनाएँ एकाधिक बार उपयोग मे लायी गयी है—इन नाटको की एक विशेषता उनकी सगीत-प्रधानता है। प्राय. तीन-चौथाई नाटको के नाम मे तो "सगीत" शब्द जुडा हुआ है। जिनमें "सगीत" शब्द जुडा नही है, उनकी भी सगीत-प्रधानता में कोई कमी नही। सगीत-नाटको का पौराणिक कथाओ के साथ खूब सामजस्य बैठा है। अन्य भाषा के नाटक-पाठकों और दर्शको को मराठी-नाटको में संगीत की यह अधिकता खल सकती है, ये कृत्रिम और अस्वाभाविक भी प्रतीत हो सकते है, परन्तु यह मराठी प्रेक्षको की अपनी रुचि है—इसके अतिरिक्त इन सगीत-नाटको के अद्भुत, काव्यात्मक, गायनानुकूल वातावरण, अभिनेताओ की गायन-कुशलता के साथ अभिनय प्रवीणता तथा नाटककारो द्वारा प्रसगानुकूल सरल, सुन्दर गीतो की योजना आदि मराठी के सगीत-नाटको को उतना अस्वाभाविक भी नही प्रतीत होने देते—वास्तव मे मराठी नाटक की परम्परा ही ऐसी है कि दर्शक नाटक मे अच्छे अभिनय के साथ मधुर संगीत की भी आशा करते है, बिना संगीत के उनका नाट्क-प्रेक्षण अधूरा है।

मराठी-नाटक भी बगला-नाटको की भाँति अभिनय के लिए ही लिखे जाते है। पर आज भी मराठी-नाटककार नाटको की "दृश्य काव्यता" के धर्म को नही भूलता—मराठी में चलचित्रों की प्रतियोगिता आई है, वहाँ भी रगमच को कुछ धक्का पहुँचा है, परन्तु मराठी-नाटककार और अभिनेता इस विषय मे सजग है और जनरुचि को पहिचान कर आवश्यक परिवर्तन करते जा रहे है। खाडिलकर द्वारा नवीन प्रश्नो और समस्याओ को सुलझाने में पौराणिक कथाओ का जो प्रयोग हुआ, उससे मराठी के पौराणिक नाटक आज भी लोकप्रिय और जनरुचि को आकर्षित करने वाले बने हुए है—आधुनिक भारतीय भाषाओ को मराठी-नाट्य-सृष्टि से बहुत कुछ प्राप्त

---

१. वि० पा० वांडेकर—"मराठी नाट्य-सृष्टि"—प्रथम खंड (प्र० सं०) पृ० २०।
२. वि० का० राजवाडे—"संकीर्ण लेख संग्रह"।

हो सकता है—राज्य और राष्ट्र की भाषा हिन्दी को तो मराठी का यह प्रसाद ग्रहण करने में विशेष सचेष्ट हो जाना चाहिए।

मराठी पौराणिक नाटक-साहित्य को रचना और समय की दृष्टि से तीन युगों में बाँटा जा सकता है —

१—किर्लोस्कर पूर्व युग (१८४३ ई०—१८८० ई०)

२—किर्लोस्कर युग (१८८० ई०—१९०७ ई०)

३—खाडिलकर युग (१९०७—)

किर्लोस्कर पूर्व युग के नाटक—"खेल" कहलाते है। इन नाटको का गद्याश लिखित रूप में नही रहता था—कविता-बद्ध आख्यान लिखित रहते थे—सूत्रधार और विदूषक का इन नाटको में बडा महत्त्व था—इन "खेलो" की साज-सज्जा बडी अल्प होती थी—विष्णुदास भावे (रचना-काल ई० १७४३ का मध्य) के "रामावतारी खेलो" के अतिरिक्त विश्वनाथ महावे, कृष्ण जी रामचन्द्र द ढेकर, विनायक शास्त्री, रावजी बालकृष्ण लेले आदि के पौराणिक नाटक इस युग के उल्लेखनीय नाटक है।

किर्लोस्कर युग में भावे के पौराणिक नाटको से सगीत और गद्य नाटको का सुगठित संयोग हुआ—पर्दे और सीन-सीनरी की सज्जा—कुशलता के कारण इस युग के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुए। बलवन्त पांडुरंग अण्णासाहेब किर्लोस्कर इस युग के प्रधान नाटककार है—मराठी नाट्य-सृष्टि मे इनका नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—किर्लोस्कर का नाटक "संगीत-शाकुन्तल" १८८० ई० में रंगमंच पर आया था, इसीलिए मराठी नाट्य-ससार के इतिहास मे १८८० ई० को सुवर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य माना जाता है।[1] "शाकुन्तल" के अतिरिक्त किर्लोस्कर के सगीत सौभद्र (१८८२) और "रामराज्य वियोग" अन्य प्रसिद्ध पौराणिक नाटक हैं—किर्लोस्कर युग के अन्य प्रसिद्ध पौराणिक नाटककार है बापू किर्लोस्कर, महादेव विनायक केलकर, नारायण भिकूसेट, विट्ठल गोपाल श्री खण्ड आदि। इन सब पर किर्लोस्कर का अमिट प्रभाव है।

खाडिलकर युग कृष्णजी प्रभाकर खाडिलकर के नाम पर प्रसिद्ध है। खाडिलकर की प्रतिभा की समानता किर्लोस्कर से ही की जा सकती है। पौराणिक कथानक को लेकर आधुनिक विचारो को प्रकट करने का उपक्रम सबसे प्रथम खाडिलकर द्वारा ही हुआ—इन्होने पौराणिक घटनाओ को सफलतापूर्वक सामाजिक अथवा राजनीतिक विचार धाराओ के अनुकूल ढाला—अपनी विशिष्ट तत्वज्ञान-पद्धति, नाटकीय प्रेक्षणीयता, रचना-कौशल, स्वाभाविक चरित-चित्रण, भाषा गीत और विनोद के लिये खाडिलकर के पौराणिक नाटक अपना विशिष्ट स्थान रखते है। इस युग में संगीत का जनरुचि-मोहक—अद्वितीय प्रयोग हुआ, जिससे गायन और नाट्य का समुचित सामंजस्य स्थापित हुआ—खाडिलकर के प्रसिद्ध पौराणिक नाटक हैं—कीचक-वध (१९०७ ई०), बायकाचेबड (१९०९ ई०), विद्याहरण, सत्य-परीक्षा आदि इस युग की पौराणिक नाट्य-सृष्टि

---

१. वि० पा० दांडेकर—"मराठी नाट्य-सृष्टि", खंड १, पृ० १२७।

विशाल है—इस युग के प्रसिद्ध नाटककार है नरसिंह चिंतामणि केलकर (कृष्णार्जुन युद्ध—१९१४), मामा वरेरकर (भूमिकन्या सीता—१९५५), आदि आदि। मराठी पौराणिक नाट्य सृष्टि अत्यन्त समृद्ध है, उसकी मौलिकता और अभिनवता अक्षुण्ण है।

(४) गुजराती

बगला और मराठी के समान गुजराती में भी नाटक-रचना पौराणिक कथाओ से ही आरम्भ हुई है। गुजराती का सबसे प्राचीन नाटककार प्रेमानन्द है, जिसके तीन नाटक[1] प्राप्त होते हैं, जो तीनो ही पौराणिक कथाओ से वस्तु ग्रहण करके रचे गये है। बगला और मराठी की भाति गुजराती मे भी नाटको और रगमच का विकास साथ-साथ हुआ है। गुजराती रंगमच के विकास में पारसियो और मराठी नाटक-मडलियो का विशेष हाथ रहा है। आरम्भ मे गुजराती के प्रसिद्ध नाटककार रणछोड भाई उदयराम (१८८४–१९२३) कैखुसरू काबराजी की नाटक कम्पनी के लिए ही नाटक लिखा करते थे। बाद को उन्होने स्वय अपनी नाटक मडली खोली। गुजराती रगभूमि का विकास इसी प्रकार हुआ और उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक गुजरात मे गुजराती रगभूमि का विशिष्ट स्थान बन गया। गुजराती नाटक का प्रारम्भ भी इसी के साथ हुआ।

गुजराती के प्रारम्भिक नाटको में सस्कृत-नाटको, गुजराती भवाई, मालवी माच तथा दक्षिण के नाटको का विशेष प्रभाव है। वे छोटे से छोटे और बडे से बडे है—पन्द्रह पृष्ठ से लेकर दो सौ पृष्ठो तक के है। उनका शिल्प भी विचित्र है, थोडे से सवाद हैं, जिनमें कविता की प्रबलता है, (ये लम्बे भी है) फिर कहानी के रूप में आगे की घटना का निर्देश कर दिया गया है। ऐतिहासिक और सामाजिक कथाओ का इनमे विशेष उपयोग हुआ है, परन्तु पौराणिक कथानक को लेकर भी पर्याप्त नाटक लिखे गये है। गुजराती नाटक-साहित्य के भी तीन वर्ग किये जा सकते हैं—१९००ई० से पहिले का युग, १९००-१९२० युग, १९२० से आगे का युग। इन्हें क्रमश शैशवकाल, यौवनारम्भ काल और प्रौढकाल भी कहा जा सकता है। १९०० से पूर्व के युग में दलपतराम का "बैनचरित्र" कवि नर्मद का "बालकृष्ण विजय" "रणछोड़भाई उदयराम का, "हरिश्चन्द्र" और हरिलाल ध्रुव का "प्रहलाद" उल्लेख्य पौराणिक नाटक है। इस युग मे नाटक रचना अधिक नही हुई। १९०० ई० के उपरान्त गुजराती नाटक का पर्याप्त विकास हुआ, इसके साथ ही गुजराती नाटक में गम्भीरता, सगठन, चरित्र-चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। पौराणिक नाटक अधिक नही लिखे गये, सामाजिक भावना बलवती रही। इस युग के मुख्य पौराणिक नाटककार है—रमणभाई और नानालाल। सामाजिक भावना ने इतना अधिक इस युग को प्रभावित किया है कि पौराणिक और ऐतिहासिक नाटको का मुख्य स्वर भी समाज-सुधार[2] हो गया है।

---

१. रोषदर्शिका सत्यभामाख्यान, पांचालीप्रसन्नाख्यान, तपत्याख्यान।
२. रमणभाई का "राई नो पर्वत" तथा कविकांत का "रोमन स्वराज"।

~ १९२० ई०के बाद गुजराती नाटको में भावात्मकता के स्थान पर यथार्थवाद आजाता है। गुजराती नाटककार पर इब्सन और बर्नार्ड शा की यथार्थवादी कला का प्रभाव पड़ा है। इस युग में जो कुछ पौराणिक नाटक लिखे गये हैं, उनमें यथार्थता का पूर्ण रूप से समावेश है। इस युग के मुख्य पौराणिक नाटककार हैं श्री कन्हैयालाल मुशी, चन्द्रवदन मेहता, तथा रमणलाल बसतलाल देसाई। मुशी जी के अनेक पौराणिक नाटक भारतीय पौराणिक नाटक परम्परा में ऊँचा स्थान रखते है। गभीर अध्ययन और मनन के उपरान्त ये लिखे गये है। वैसे मुशी जी के नाटको को यदि छोड दिया जाय तो गुजराती नाटक में पौराणिक स्वर क्षीण है वहाँ सामाजिकता का स्तर ही ऊँचा है। स्वामी दयानन्द और महात्मा गाधी जैसे सामाजिक नेताओ के प्रदेश में यह स्वाभाविक ही है।

(५) अन्य भाषाएँ

बगला, मराठी और गुजराती के अतिरिक्त उर्दू, कन्नड, तेलुगु, तमिल और मलयालम आदि भाषाओ के नाटको का आरम्भ भी पौराणिक कथा को लेकर हुआ है। उर्दू का आरंभिक नाटक अमानत का "इन्दर सभा" (१८५३ ई०) है, जिसका आधार हिन्दू-पौराणिकता ही है, भले ही उसमें इन्द्र ईरानी बादशाह का प्रतिनिधि हो अथवा अप्सराएं परियो की। उर्दू मे आरभ में रगमच के लिए ही नाटक लिखे गये है। और वे प्राय पौराणिक हैं तथा उनके लेखक हिन्दू और मुसलमान दोनो हैं। कही साम्प्रदायिकता का लव-लेश भी नही। उर्दू पौराणिक नाटको मे सैयद मेहदी हसन का "चन्द्रावली," बिनायकप्रसाद का "हरिश्चन्द्र", आगाहश्र का "गगावतरण" तथा "सीता-बनवास", बेताब के रामायण, महाभारत आदि सुन्दर नाटक है। इनमे से अनेक नाटको को हिन्दी विद्वान् हिन्दी का नाटक कहते है और उर्दू-विद्वान् उर्दू का। पर लगता यह है कि इस क्षेत्र मे लेखको के मन मे भाषा-विभाजन की ओर कोई रुचि नही थी। वे तो बस आनन्द के लिए लिखते थे। उर्दू-नाटक जब उन्नत हुआ तो उसमे पौराणिकता का बहिष्कार हो गया, यद्यपि उर्दू के आधुनिक नाटककार मुसलमान ही नही, हिन्दू भी है।

कन्नड मे नाटक-रचना का आरम्भ, बारहवी शताब्दी मे सस्कृत के अनूदित और भावानूदित नाटको से हुआ है, उनमे पौराणिक नाटको की प्रबलता है। उन्नीसवी शताब्दी मे भी कन्नड में यही प्रकार प्रबल है, उसे तो "अनुवाद-युग" या "पौराणिक युग" ही कहा जाता है। अं० वि० वरदाचार्य का नाम कन्नड-नाटक संस्थापको मे माना जाता है, उनके नाटक "विष्णु लीले" और "कृष्ण लीले" का आधार पौराणिक ही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को जो आदर हिन्दी में दिया जाता है, कन्नड-नाटक-क्षेत्र में वही स्थान टी० पी० कैलासम का है। उनका "कर्ण" एक सुन्दर पौराणिक नाटक है। एन० एस० नारायण शास्त्री का "पाच रात", अ० न० कृष्णमूर्ति के पौराणिक नाटक "स्वर्णमूर्ति", "हिरण्यकशिपु" आदि सुन्दर नाटक है। पौराणिक कथाओ को ऐतिहासिक दृष्टि से भी कन्नड के पौराणिक नाटको मे देखा गया है। ऐसे नाटको में सी० के० वेंकटरामैया के नाटक मुख्य है।

तेलुगु नाटक के पूर्व पुरुष वहाँ के "यक्षगान" हैं, जिनमें हरिश्चन्द्र, नल, राम, कृष्ण आदि के चरित्रों का इनमें अभिनय होता है। वास्तविक तेलुगु नाटक का आरभ उन्नीसवी शताब्दी में हुआ है। तेलुगु नाटक के प्रारंभकर्ता हैं धर्मवरम् कृष्णमाचार्य। इनके नाटको में भी पौराणिक नाटक पर्याप्त है। चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम, दासु श्री रामपन्तलु आदि तेलुगु के प्रसिद्ध पौराणिक नाटक लेखक हैं। हाँ, वर्तमान काल में वहाँ पौराणिक गाथाओ का प्रभाव कम हो गया है।

तमिल की नाटकीय परम्परा "तेरुक् कुत्तु" से आरम्भ होती है, ये हिन्दी स्वाँग से मिलते-जुलते होते है। "तेरुक् कुत्तु" मडलियाँ रामायण और महाभारत की कथाओ का ही विशेष रूप से अभिनय करती थी। अठारहवी शताब्दी में जब तमिल में वास्तविक नाटक जैसी वस्तु आई, तब भी वहाँ पौराणिकता की प्रधानता रही। तमिल के नाटक "विलासम्" कहलाते है। "रुक्मागद विलासम्", "मार्कण्डेय विलासम्" आदि इस युग के प्रसिद्ध "विलासम्" है। चलचित्रो की प्रतियोगिता का भी पौराणिक कथानक के "विलासम्" को लेकर तमिल में सफलतापूर्वक सामना किया जा रहा है। तमिल में भी यद्यपि अब पहिले के समान नाटको में पौराणिक गाथाओ की प्रधानता नही रही, फिर भी वहाँ पौराणिक नाटको के लिए अच्छा वातावरण है। राजनीतिक दल भी पौराणिक गाथाओ का उपयोग अपने प्रचार-नाटको में कर रहे है, यद्यपि उनमें पौराणिक चरित्रो पर कीचड भी उछाली जाने लगी है।

मलयालम के नाटक-बीजों मे यद्यपि पौराणिकता है, फिर भी उन्नीसवी शताब्दी में, जब मलयालम में वास्तविक रूप से नाटक-रचना हुई तो प्राथमिकता पौराणिकता को नही मिली। मलयालम का प्रथम नाटक छात्रोपयोगी "चन्द्रमुखी विलास" है। किन्तु इसके बाद वहा पौराणिकता का प्राधान्य हो गया। केरल वर्मा वलियकोयित तम्पुरान के द्वारा अनूदित कालिदास के "अभिज्ञान शाकुतल" का अनुवाद वहाँ इतना पसन्द किया गया कि तम्पुरान को "केरल कालिदास" की उपाधि दी गयी तथा भवभूति आदि संस्कृत नाटककारो के नाटको का अनुवाद हुआ। पौराणिक कथाओ पर कल्पनात्मक नाटक भी लिखे गये। मलयालम मे पौराणिक नाटको का बोलबाला रहा। द्विजेन्द्रलाल राय के बगला-नाटको के अनुवाद भी हुए, जिससे पौराणिक नाटको को नवीन दृष्टि मिली। आजकल सामाजिकता को मलयालम-नाटक मे यद्यपि अधिक प्रश्रय दिया जाने लगा है, फिर भी वहाँ अच्छे पौराणिक नाटक लिखे ही जाते है।

पौराणिक नाटको की विभिन्न भाषाओ मे यह लम्बी परम्परा भारतीय जनरुचि की एकता, एक आदर्श, एक सस्कृति और एक सभ्यता का जीवित प्रमाण है। भारतीय भाषाओ मे नाटक-क्षेत्र मे सस्कृत से मूल प्रेरणा पायी है। अन्य भाषाओ की भांति हिन्दी मे भी यह परम्परा लगभग इसी प्रकार आयी है। अन्य भाषा के लेखको, पाठको और प्रेक्षको तथा हिन्दी के लेखको, पाठको और प्रेक्षको की मौलिक सवेदना की एकता इससे स्पष्ट हो जाती है।

श्री रामलाल

रसिक वैष्णव चण्डीदास की सहज साधना

प्रेमधर्मी चण्डीदास परम वैष्णव थे, रसिक सन्त और योगी थे। शस्य श्यामला बंग-भूमि में उन्होने जिस श्रद्धा से राधा कृष्ण के शृंगार और प्रेम का चिंतन किया उसकी मौलिकता सदिग्ध नही है। वे वैष्णव सहज सम्प्रदाय के रसिक महात्मा थे, उन्होंने आजीवन राधा-कृष्ण की लीला से अपनी भक्तिमयी सरस वाणी का चिन्मय शृंगार सम्पन्न किया। अपार्थिवता के धरातल पर अपनी प्रेमसाधना की परीक्षा की। चण्डीदास ने अपने सरस, प्रेमपूर्ण लीलात्मक पदो से बगाल में भागवत धर्म का बीजारोपण कर परम सुख-सुखराज, महाआनन्द की अनुभूति की, कृष्ण भक्ति का दान किया। मध्यकालीन बगाल या भारत मे ही नही —समस्त विश्व में साहित्य मे मानवीय सम्बन्ध को लेकर एक ऐसे दिव्य प्रेम का उदय हुआ जो सर्वथा अभूतपूर्व, अलौकिक और पवित्र था अपार्थिव था। इस दिशा में भारतीय परम्परा में चण्डीदास का नाम अग्रगण्य है। विश्व वाङ्मय के हृदय ने चौदहवी से सोलहवी शताब्दी तक भगवदीय प्रेम का पार्थिवता और अपार्थिवता की समन्वयभूमि पर रसास्वादन किया। भारतीय साहित्य में राधा कृष्ण के ही प्रेमगान की प्रधानता रही।

वैष्णव सन्त चण्डीदास का समस्त जीवन भगवदीय प्रेमसाधना से परिपूर्ण था। उन्होंने अपनी पदावली मे सर्वत्र श्रीराधाकृष्ण के मधुर प्रेमरस के गीत गाये है। चण्डीदास का नाम सुनते ही नयनो मे प्रेम के अश्रु उमड पडते है। रसना पर श्रीराधाकृष्ण का माधुर्य छलक पडता है। हृदय में भक्ति की मन्दाकिनी का वेग बढ जाता है। वे पूर्ण प्रेमी और परम भगवद्भक्त थे। उन्होने अपने समकालिन भारत को सावधान किया

'शुनो रे मानुष भाई।
सबार उपरे मानुष सत्य
ताहतार उपरे नाई।'

—हे मनुष्य भाई, सुनो, सब के ऊपर मनुष्य सत्य है, उसके परे कोई नही है। इसका यह आशय है कि भगवत्तत्व की सर्वोत्कृष्ट अनुभूति मानवता के ही धरातल पर हो सकती है। चण्डीदास के पहले दसवी शती में कनु भट्ट ने बगाल मे वैष्णव प्रेम-पदावली की गगा प्रवाहित की थी। विदेशी प्रभुता से आक्रान्त होने पर भारतीय मानव की उपासना साकार ब्रह्म की ओर आकृष्ट हो गयी, इस प्रतिक्रिया का दर्शन बगाल मे भी हुआ। वैष्णव उपासना-क्षेत्र में और विशेषता से वैष्णव सहज

सम्प्रदाय में इस ऐतिहासिक क्रान्ति का नेतृत्व बंगाल मे चण्डीदास ने किया। चण्डीदास भागवत प्रेम के साहित्यकार थे। चण्डीदास की जीवन-कथा साक्षात् प्रेम की कथा है। चण्डीदास का जन्म सम्वत् १४७४ वि० में बंगाल के वीरभूमि जनपद मे छटना ग्राम मे हुआ था। उनके जन्म के थोड़े समय के बाद उनके पिता सपरिवार बोलपुरा के नन्नुरा ग्राम में जाकर बस गये। चण्डीदास ने वारेन्द्रब्राह्मण वश में जन्म लिया था। उनके पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नही थी, पर चण्डीदास के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व उन्होने बडी योग्यता से निबाहा। चण्डीदास के परिवार की गणना कट्टर ब्राह्मणो में होती थी। अपनी धार्मिक आचार-निष्ठा के कारण चण्डीदास के पिता का नन्नुरा ग्राम के धनीमानी सज्जनो से अच्छा सम्पर्क हो गया। नन्नुरा मे वाशुली अथवा विशालाक्षी देवी के मन्दिर के वे पुजारी नियुक्त हो गये और पैतृक उत्तराधिकार के रूप में पिता के देहावसान के बाद चण्डीदास ने वाशुली देवी की पूजा का भार सम्हाला। वाशुली देवी में चण्डीदास की बडी निष्ठा थी। वे देवी की उपासना और प्रेमगीत साधना मे ही अपनी महती शक्ति का उपयोग करते थे। उस समय उनकी अवस्था सुकुमार थी, यौवन मे कोमलता और मृदुता, सरसता और मधुरता तथा सुन्दरता का सरस सम्मिश्रण था। यौवन की रेखाए मुसकरा रही थी, उनका वर्ण गौर था, रग सुनहली कान्ति की स्पर्धा करता था, काली-काली अलकावली सहसा मनोमुग्धकारिणी थी। उनका स्वर बडा मीठा और कोमल था। नन्नुरा की जनता उनको बहुत मानती थी। चण्डीदास का भी लोगो से सहज अनुराग था। चण्डीदास लोगो को बडे प्रेम से देवी का प्रसाद देते थे। उनके अन्तरदेश मे प्रेमकाव्य-पुरुष का आधिपत्य था। वे कभी-कभी देवी के प्रति भक्ति पूर्ण गीत-गाते-गाते दिव्य उन्माद से अभिभूत हो जाया करते थे। उन्होंने प्रेमतपस्या की। बगाल की भावुकता के वे मध्यकालीन प्रतीक थे।

चण्डीदास के भक्तिपूर्ण प्रेमपदो की रचना की मूल भूमि रामी में उनकी अपार्थिव काम-गन्धहीन दिव्य आसक्ति स्वीकार की जाती है। चण्डीदास नन्नुरा से लगभग दो कोस की दूरी पर तेहाई ग्राम मे सरिता के तट पर प्राकृतिक दृश्यो के आनन्द का नित्य उपभोग करने जाया करते थे। प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शन मे उनका मन बहुत लगता था। एक दिन वे उसी स्थल पर जा रहे थे कि उन्होने बाजार मे देखा कि एक मछली बेचनेवाली सुदरी युवती एक व्यक्ति को और लोगो से उतने ही दाम पर अधिक मछली दे रही है। उन्हे पता चला कि इसका कारण यह है कि दोनो एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, उन्हे ज्ञात हो गया कि ससार के प्राणी का एकमात्र धर्म प्रेम है, वही प्राण है, यदि मानव प्रेमहीन है तो वह जड है। उनका हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो उठा। वे प्रेम के सम्बन्ध में विचार करते-करते अपने विहार स्थल पर पहुँच गये। सध्या का समय था, आकाश में सूर्य देवता की पीली-पीली लालिमा थिरक कर अन्धकार के आगमन की सूचना दे रही थी पर इस अन्धकार मे चण्डीदास को शाश्वत दिव्य प्रेम-ज्योति का दर्शन हुआ। नदी का शीतल कलरव सरस समीर का आलिगन कर रहा था, खगावली शान्त थी। दिशाएं निस्पन्द थी। चण्डीदास ने एक रजक-कन्या को कपडे धोते देखा, वह पूर्ण युवती थी। उसके नयनो में यौवन की मदिरा आलोडित थी। सुनहरी गौरकान्ति-विलसित कपोलो पर घुँघराले केश चञ्चल

थे। ऐसा लगता था मानो मधुकर कनक कमल में विलास कर रहे हो। रमणी का शरीर सौन्दर्य और सुषमा में ढला हुआ था। सिर से पैर तक सुन्दरता मूर्तिमान होकर उसकी प्रदक्षिणा कर रही थी। चण्डीदास के नेत्रो ने शृंगार की देवी का दर्शन किया। चिन्मय लावण्य के कंठदेश से उनकी वाणी ने अपने हृदय-देश में प्रेम की सजीव प्रतिमा का आवाहन किया, चण्डीदास के रसिक मन ने देवी का स्तवन किया, शृंगार का गान गाया

'शृंगार रस बूझिबे के, सब रससार शृंगार जे।
शृंगार रसेर मरम बूझे, मरम बूझिया शृंगार यजे।
सकल रसेर शृंगार सारा, रसिक भगल शृंगारे भरा।
किशोर-किशोरी दुइ-टी जन, शृंगार रसेर मूरति हन।
गुरुवस्तु एबे बलिब काय, विरिंचि भवादि सीमा न पाय।
किशोर किशोरी चाहा के भजे, गुरुवस्तु से सबाइ यजे।
चण्डीदास कहे ना बूझे केर, जे जन रसिक बूझये सेह।।'

रमणी ने उनकी ओर देखा। दोनो एक-दूसरे की सात्विक प्रेम-भावना से विमुग्ध हो गये, आसक्त हो गये। चण्डीदास के निस्पन्द अधरो ने प्रेममयी रमणी के चरणो का सस्वर अभिवादन किया। उन्हे रामी के रूप मे भागवत शृंगार की दिव्य प्रेरणा का दर्शन हुआ। इस दर्शन में वासना और कामासक्ति की गन्ध तक नही थी। रजक-कन्या ब्राह्मण देवता की दूर से ही चरण-धूलि लेकर मस्तक पर चढा सकती थी और चण्डीदास उसे केवल आशीर्वाद दे सकते थे। वे नित्य रजक-रमणी को देखने आते थे। दोनो बिना एक दूसरे को देखे नही रह सकते थे। चण्डीदास की कठभारती ने रामी के पवित्र सौन्दर्य मे अलौकिक और दिव्य प्रेम का दर्शन किया। वह उनकी सब कुछ हो चली। वासुली देवी मे उनकी निष्ठा घटने लगी। रामी के सौन्दर्य और प्रेम से प्रेरणा पाकर वे राधाकृष्ण सम्बन्धी सरस प्रेमपूर्ण पदो की रचना करने लगे। लोग उन्हे 'पगला चण्डी' कह कर पुकारने लगे पर उनकी वृत्ति तो राधाकृष्ण की भक्ति मे अन्तर्मुखी हो उठी। रामी का नाम रामिनी, राममणि, तारामणि आदि था पर वह साहित्य में रामी नाम से ही प्रसिद्ध है। उसने वासुली देवी के मन्दिर में परिचारिका का काम करना आरम्भ किया पर जब मन्दिर के अधिकारियो को पुजारी चण्डीदास से उसके प्रेम-सम्बन्ध का पता चला तो उन्होने दोनो को मदिर से बाहर निकाल दिया। समाजवालो ने चण्डीदास को बहिष्कृत कर दिया। लोगो ने चण्डीदास के बडे भाई नकुल ठाकुर को समझाया कि यदि चण्डीदास प्रायश्चित्त करे तो जाति में लिये जा सकते है। चण्डीदास का रामी से शरीर-सम्बन्ध नाममात्र को भी न था। दोनो प्रेमराज्य में आत्मा के माध्यम से सम्बद्ध थे। दोनो पवित्र थे इसलिए चण्डीदास ने कहा कि मैं रामी के साथ ही कुल मे आ सकता हूँ। प्रायश्चित्त स्थगित हो गया। रामी के प्रति चण्डीदास की पवित्र भावना का दर्शन उनके पदो में होता है, वे रामी के प्रति आत्मा के स्तर से पूर्ण समर्पित होकर

भी राधाकृष्ण के ही भक्त बने रहे, यह उनके चरित्र की पवित्र मौलिकता है, दिव्य अलौकिकता है। इसी प्रकार रामी भी उनके पवित्र प्रेम राज्य में निवास करती थी; प्रायश्चित का प्रश्न उठने पर रामी ने नकुल ठाकुर से निवेदन किया था -

चण्डीदास साथे धोबिनी सहिते मिश्रित एकई प्राणे।

रामी का प्राण चण्डीदास के प्राण में मिश्रित हो गया था। चण्डीदास ने प्रायश्चित पर लात मार कर रामी के चरणो मे अत्यन्त श्रद्धा और पवित्र भाव से-भक्ति से, अपार्थिव दिव्य प्रेम के धरातल पर आत्मनिवेदन किया था।

'एकनिवेदन करि पुनि पुनि, शुनि रजकिनी रामि।
युगल चरण शीतल देखिया, शरण लइलाम आमि॥
रजकिनी रूप, किशोरी स्वरूप, कामगंध नाहि ताय।
ना देखिले मन करे उचाटन, देखिले पराण जुड़ाय॥
तुमि रजकिनी आमार रमणी, तुमि तउ मातृ-पितृ।
त्रिसध्या याजन, तोमारि भजन, तुमि वेदमाता गायत्री॥
तुमि वाग्वादिनी, हरेर घरणी, तुमि से गलार हारा।
तुमि स्वर्ग-मर्त्य, पाताल-पर्वत, तुमि से नयनेर तारा॥
तोमा बिनें मोर सकलि आंधार, देखिले जुड़ाय आंखि।
जे दिन ना देखि उ चाँद बदन, मरमे मरिया थाकि॥
ओ रूप माधुरी, पासरिते नारि, कि दिये करिब वश।
तुमि से तन्त्र, तुमि से मंत्र तुमि उपासना रस॥
भेबे देख मने, ए तिन भुवने, के आछे आमार आर।
बाशुली आदेशे कहे चण्डीदासे, धोपानी चरण सार॥'

रामी के प्रति चण्डीदास के प्रत्येक भाव का चित्राकन इस पद में मिलता है। चण्डीदास ने रामी को प्रेम रमणी, वेदमाता गायत्री, सरस्वती और साक्षात् माता-पिता के रूप में देखा। रामी को छोडकर उनको ससार मे अपना कोई न दीख पडा जिसकी प्रेरणा से वे आध्यात्मिक साधना मे, राधा-कृष्ण की भक्ति मे और प्रेम की चिन्मयी अनुभूति मे गति करते। एक उच्चकोटि के वैष्णव भक्त कवि के रूप में उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गयी। वे निरन्तर राधा-कृष्ण के सम्बन्ध में पद रचने लगे। और विचित्रता तो यह थी कि उन्हें गा-गाकर अपनी स्वर-माधुरी से आराध्य राधा-कृष्ण का मनोरजन भी करते थे।

पदकल्पतरु से पता चलता है कि उनकी कृष्णभक्ति से आकृष्ट होकर परम कृष्णभक्त महाकवि विद्यापति ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उस समय चण्डीदास युवावस्था में थे और कवि-रजन विद्यापति की अवस्था अधिक हो चुकी थी। वे मिथिला के अधिपति शिवसिह

के परम मित्र थे, उन्हें उनका राजाश्रय प्राप्त था। एक बार शिवसिंह उनको साथ लेकर गौड राज्य का परिदर्शन कर रहे थे। विद्यापति चण्डीदास के निवासस्थान नन्नुरा ग्राम के लिए चल पड़े। चण्डीदास को इस बात का पता नही था कि मैथिली कोकिल उन्हे धन्य करने स्वयं आ रहे है, उनको इस बात की जानकारी थी कि नन्नुरा के निकट ही शिवसिंह के साथ विद्यापति का आगमन हुआ है। वे बडे उत्साह और उल्लास से कवि शेखर के दर्शन के लिए गौड बगाल की राजधानी मगल कोटि की ओर चल पडे। दोनो एक-दूसरे से मिलने आ रहे थे। भगवती भागीरथी के तट पर वटवृक्ष के नीचे दोनो कृष्णभक्ति मर्मज्ञो का साक्षात्कार हुआ। चण्डीदास ठाकुर ने महाकवि की चरणधूलि मस्तक पर चढा ली। कवि कण्ठहार विद्यापति ने उनका प्रेमपूर्वक आलिगन किया और सराहना की कि शस्य श्यामला बगभूमि ही नही, समस्त भरत खण्ड की पृथ्वी आपकी कृष्णभक्ति और राधा-कृष्ण के प्रेम काव्य से पवित्र और धन्य हो गयी है। आप भागवत कवि है, रसिक सत है। दोनो का मिलन अद्भुत था। चण्डीदास वैष्णव सहज सम्प्रदाय के अनुयायी थे। सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय वज्रयान अथवा सहजयान से विशेष प्रभावित था। सहजयान मे परमानन्द—महासुख अथवा सुखराज की प्राप्ति ही साधना का लक्ष्य है। सहज वैष्णव सम्प्रदाय में परमात्मा की प्रेमानन्द-प्राप्ति ही उपासना की मूल भूमि है। प्रेम-धर्म ही परमात्मा की भक्ति का पर्याय है। जीव भगवान का अश है, इसलिए प्रेमस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति ही उसकी सिद्धि की परमावस्था है। इसी परमावस्था की ओर चण्डीदास ने अपनी प्रेम-साधना प्रवाहित की। सहज वैष्णव भक्ति रागानुगा है। इस सम्प्रदाय मे यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य में रूप और स्वरूप तत्व विद्यमान रहते है, श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक तत्व ही स्वरूप है, भौतिक तत्व रूप कहलाता है। इसके अनुसार प्रत्येक पुरुष और स्त्री को अपने रूप मे स्वरूप का आरोप कर रूपगत आसक्ति का प्रेम मे दिव्यीकरण करना पडता है। रूपगत आसक्ति वासना है, स्वरूपगत अनुरक्ति ही कृष्णभक्ति अथवा प्रेम है, इस प्रेम की प्राप्ति के लिए साधक को परकीया भाव का आश्रय ग्रहण करना पडता है। रूप मे स्वरूप का आरोप होने पर साधक सहज मानव की स्थिति मे प्रवेश करता है। इसी सहज मानव की ओर लक्ष्य कर वैष्णव भक्त चण्डीदास ने कहा था

'मानुष नाम विरल धाम, विरल ताहार प्रीति।
चण्डीदास कहे सकलि विरल, के जाने ताहार रीति॥'

चण्डीदास ने अनुभव किया कि सहज मानव की स्थिति मे आने पर ही शुद्ध सात्विक गुण उदय के बाद सौन्दर्य-माधुर्य निधि राधा-कृष्ण की रसानुभूति भी है, चण्डीदास ने इस मार्ग को श्रेय दिया, वे रागमार्गी वैष्णव थे। चण्डीदास ने सहज तत्व का दर्शन आनन्द-परमानन्द, सहजानन्द और विरमानन्द के माध्यम से किया। विरमानन्द पूर्णतम मुक्ति की स्थिति है।

चण्डीदास ने अपने आत्मामाध्यम से राधाकृष्ण की सयोग सुख राशि का अनुभव किया।

राधा-भाव के स्तर से उन्होंने कहा कि हे कृष्ण, जन्म-जन्म से आप ही मेरे प्राणाधार प्रियतम हैं, उनकी उक्ति है

'चण्डीदास बले शुनह नागर, राधाय मिनति राख।
पीरिति रसेर चूड़ामणि हये, सबाइ अन्तरे थाकि।।'

चण्डीदास ने कहा कि 'सहज' 'सहज' सब लोग कहते है पर सहज को विरले ही जान पाते है। जो अन्धकार को पार कर ज्योति के आनन्दराज्य मे प्रवेश करता है वही सहज तत्व समझ पाता है। चण्डीदास ने कहा

'निज देह दिया भजिते पारे, सहजे पीरिति बलिब तारे।
सहजे रसिक करये प्रीति, रागेर भजन एमन रीति।।
एखनि सेखनि एक हैले, सहज पीरिति ना छाड़े मैले।
सहज बुझिये जे हय रत, ताहार महिमा कहिबे कत।
चण्डीदास कहे सहज रीति, बुझिया नागरी करइ प्रीति।।'

रामी और चण्डीदास दोनो सहज मतावलम्बी थे। रामी भी चण्डीदास की प्रेरणा से कविता करती थी। उसने कहा है कि चण्डीदास के बिना मेरे लिए समस्त ससार अधकारपूर्ण है। चण्डीदास के नयनो के लिए रामी पवित्र प्रेममयी परकीया भावसाधना की चिन्मय प्रतीक थी। भाव की पवित्रता, भक्ति और आत्मगत सहज आसक्ति के कारण चण्डीदास की प्रेमलीला भगवदीय लीला की रसभूमि हो गयी। चण्डीदास की रामी समाज के लिए श्रद्धा और पूजा की देवी हो गयी। रामी उनके लिए हाड-मास की रमणी नही थी, रसाकृति थी।

वाशुली देवी ने चण्डीदास को वेदान्त से परे रससमुद्र का मर्म समझाया था। साधन का बीज बताया था। वाशुली देवी की कृपा से ही उन्होने भागवत प्रेमराज्य मे प्रवेश किया। उनकी प्रेमसाधना उच्चकोटि की थी। राधाकृष्ण के प्रेम मे वे रात-दिन मग्न रहते थे। उनका भगवदीय प्रेम सर्वथा लोकोत्तर और चिन्मय था। उसमे सर्वत्र माधुर्य ही अभिव्यक्त दीख पडता है।

उनके पदगान मे प्रेम और विरह के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध का सुन्दर चित्रण हुआ है। वे मिलन मे विरह के दुख से सदा आशकित रहते थे। उन्होने आजीवन प्रीति की व्याधि का सामना किया, वे सदा प्रेमवाण से विद्ध रहते थे। उन्हें भगवत्प्रेम की प्राप्ति करने में समाज का दोषारोपण तनिक भी रोक नही सका। उन्होने कहा कि जो प्रीति करता है उसे किमी भी प्रकार के कलक से भयभीत नही होना चाहिए। प्रेम तो भगवान का भावविग्रह है भक्तिरूप है। प्रीति की मूक विरह-वेदना का अनुभव चण्डीदास ने लोकमर्यादा और सामाजिक बन्धन को ताक पर रख कर किया; उनके लिए मानवीय प्रेम भी स्वर्गीय हो गया, मानवीय रूपस्थ आसक्ति को उन्होने अपने अन्त करण की शुद्धता से भगवद्भक्ति में स्वस्थ कर लिया। उन्होने प्रेम की मर्यादा गायी है,

पीरिति बलिया, एकटी कमल, रसेर सायर माझे।
प्रेम-परिमल, लुबध भ्रमर, धायल, आपन काजे ।।
भ्रमरा जानये कमल माधुरी, तेइ से ताहार वश।
रसिक जनाये रसेर चातुरी, आने कहे अपयश ।।
सइ ए कथा बूझिबे के।
जे जान जनायें, से यदि ना कहे, केमने धरिबे दे।
धरम-करम लोक चरचा ते, ए कथा बूझिते नारे।
ए तिन आँखर जाहार मरमे, सेइ से बूझिते पारे ।।
चण्डीदास कहे शुन लो सुंदरि, पीरिति रसेर सार।
पीरिति रसेर रसिक नहिले, कि छार परान तार ।।

चण्डीदास के राधा-कृष्ण-प्रेमगान ने पूर्वराग, दौत्य, अभिसार, सभोग, मिलन, आत्मनिवेदन आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला है। चण्डीदास ने राधा-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य-चितन की गहरी नीव पर अपना प्रेम-राजप्रासाद समस्थित किया। समस्त चराचर मे उन्हे अपने प्रेम देवता का ही सौन्दर्यदर्शन हुआ। चण्डीदास ने राधा तत्व की परख अपने हृदय की कोमलतम भक्ति के सिंहासन पर की। वे नित्य कृष्ण-प्राणमयी के रूप मे चण्डीदास द्वारा चित्रित की गयी है। वे श्रीकृष्ण की अनन्त संगिनी है। चण्डीदास ने ऐसी राधा की भक्ति की जिन्होने अपना प्राण नन्दनन्दन में पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया। चण्डीदास की राधा का मन पूर्ण रूप से यमुना किनारे कदम्ब के नीचे त्रिभगी रूप मे खडे होनेवाले व्रजेन्द्रनन्दन ने अपना लिया। उनकी वशी में चण्डीदास ने सदा 'राधा-राधा' का ही स्वर सुना। श्यामसुन्दर की प्रत्येक आज्ञा मे रत रहने वाली राधा की ही लीला भक्ति चण्डीदास ने गायी। एक पद मे राधाकृष्ण के पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध का उन्होने अत्यन्त दिव्य चित्रण किया है। उनका कथन है

'नागर चतुरमणि कहेन एकटि वाणी, शुन शुन सुकुमारी राधे।
बाँड़ाइते शिख आगे, तबसे भलाइ लागे, तबे बांशी शिखाइब साधे ।।
धरह आमार बेश, आरोह चरण शेष, पदेर उपर देह पद।
त्रिभंग हइया रउ बांशी सने कथा कउ, बांशी गाउ हइया आमोद ।।
शुनिया आनन्द बड़ी से नव किशोरी गौरी, त्रिभगिम आंगिम सुठाम।
धरिया राधार करे नागर रसिक वरे, अगुलि धुराइ ते शिखान ।।
रन्ध्रे-रन्ध्रे से अंगुली शिखाइ छे वनमाली, देह फुकु सुकुमारी राधा।
बाजाह मधुर तान, मन्द-मन्द कर गान, तिले केउ नाहि कर बाधा ।।
हासि कहे सुवदनी, एबे कि शिखिबे आमि, अलपे कलपे जदि पारि।
कहेन रसिकराज बूझि तुमि पाबे लाज, चण्डीदास जाय बलिहारी ।।'

राधा कृष्ण की लीला का चिंतन ही चण्डीदास का प्राणधन था। उनके रूप और सौन्दर्य की स्मृति ही चण्डीदास की भगवद्भक्ति थी। उन्होने राधाकृष्ण की मधुर रस की उपासना की। उन्होने अध्यात्मपक्ष से परकीया भाव का वरण कर अपनी भगवद्भक्ति चरितार्थ की। उनका परकीया-भक्तिभाव सदा मनोगत ही रहा, देह-सम्बन्ध में उसका कभी अवतरण नही हो सका। उन्होने भगवद्भक्ति की प्राप्ति के लिए परकीया-भावगत दिव्य प्रेम की आग मे शरीर को तृण के समान जलाकर राख कर देने मे ही परम सुख का साक्षात्कार किया। वे श्यामसुन्दर का ही रात-दिन चिंतन किया करते थे, उनकी एक स्थल पर भक्तिपूर्ण मार्मिक उक्ति है

'ए तिन भुवने ईश्वर गति।
ईश्वर - छाडिते पारे शकति।
ईश्वर छाडिते देह ना रय।
मानुष भजन केमने हय।।
साक्षाते नहिले किछुइ नइ।
मने ते भाविले स्वरूप हय।।
कहे चण्डीदास बुझये के।
इहार अधिक पुछये के।।'

चण्डीदास को सदा अपने प्रियतम के वियोग का भय बना रहता था। वे निरन्तर विरहोन्माद में उद्विग्न रहते थे। उन्होने अनुभव किया कि हसते-हसते तो मैने प्रेम किया था और रोते-रोते समय बीत रहा है। उनकी उक्ति है 'कि कौन कहता है कि प्रीति अच्छी वस्तु है। प्रीति के कारण मेरी जो अवस्था हो गयी है उसे देखकर सशय होता है कि प्राण रहेगा या चला जायेगा।'

चण्डीदास ने भगवद् के वियोग पक्ष की व्यथा का भी विशेष अनुभव किया। उनका कथन है

'एमन पीरिति कभु देखि नाइ शुनि,
पराणे पराणे बांधा आपना आपनि।
दुहु कोले दुहे कांदे विच्छेद भाविया,
तिल आध न देखिले जाय जे मरिया।।
जल बिना मीन जेन कबहु ना जीये,
मानुष एमन प्रेम कभु ना शुनिये।
भानु कमल बलि सेह हन नहे,
हिमे कमल मरे, भानु सुखे रहे।।
चातक जलद कहि, से नहे तुलना,
समय न हले सेह ना देय एक कण।

कुसुम मधुपे कहि सेह नहे तुल,
ना एले भ्रमण आपनि ना जाय फूल।।
कि छार चकोर चाँद दुहु, सम नहे .
त्रिभुवन हेन नाइ चण्डीदास कहे।'

चण्डीदास भगवान के प्रेमी भक्त और विरहयोगी थे। उन्होने शास्त्रसम्मत, निगमागमगत भगवत्प्रेम की साधना की। चण्डीदास और उनकी रामी दोनो राधा के रसराज्य की प्रजा थे। उन दोनो ने रूप मे स्वरूप का परिज्ञान प्राप्त कर तथा भगवदीय प्रेम सरोवर में स्नान कर राधाकृष्ण के चरण मे आत्मार्पण कर दिया । चण्डीदास की सहज प्रेमभक्ति राधाकृष्ण की शरणागति का दूसरा नाम है।

सम्वत् १५३४ वि० मे चण्डीदास ने देह का परित्याग कर भगवद् प्रेम राज्य मे प्रवेश किया। उनकी अन्तिम जीवन-लीला की कथा अमित वेदनामयी है। वे किर्णहार ग्राम मे अपने एक मित्र के घर पर बैठ कर प्रेमगान गा रहे थे। उनके नयनो में व्रजरमण और उनकी राधा की सौन्दर्य-माधुरी छलक रही थी, वे आत्मा के दिव्य स्वर से भगवान का आवाहन कर रहे थे कि ठीक उसी समय सहसा छत गिर जाने से उनके प्राण चल बसे। वे प्रेमी भक्त, रसिकसत और विरह-योगी थे।

डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास

रामायणकालिक पारिवारिक जीवन

कुटुम्ब अथवा परिवार समस्त मानवीय सगठनो की मूल इकाई है और सामाजिक विकास की पहली सीढी। आज के विशृखलता के युग मे भी परिवार का काफी महत्त्व है, भले ही पहले की भाँति वह सामाजिक ढाँचे का इतना अनिवार्य अग न माना जाता हो। सामाजिक कर्तव्यो का पालन कराने के लिए परिवार मानवीय व्यक्तित्व के विकास मे कितना योग देता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण दशरथ के परिवारिक जीवन मे उपलब्ध होता है। वास्तव मे रामायण एक कौटुम्बिक महाकाव्य है—राग-द्वेष, हर्ष-शोक, ममता-मोह, लोभ-त्याग आदि की सामान्य कौटुम्बिक घटनाओ का चित्रण उसे सर्वसामान्य के लिए एक हृदयग्राही रचना बना देता है। वाल्मीकि ने पारिवारिक जीवन के प्राचीन आदर्शों को भावी पीढियो के लिए अपनी रामायण मे सुरक्षित कर दिया है।

पैतृक सत्ता

परिवार का रूप निस्सन्देह पैतृक था। उसमे पिता कुटुम्ब का मुखिया था, उसका आदेश सर्वोपरि होता था। पत्नी गृहस्वामिनी थी, किन्तु गृहस्वामी पर आश्रित और उसकी आज्ञाकारिणी पुत्र और पुत्रियो पर पिता का पूर्ण नियन्त्रण था। पिता की अनुमति के बिना वे अपना जीवनसाथी नही चुन सकते थे। उदाहरणार्थ, धनुर्भंग करके सीता को पाने के अधिकारी होने पर भी राम ने पिता की इच्छा जाने बिना विवाह करने से इन्कार कर दिया—

दीयमानां न तु तदा प्रतिजग्राह राघव.।
अविज्ञाय पितुश्छन्दमयोध्याधिपते प्रभो.॥ २।११८।५१

व्यावहारिक मामलो मे पिता की आज्ञा कानून के तुल्य होती थी। अपनी सम्पत्ति का वह स्वेच्छानुसार पुत्रो में विभाजन कर सकता था। दशरथ ने कैकेयी के पिता को अपने बल-बूते पर यह वचन दे दिया था कि उसी का पुत्र कोसल राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा[1]। जब भरत ने चित्र-

---

१. पुरा भ्रातः पिता न: स मातरं ते समुद्वहन्। मातामहे समाश्रौषीद्राज्य शुल्कमनुत्तमम् (२।१०७।३)।

इसी प्रकार विश्वामित्र ने अपने अनाज्ञाकारी पुत्रों को उत्तराधिकार से वंचित कर एक अपरिचित कुमार, शुनःशेप, को दत्तक ले लिया था। (१।६२)। ययाति ने चार बड़े पुत्रो की उपेक्षा कर सबसे छोटे पुरू को राजगद्दी सौंपी थी (५७।५९)।

कूट पर राम से कोसल का राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना की, तब राम ने कहा कि मुझे मृगछाला और चीरवल्कल पहनाकर जगल मे भेजने या राजगद्दी पर बैठाने दोनो में मेरे पिता सर्वथा समर्थ है ।[1]

संयुक्त परिवार

कुटुम्ब का ढाचा इस अर्थ मे सयुक्त था कि सारे सदस्य एक ही मुखिया की आज्ञा शिरोधार्य करते थे। राज-परिवारो मे राजा की विभिन्न पत्नियाँ और पुत्र अपने पृथक् महलो मे रहते थे, उनके अपने सेवक और अनुचर होते थे, पर सभी महत्त्वपूर्ण कामो में वे गृहस्वामी (पिता या बड़े भाई) के आदेशो का पालन करते थे। विवाह के बाद राम अपने पृथक् प्रासाद में रहने लगे थे, फिर भी उन्होने पिता के आदेशानुसार वन जाने मे कोई हिचकिचाहट नही दिखाई। राज्य की बागडोर सम्हालने पर राम की, अपने भाइयो और उनके पुत्र-कलत्र से भरे सयुक्त परिवार पर, शासन करने की बारी आई।

पारिवारिक परम्पराएँ

समाज की एक इकाई के रूप मे परिवार उसकी परम्पराओ, भावनाओ एव आचार-विचारो को वर्षों से आत्मसात् करता आता है। इस नाते वह अपने सदस्य' मे उनका सचार करने का एक अच्छा माध्यम सिद्ध होता है। वाल्मीकि ने बारम्बार यह शिक्षा दी है कि 'मनुष्य को उन सब सस्कारो और रूढियो का मनोयोगपूर्वक सरक्षण और पालन करना चाहिए, जो परिवार मे अतीतकाल से प्रतिष्ठित हो गया है, तथा अपने व्यक्तिगत स्वार्थो को कुटुम्ब के सामूहिक हितो के समक्ष गौण रखना चाहिए।' रामायण मे ऐसे अभिजात पुरुषो के अनेक दृष्टान्त आये हैं, जिन्होने परिवार की सास्कृतिक थाती का निष्ठापूर्वक पालन करने का सदैव आग्रह रखा। महाराज दशरथ ने अपनी राज्य-सभा के समक्ष गर्वपूर्वक यह घोषणा की थी कि प्रजा की रक्षा मे जागरूक रहकर मैंने अपने पूर्वजो के मार्ग का ही अनुसरण किया है।[2]

माता कौसल्या से वन जाने की अनुमति माँगते हुए राम ने यही तर्क दिया था कि पिता की आज्ञा मानकर मैं पूर्वकाल के धर्मात्मा पुरुषो द्वारा सेवित मार्ग पर ही चल रहा हूँ—"**पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते**' (२।२१।३६)। जब कैकेयी ने यशस्वी इक्ष्वाकु-कुल के कल्याण की अवहेलना कर अपने और अपने पुत्र के स्वार्थों को प्रधानता दी, तब दशरथ अपने महान् वश पर

---

१ वने वा चीरवसन सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम्। राज्ये वापि महाराजो मा वासयितुमीश्वरः॥ २।१०१।२०।

२. मयाप्याचरित पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता। प्रजानित्यमनिद्रेण यथाशक्त्यभिरक्षिता'। २।२।६ ।

आने वाली घोर विपत्ति से आशंकित हो उठे थे।[१] राम के वनवास और भरत के राज्याभिषेक का दुराग्रह करके कैकेयी ने परिवार की प्रतिष्ठित परम्पराओ को तोडने की चेष्टा की, जिससे सभी विचारशील लोगो के चित्त सशकित हो गये। सुमन्त्र ने कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहा—'इस कुल में यही रीति रही है कि राजा के देहान्त के बाद उसके पुत्र आयु के अनुसार राज्य के अधिकारी बने। इस सनातन प्रथा को तुम महाराज के जीते-जी तोड देना चाहती हो?'[२] ऐसा कोई भी कृत्य, जो **'अमर्याद'** अर्थात् पारिवारिक परम्पराओ के प्रतिकूल होता, हेय और लोक-निन्दित था। उज्ज्वल इक्ष्वाकु परिवार पर अपयश का टीका लगानेवाली कैकेयी को **'स्वकुलोप-घातिनी'**, **'कुलघ्नी'** और **'कुलपांसनी'** जैसे विशेषणो से सम्बोधित किया गया है। इसके विपरीत कैकेयी-पुत्र भरत प्रभूत प्रशसा के पात्र इसलिए बने कि पारिवारिक प्रथाओ का उल्लघन करने का जो प्रयत्न उनकी माता ने किया, उसको उन्होने बढावा नही दिया। जब मन्त्रियो तथा राज्य-सभा के प्रमुख सभासदो ने उन्हें राजगद्दी पर बैठने को कहा, तब भरत ने यही उत्तर दिया कि हमारे वश मे ज्येष्ठ पुत्र ही शासन करने का उचित अधिकारी होता है . **'ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य न.** (२।७९।७)।

पुत्र का महत्त्व

इस प्रकार के पारिवारिक सगठन में पुत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान होना स्वाभाविक है, क्योंकि वह काल्य, वश को चलाने वाला था। धार्मिक दृष्टि से भी पुत्र की आवश्यकता अनुभव की जाती थी। 'पुत्' नामक नरक से बेटा पिता की रक्षा करता है, इसलिए वह 'पुत्र'—पितरो की सब प्रकार से रक्षा करने वाला कहलाता है।[३] पारलौकिक कल्याण के लिए पुत्र-प्राप्ति नितान्त आवश्यक थी, पितृ-ऋण से मुक्त होने का वह साधन थी। भरत जैसे धर्मात्मा पुत्र को पाकर महाराज दशरथ निस्सन्देह ऋण-मुक्त हो गये।[४]

अतएव पुत्र के अभाव मे माता-पिता का उद्विग्न रहना स्वाभाविक ही था (**विनात्मजेनात्मवतां कुतो रति**;२।१२।१११) पुत्र प्राप्ति के लिए बडे उद्योग किये जाते, तपस्या की जाती, यज्ञो का सम्पादन किया जाता। लोगो की इस बात मे बड़ी श्रद्धा थी कि दीर्घ तपस्या, सदाचारी

---

१. इक्ष्वाकूणां कुले देवि सम्प्राप्तः सुमहानयम्। अनयोनयसम्पन्ने यत्र ते विकृतामतिः।। २।१२।१६।

२. यथा वयो हि राज्यानि प्राप्नुवन्ति नृपक्षये। इक्ष्वाकु कुलनाथेऽस्मिस्तं लोपयितुमिच्छसि। २३।५।६।

३ पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् पितर त्रायते सुतः तस्मात् पुत्र इतिप्रोक्तः पितृन्यः पाति सर्वतः ।।२।१०७।१२।

४. अनृणः स महाबाहु पिता दशरथस्तव। यस्य त्वमीदृशो पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः।। २।११३।१७।

जीवन तथा धार्मिक अनुष्ठानों के परिणामस्वरूप ही सुयोग्य पुत्र की उपलब्धि हो सकती है। महाराज दशरथ को कठोर तपस्या, असाधारण परिश्रम तथा विभिन्न प्रकार के पराक्रमो और मन्त्र-तन्त्रो के प्रयोग से रामसदृश शुभ लक्षण सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति हुई थी।[1] राम-जैसा पुत्र पाकर उनका जीवन धन्य और कृतकृत्य था।[2] स्त्रियाँ भी सन्तानप्राप्ति के लिए तपस्या का आश्रय लेती थी। पुत्रो की कल्याण-कामना से माता-पिता मागलिक कृत्यो का अनुष्ठान करते थे। राम के प्रस्तावित राज्याभिषेक के दिन जब दशरथ ने उन्हें कैकेयी के प्रासाद मे बुला भेजा, तब राम ने सोचा कि जान पडता है, माता कैकेयी और पिताजी दोनो मिलकर मेरे अभिषेक के सम्बन्ध में कोई औपचारिक कृत्य करने का विचार कर रहे हैं (२।१६।१५)।

परिवार मे पुत्र स्नेह का केन्द्र-बिन्दु था। 'दर्पण मे पडनेवाले प्रतिबिम्ब-सदृश' **आदर्शतल-संस्थितम्**' पुत्र से बढकर और क्या प्रिय हो सकता है—**'नास्ति पुत्रसम. प्रिय.'**। कवि ने दशरथ और अन्धमुनि के पुत्र-स्नेह का मार्मिक चित्रण कर पुत्र के प्रति मानव की शाश्वत ममता को साकार कर दिया है।

ज्येष्ठ पुत्र

पुत्रो में भी ज्येष्ठ पुत्र का अधिकारपूर्ण स्थान था। वशगत और भावनात्मक दोनों कारणो से वह पिता का अधिक प्रीति पात्र था।[3] दशरथ के चारो पुत्रो मे से राम ही उनकी आँखो के तारे थे **तेषांकेतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितु.**, १।१८।२४। गुणवती पटरानी कौसल्या के गुणवान् पुत्र होने के नाते राम के प्रति दशरथ का आकर्षण और भी बढा हुआ था।[4] विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा के लिए राम को दशरथ इसीलिए भेजना नही चाहते थे कि वह उनके जेठे बेटे थे।[5] कैकेयी निस्सन्देह दशरथ की प्राणप्रिय भार्या थी, पर राम उससे भी अधिक उन्हे प्यारे थे।[6] कैकेयी की माँगें पूरी करने का वचन देते हुए उन्होने राम की शपथ खाई थी—**'तेन रामेण कैकेयिशपेते वचनक्रियाम्**, २।११।७।

---

१. **महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमै.। एको दशरथस्यैव पुत्र. सदृशलक्षण**।।२।८६ १२; २।५१।११ भी देखिए।

२. **जातमिष्टमपत्यं मे त्वमद्यानुपम भुवि**। २।४।१३

३. **प्रायेण हि नरश्रेष्ठ ज्येष्ठाः पितृषु वल्लभाः**। १।६१।१९।

४. **ज्येष्ठायामसि मे पत्न्या सदृश्या सदृशः सुत.। उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः**।। २।३।३९-४०।

५. **ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि**। १।२०।१२।

६. **अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम। मनुजो मनुजव्याघ्राद्रामादन्यो न विद्यते**।। २।११।५।

उत्तराधिकार का कानून ज्येष्ठ पुत्र को विशेषाधिकार प्रदान करता था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उसे अपने छोटे भाइयो से पहले राजगद्दी पर बैठने का अधिकार था।[1] पिता की अन्त्येष्टि तथा पितरो के श्राद्ध में पिण्ड-दान करने का पहला अधिकार ज्येष्ठ पुत्र को ही प्राप्त था। ऐसी मान्यता थी कि पिता के प्रिय पुत्र द्वारा प्रदत्त पिण्ड आदि पितृलोक में अक्षय हो जाते हैं।[2]

बडे भाइयो के विवाह को प्राथमिकता दी जाती थी। उससे पहले विवाह कर लेने वाला छोटा भाई **'परिवेत्ता'** कहलाता था और नरक का भागी बनता था।[3] छोटे भाई बड़े भाई को पितृ-तुल्य मानते और उसके आदेशो का तन-मन से पालन करते थे। जब कुम्भकर्ण ने लका की राज्य सभा में रावण को राजधर्म पर उपदेश दे डाला, तब रावण ने उत्तेजित होकर उसे फटकारा कि मै तुम्हारा बडा भाई और आचार्य की तरह माननीय हूँ, तुम मुझे क्या शिक्षा बघार रहे हो ?— **'मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससे'** (६।६३।२३)। भरत को 'ज्येष्ठानुवर्ती' अर्थात् भाई का आज्ञा-पालक कहा गया है। वन-गमन की वेला मे सुमित्रा ने लक्ष्मण को जो उपदेश दिया (२।४०।५–६), उससे भी यह स्पष्ट है कि छोटे भाई के लिए बडा भाई सम्मान का कितना पात्र था। इसी तरह बडे भाई का भी यह कर्तव्य था कि वह छोटे भाईयो से पुत्र-तुल्य व्यवहार करे। राज्य करते समय राम हर एक कार्य मे अपने भाइयो का परामर्श लिया करते थे, उन्हें सुख पहुँ-चाने और प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे।

माता-पिता की भक्ति

माता-पिता अपनी सन्तान के परम स्नेह और श्रद्धा के भाजन थे। पिता शब्द की व्युत्पत्ति 'पा' (रक्षा करना) धातु से हुई है और इसीलिए पिता का अर्थ सरक्षक है। यह व्युत्पत्तिजन्य अर्थ ही पिता के उस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व का सूचक है, जो वह अपने नन्हे अबोध शिशुओ का पालन-पोषण करके निभाते हैं। 'माता और पिता पुत्र के प्रति जो सर्वदा स्नेहपूर्ण बर्ताव करते हैं—अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम खाद्य पदार्थ देने, अच्छे बिछौने पर सुलाने, उबटन लगाने, सदा मीठी बाते बोलने तथा लालन-पालन करने आदि के द्वारा जो उपकार करते हैं, उसका बदला सहज ही नही चुकाया जा सकता' (२।१११।९–१०)। 'जिसमे मनुष्य अपने प्रादुर्भाव का मूल पाता है और जो प्रत्यक्ष देव-तुल्य है, उस पिता का वह कैसे विरोध कर सकता है'।[4]

---

१. सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते। २।७३।२२।

२. प्रियेण किल दत्तं हि पितृलोकेषु राघव। अक्षयं भवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः। २।१०२।८।

३. नास्तिक. परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः। ४।१७।३६।

४. यतो मूलं नरः पश्येत्प्रादुर्भावमिहात्मनः। कथं तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते।। २।१२।१६।

पिता और माता की आज्ञा का पालन पुत्र का सर्वोपरि कर्तव्य था। राम के अनुसार इससे बढ़कर विडम्बना और क्या हो सकती है कि हम अपने बीच प्रत्यक्ष रूप से विराजमान माता, पिता और गुरु की तो उपेक्षा करें और उन देवताओ की पूजा करे, जिनके अस्तित्व का हमें कुछ पता नही। जिनकी सेवा से धर्म, अर्थ और काम तीनो की प्राप्ति होती है, जिनकी आराधना से तीनो लोको की आराधना हो जाती है, उन माता-पिता के समान पवित्र इस ससार मे दूसरा कोई भी नही है। पिता की सेवा करना कल्याण-प्राप्ति का जैसा उत्तम साधन माना गया है, वैसा न सत्य है, न दान है, न मान है और न पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञ ही है। गुरुजनो की सेवा से स्वर्ग, धन, धान्य, विद्या, पुत्र और सुख कुछ भी दुर्लभ नही है' (२।३०।३२–६)।

इन महान् आदर्शों से अनुप्राणित होकर ही राम ने वन की राह ली थी। उन्होने कहा था —"सत्य और धर्म मे स्थित मेरे पिता मुझे जो भी आदेश दे, उसी का मैं पालन करना चाहता हूँ, यही सनातन धर्म है। वन जाने से मै कैसे इनकार कर सकता हूँ ? पिता की आज्ञा, उनकी प्रतिज्ञा और सत्य की माँग ये सब मुझे जाने के लिए प्रेरित कर रहे है। पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन कर मैं जीवित नही रहना चाहता" (२।३७।३८, ३१–२)। माता-पिता के शुश्रूषाजनित पुण्य से और सत्य के प्रभाव से सुरक्षित होकर राम ने वन को प्रस्थान किया था।[1]

ऐसे पुत्रो के भी उदाहरण मिलते है, जिन्होने पिता की आज्ञा का पालन, उसके औचित्य-अनौचित्य की विचार किये बिना ही, कर डाला हो। राम पिता के कहने से आग मे कूदने, तेज जहर खा लेने और समुद्र मे भी गिर पडने को तैयार थे, पिता ही उनके हितचिन्तक, गुरु और सम्राट् सब कुछ थे।[2] अपनी माता के सम्मुख राम ने पिता की आज्ञा का, बिना नन्-नच किये, धर्म समझकर पालन करने की महत्ता प्रतिपादित की, चाहे वह आज्ञा क्रोध, प्रेम अथवा वासना के वशीभूत होकर ही क्यो न दी गयी हो—

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्ध
क्रोधात्प्रहर्षाद्यथवापि कामात्।
यद् व्यादिशेत कार्यमवेक्ष्य धर्मं
कस्त न कुर्यादनृशसवृत्तिः ॥ २।२१।५६

कण्डु ऋषि का पिता की आज्ञा से गौ-हत्या करना और सगर की आज्ञा से उनके पुत्रो का धरती खोदकर मृत्यु का ग्रास बनाना ये पूर्वकालीन उदाहरण राम के सामने मौजूद थे। इन लोगो ने तथा अन्य कितने ही देव-तुल्य पुरुषो ने आँख मीचकर पिता का वचन माना था। पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन करना राम की शक्ति के बाहर की बात थी (२।२१।३०–४)।

---

१. पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा। सत्येन च महाबाहो चिर जीवाभिरक्षितः॥ २।२५।६।

२. अहं हि वचनाद्राज्ञः पतयामपि पावके। भक्षयेयं विषं तीक्ष्ण पतेयमपि चार्णवे॥ नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च। २।१८।२६।

एक रोचक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि माता की आज्ञा और पिता के आदेश में परस्पर विरोध होने पर किसका वचन पुत्र के लिए अधिक आदरणीय होना चाहिए। यो तो 'धर्मात्माओ को पिता मे जितनी गौरव-बुद्धि होती है, उतनी ही माता मे भी'[1], तथापि रामायण मे ऐसी विषम स्थिति मे पिता की आज्ञा को ही अधिक ऊँचा पद दिया गया है। कौसल्या और राम के सम्वाद से यह प्रकट है। राम ने पिता की आज्ञानुसार जब माता से वन जाने की अनुमति माँगी, तब कौसल्या ने उनसे कहा—"हे धर्मज्ञ, यदि तुम धर्म का आचरण करना चाहते हो तो यही रहकर मेरी सेवा करो। देखो, कश्यप ऋषि अपने घर मे ही नियमपूर्वक माता की सेवा में लगे रहे और अन्त में स्वर्ग गये। जिस प्रकार गुरु-भाव से राजा तुम्हारे पूज्य हैं, वैसी मै भी हूँ। मै तुम्हारे वन जाने की आज्ञा नही देती, इसलिए न जाओ" (२।२१।२४-५)। इसके उत्तर मे राम ने परशुराम का उदाहरण दिया, जिन्होने पिता की आज्ञा का ऑख मूद कर पालन करके अपनी माता रेणुका का सिर फरसे से काट डाला था (२।२१।३३)। माता के प्रति अतिशय स्नेहमय होने पर भी राम पिता के वचन अधिक माननीय समझते थे, क्योकि 'पिता की आज्ञा पालन करने से कोई भी धर्म से भ्रष्ट नही होता'।[2] शुक्र नीति (२।७८-६) के अनुसार पिता के पुण्य के प्रभाव से परशुराम को अपनी माता पुन मिल गयी और राम को अपना राज्य पुन प्राप्त हो गया, जबकि पिता की आज्ञा की अवहेलना करके ययाति और विश्वामित्र के पुत्र निम्नतम स्थिति को प्राप्त हुए। सामान्यत माता-पिता दोनो के ही वचन पुत्र के लिए वरेण्य थे, किन्तु पितृ-प्रधान परिवार मे पिता थे स्वभावत कुछ प्रमुखता मिल जाती थी।

राजकीय परिवारो मे ज्येष्ठ पुत्र अपने विवाह के बाद दैनिक कार्यकलाप मे पिता को भरसक सहयोग देता था। सीता से विवाह हो जाने के बाद राम अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा का विशेष ध्यान रखते थे, उनकी आज्ञा के अनुसार वे राजकाज देखते तथा प्रजाजनो के प्रिय और हित मे निरत रहने लगे। समय-समय पर वह अपनी माताओ तथा अन्य गुरुजनो की सेवा करने का भी ध्यान रखते थे। उनके इस बर्ताव से राजा दशरथ, पुरवासी, वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा वैश्य महाजन सन्तुष्ट और प्रसन्न थे (१।७७।२०-४)।

मानव-सभ्यता के अरुणोदय से ही परिवार को स्थायित्व प्रदान करने मे पैतृक स्नेह और यौन इच्छा का प्रमुख योग-दान रहता आया है। समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह इन दोनो भावनाओ का इस प्रकार सचालन करे कि वे सामाजिक दृष्टि से उपयोगी बन जाय। पैतृक स्नेह ही पिता को सन्तति के लिए त्याग और श्रम करने को कटिबद्ध रखता है। वृद्धावस्था मे पुत्र को सब कुछ सौप उपराम-वृत्ति ग्रहण करने की आज्ञा देकर हमारे शास्त्रकारो ने पिता के सम्पत्ति-प्रेम या अर्थ-स्वभाव को परिवार की भावी सुख-शान्ति और सुचारु व्यवस्था केलिए नियन्त्रित

---

१. यावत्पितरि धर्मज्ञ गौरव लोकसत्कृते। तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम्॥२।१०१।२१।

२. पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नाम हीयते।२।२१।३७

रखने की चेष्टा की। इसी प्रकार यौन भावना पर व्यवहार (कानून) नैतिक और धार्मिक नियमो तथा परम्पराओ और सस्कारो का बन्धन लगाकर उसे मर्यादित रखा गया, जिससे वह कामोपभोग की उद्दाम वासना के बजाय वश चलाने की हार्दिक अभिलाषा का रूप ले सके।

परिवारिक सम्बन्धों का आदर्श

परिवार के सदस्यो का सौहार्दमय पारस्परिक सम्बन्ध ही आर्य-सस्कृति का प्रधान सम्बल, उसकी उत्कृष्टता का प्रमुख रहस्य रहा है। रामायणकार ने पाठक के सम्मुख संयुक्त परिवार के विभिन्न सदस्यो के बीच स्नेह और सद्भावनापूर्ण सम्बन्धो का एक उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। दशरथ के परिवारिक जीवन का चित्रण कर वाल्मीकि ने पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, देवर-भौजाई, सास-पतोहू आदि के स्नेहसिक्त एव अनुकरणीय सम्बन्धो के समुज्ज्वल उदाहरण उपस्थित किये है। यह सत्य है कि कैकेयी की ईर्ष्या-भावना इस सुखी परिवार पर काली छाया की तरह आ पडी है, पर स्वार्थपरायणता और अमर्यादित आचरण के कारण ही तो अन्य सदस्यो की उदात्त वृत्तियाँ और नि स्वार्थ व्यवहार प्रकाश में आ सके है। दशरथ मे यदि आदर्श पिता और राम मे आदर्श पुत्र मूर्तिमान् हो उठे है तो लक्ष्मण और भरत मे आदर्श भाई तथा कौसल्या और सीता मे आदर्श पत्नी का रूप निखरा है। रामायणकालिक सस्कृति का कोई भी अध्ययन, इन विशिष्ट चरित्रो के पारिवारिक आचारण का समुचित मूल्याकन किये बिना, पूर्ण नही हो सकता।

राम और उनके तीनो भाइयों के बीच निश्छल और प्रगाढ़ भ्रातृ-प्रेम था। जैसे गाय के खुर अथवा प्रोष्टपद नाम के तारे दो-दो के जोड मे परस्पर अनुरक्त रहते थे, वैसे ही वे चारों भाई राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न के दो-दो के जोडे में परस्पर अनुरक्त थे **प्रोष्ठपदोपमाः**। उनमे कोई स्पर्धा, कोई प्रतियोगिता या कलह नही था। राम कोअपने भाई प्राणो से भी प्यारे थे। वन-प्रस्थान के समय उन्होंने सीता को घर पर रहने के लिए समझाते हुए कहा था कि प्राणप्रिय भरत और शत्रुघ्न का तुम अपने भाई और पुत्र के समान विशेष ध्यान रखना।[1] भाइयो के प्रति उनका प्रेम चित्रकूट पर भी उस समय उज्ज्वल रूप मे प्रकट हुआ है, जब उनसे अयोध्या लौट चलने की अनुनय-विनय की गयी थी। लक्ष्मण ने राम के लिए नि स्वार्थ आत्मोत्सर्ग कर रखा था और राम के भी वह मानो बाह्य प्राण ही थे (**बहिः प्राण इवापर**, १।१८।३०)। राम और भरत का प्रेम भी अद्वितीय और देवोपम था। राम का भरत के राज्याभिषेक के प्रस्ताव से आनन्दित होकर अपना अधिकार छोड देना तथा भरत का उसे स्वीकार न करना और तपस्वी रूप में जीवन-यापन करना, एक-दूसरे से बढकर आदर्श उपस्थित करते है।

---

१. भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषत.। त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणै॰ प्रियतरौ मम। २।२६।३३।

राम के राज्याभिषेक पर कैकेयी के आक्रोश की घटना को एक अपवाद मान लिया जाय तो हम देखेगे कि दशरथ की रानियो का पारस्परिक व्यवहार नितान्त सौहार्दपूर्ण था। कौसल्या का कैकेयी के प्रति भगिनीवत् व्यवहार था।[1] सुमित्रा ने अपनी स्थिति सर्वथा गौण बना रखी थी—उसने कौसल्या के हितो मे ही अपने हितो को एकाकार कर दिया था और अपने पुत्र को जेठे भाई के प्रति पूर्णतया अनुरक्त बनने देने मे ही गौरव का बोध किया था। मथरा द्वारा बहकाए जाने से पहले कैकेयी राम को अपना बडा पुत्र मानती थी, उसके स्नेह के वह और भरत दोनो समान रूप से पात्र थे।[2] राम का भी अपनी विमाता के प्रति मातृ-तुल्य व्यवहार था। उन्हे अपने प्रति कैकेयी की सद्‌भावना में कोई सन्देह नही था। उसके षड्यन्त्र के प्रकट होने पर भी राम के व्यवहार मे कोई अन्तर नही आया। सच तो यह था कि दशरथ के विशाल अन्त पुर में, जहाँ असख्य नर-नारी रहते थे, राम से कोई अप्रसन्न नही था—

> **बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम् ।**
> **परिवादोऽपवादो वा राघवे नोपपद्यते ।।२।१२।२७**

इस प्रकार हम देखते है कि माता और पिता की भक्ति सन्तति क। प्रेम, पति-पत्नी की अनुरक्ति, अतीत की परम्पराओ ने आस्था तथा पूर्वजो का श्रद्धामय स्मरण—ये है वे सुकुमार तन्तु थे, जो परिवार को सदस्यो के परस्पर बाँधे रखते थे। एक सस्कारी हिन्दू गृहस्थ को घर, गृह-देवता अग्नि के संरक्षण मे परिवार के जीवित सदस्यो का ही नही, अपितु दिवगत पितरो का भी आवास है। अग्नि की साक्षी में पचमहायज्ञो का अनुष्ठान किया जाता है तथा पितृ-यज्ञ के समय पूर्वजो का प्रतिदिन स्मरण। ऐसे पवित्र वातावरण मे प्राचीन आर्यों का परिवार-मातृ-स्नेह, पैतृक सरक्षण, दाम्पत्य प्रणय और सन्तानोत्पत्ति की हमारी प्राकृतिक प्रवृत्तियो के आधार पर समाज-हित मे योग-दान करता था।

परिवार का नष्ट-भ्रष्ट, तितर-बितर या विशृंखलित हो जाना एक महान् विपत्ति थी। अराजकता के दोषो का वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते है कि राजा-रहित प्रदेश में पारिवारिक जीवन और नैतिक जीवन का चरम पतन हो जाता है—तब पिता और पुत्र में सघर्ष होने लगता है और स्त्रियाँ हाथ से बाहर निकल जाती है—'**नाराजके पितुः पुत्रो भार्या या वर्तते वशे**' (२।६७।१०)।

चरित्र-निर्माण

मनुष्य के चरित्र-निर्माण मे कुटुम्ब के महान् योग को रामायण ने स्वीकार किया है। कुल

---

१. **तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी। त्वयि. . .भगिन्यामिव वर्तते। २।७३।१०**

२. **स मे ज्येष्ठसुतः श्रीमान् धर्मज्येष्ठ इतीव मे। तत्त्वया प्रियवादिन्या सेवार्थं कथितं भवेत्।। २।१२।१७; ननु ते राघवस्तुल्यो भरतेन महात्मना।२।२१।२१**

या परिवार ही एक ऐसा शिक्षणालय है, जिसमें व्यक्ति स्नेह और सौहार्द का, गुरुजनों के प्रति आदर और भक्ति-भाव का तथा सामूहिक कल्याण के लिए वैयक्तिक प्रवृत्तियो और महत्त्वाकाक्षाओं को दबाने का पाठ सीखता है। अपने जीवन मे राम ने जिन अलौकिक गुणों का परिचय दिया, जडें उनके अपने पारिवारिक जीवन मे निहित थी। वही उन्होने सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरु-सेवा—जैसे सद्गुणो को विकसित किया,[1] वही उन्होने 'प्रजा-जनो को सत्य से, दीनो को दान से, गुरुजनो को सेवा से और शत्रुओ को धनुष से जीतना' सीखा।[2] शत्रु और मित्र के प्रति सरल, शिष्ट और स्पष्ट व्यवहार, जीवन के विषम क्षणो मे उच्च नैतिकता का आग्रह, विचारो की दृढता, असत्य और ईर्ष्या-द्वेष से सर्वथा मुक्ति, दानशीलता और उदाराशयता, समस्त मानवो के प्रति सेवा-भाव, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और भ्रातृत्व आदि गुण, जो उनके उथल-पुथल-भरे जीवन मे पद-पद पर प्रकट हुए हैं, अपने उद्भव और विकास के लिए पारिवारिक सहयोग, पारिवारिक अनुशासन एव पारिवारिक वातावरण के ही ऋणी थे। वस्तुत राम का समग्र जीवन परिवार के मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक सत्प्रभाव का उज्ज्वल दृष्टान्त है।

---

१ सत्य दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्। विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥ २।१२।३०।

२. सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान् दानेन राघव। गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्। २।१२।२९।

श्री दामोदर शास्त्री

बाण के रूपरंगवर्णन की विशेषता

महाकवि बाण भट्ट कोई चित्रकार या शिल्पी नही, किन्तु शब्द शिल्पी थे। उनके कृतित्व में चित्रकार या शिल्पी की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। उनकी हरएक कृति में उनकी अलौकिक प्रतिभा का चमत्कार पाठकों को उपलब्ध होता है।

बाण के पास अखिल शब्दभडार है। वे एक ही बात को कई शब्दों से तो कहते ही हैं, साथ ही साथ एक ही साधर्म्य के लिए एकत्र प्रयुक्त उपमान को छोड कर अन्यत्र उसी साधर्म्य के लिये दूसरे उपमान को प्रयुक्त करना भी बाण की प्रतिभा का कार्य है। कौन-सा उपमान कहाँ प्रयुक्त होना चाहिए---इस बात को बाण अपनी कुशाग्र बुद्धि से निश्चय करके ही उस उपमान को प्रयुक्त करते हैं। यह भी बाण की अद्वितीय प्रतिभा का चमत्कार है।

जैसे चित्रकार रूप और रग का पारखी, विशेषज्ञ और उनका निर्णायक होता है, उसी प्रकार बाण ने अपने वर्णन मे रूप और रग का सयमन और नियमन किया है। वे किसी भी पदार्थ के श्वेत कृष्ण आदि रूपो के वर्णन के लिए भिन्न-भिन्न उपमान, जैसे श्वेत के लिए हस, स्फटिक, चन्द्रमा आदि तथा कृष्ण के लिए मरकत, असित कुवलय, तमाल आदि प्रयुक्त करते हैं। रगो के विभाजन करने में बाण ने अपूर्व परिचय-चारुता का परिचय दिया है।

रंगों का विभाजन

(क) शुद्ध रग (ख) एक से अधिक मिश्रित रंग (ग) दो से अधिक मिश्रित रग (घ) तीन से अधिक मिश्रित रंग (ङ) चार से अधिक मिश्रित रंग।

क

(१) शुक्ल रंग—इसको सित, धवल, श्वेत तथा अवदात पद से भी कहते हैं। (२) नील रंग—इसको असित, कृष्ण, श्याम तथा श्यामल पद से भी कहते हैं। (३) पीत रग—इसको अवदात पद से भी कहा जाता है। (४) रक्त रग—इसको लोहित पद से भी कहा जाता है। (५) हरित रग।

ख

अरुण =कृष्ण +लोहित (अरुण· कृष्णलोहित.—अमरमाला)।
पाण्डु =शुक्ल +पीत (पाण्डुस्तु पीतभागार्धकेतकीधूलिसंनिभ·—शब्दार्णव)

पाटल =शुक्ल +रक्त (श्वेतरक्तस्तु पाटल—अमरकोश)।
धूसर =शुक्ल +थोड़ा पीत (धूसरस्तु सित पीतलेशवान्बकुलच्छवि –शब्दार्णव)
धूम्र =कृष्ण +लोहित (धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते—अमरकोश)।

ग

नीलपाटल =नील+शुक्ल+रक्त
कृष्णपाण्डुर =नील+शुक्ल+पीत

घ

कपिल=शुक्ल+पीतज्यादा+हरित+रक्त
(सितपीतहरिद्रक्तः कडारस्तृणवह्निवते अयन्तुद्रिक्तपीतांगः कपिलो गोविभूषणः —शब्दार्णव)
पिंग=कृष्ण+पीत+हरित+रक्त
पिशंगस्त्वसितावेशात्पिंगो दीपशिखादिषु—शब्दार्णव

ङ

शबल=चितकबरा

शुक्ल रंग

बाण ने शुक्ल रग के उपमानो को खोजने मे तथा यथास्थान नियुक्त करने में अपनी शक्ति सी लगा दी है। शुक्ल रग के लगभग २५ उपमान मिले है। इससे अधिक भी यदि अति-सूक्ष्मता से खोजे जाय तो मिल सकते है। कवि को शुक्ल रग के वर्णन मे अपनी शक्ति लगाने का तात्पर्य यह है कि गुप्तकाल मे, जिस समय यह ग्रन्थ बना प्राय सभी वस्तुएँ वस्त्र, मकान आदि अधिकतर शुक्ल रंग के ही हुआ करते थे।

श्वेत रंग के उपमान

१ हस २ अमृतफेन ३ स्फटिक ४ भुजगनिर्मोक ५ शशि ६ शशिकर ७ दुकूल ८ भस्म ९ जलफेन १० कुमुद ११ चन्दन १२ सुधा १३ मृणाल १४ क्षीरोदधि १५ हिम १६. हार १७ हरहास १८ कुसुम १९ दशनप्रभा २० तारागण २१ स्वच्छ जल २२ जलधरशकल २३ शुक्ति २४ ज्योत्स्ना २५ शेषफणामण्डल।

हंस

कादम्बरी के सन्ध्यावर्णन मे पृथिवी पर पडती हुई ज्योत्स्ना चाँदनी को हस के समान धवल बताया गया है। चन्द्रापीड के स्वप्नवर्णन में चन्द्रापीड के पिता के शयनतल को हस के समान धवल कहा है। इन उपमानो के अध्ययन करने पर पता चलता है कि धवल गुण के

सादृश्य से ही कवि हंस को उपमान नही बनाता, किन्तु उसका आकाशचारित्व तथा देववाहनत्व रूपसाधर्म्य भी इसमें कारण है। तात्पर्य यह है कि ज्योत्स्ना आकाश में रहती है, हंस भी आकाश में रह सकता है, इसी प्रकार पृथिवी पर पतन रूप धर्म भी, जो ज्योत्स्ना में है, हस मे ही हो सकता है।

यद्यपि धवल रग के उपमान चन्द्र मे भी आकाशवासित्व आदि गुण हो सकते हैं, किन्तु उसमे पतन नही हो सकता।

दूसरे उदाहरण में शयनतल देवरूप पिता का स्थान है, हस भी ब्रह्मा जी का वाहन बैठने का स्थान है, यह साधर्म्य अन्य उपमानो मे नही मिलता—यही कारण है कि बाण ने अन्य उपमानो को छोड़ कर हस को ही उक्त स्थानो पर उपमान बनाया।

हमारी बतायी गयी विशेषता यदि अन्यत्र न मिले, तो वहाँ कुछ कारण समझ लेना चाहिए। जैसे श्लेष-गर्भ उपमा आदि। उदाहरणार्थ—

चाण्डालकन्यावर्णन मे उसको शरदृतु के समान बतलाया गया है। दोनो का साधर्म्य 'कलहसधवलाम्बरा' पद से दिया गया है। शरदृतु मे आकाश हसो से धवल हो जाता है, अथवा उस समय हस ही उसके धवल वस्त्र प्रतीत होते हैं। चाण्डालकन्या के भी वस्त्र हस के समान धवल है।

यहाँ यद्यपि ऊपर कहे हुए गुण उपमेय मे नही मिलते, किन्तु यदि यहाँ हस उपमान न दिया जाता तो उभयत्र साम्य नही मिलता, और बाण के श्लेष की छटा भी न मिलती।

अमृतफेन

अमृतफेन से दूध का फेन भी समझ सकते है। दूध का फेन भी सफेद होता है। कथामुख के शूद्रकवर्णन मे कहा गया है कि शूद्रक इतना सफेद वस्त्र पहने हुए है, जितना अमृतफेन सफेद होता है।

वस्त्र जैसे निर्जीव पदार्थ के लिए निर्जीव शुक्ल रग का उपमान अमृतफेन ही उचित था।

स्फटिक

शूद्रक के स्नानवर्णन मे शूद्रक के स्नानपीठ को (जिस पर बैठ कर स्नान किया जाता है) स्फटिक के समान धवल बताया गया है।

स्फटिक जैसे निर्जीव पदार्थ के लिये सुधाफेन पूर्वोक्त उपयुक्त हो सकता था, किन्तु अमृतफेन मे आरोहणयोग्यता नही है, अर्थात् उस पर बैठा नही जा सकता। इसलिए स्फटिक उपमान दिया गया।

भुजंगनिर्मोक तथा शशि

जाबालिवर्णन में उसकी जटा को साप की केंचुली के समान धवल बताया है। यह उपमान पूर्वकथित अपवाद के कारण दिया गया है।

चन्द्रापीड के दिग्विजययात्रा प्रसंग में उसके दुकूल (दुपट्टे) को इन्दुधवल (चन्द्रमा के समान धवल) कहा है। चन्द्र जैसी वस्तु को धारण करना महान् व्यक्तियो का ही काम हो सकता है। बाण को एक महान् व्यक्ति के रूप मे चन्द्रापीड को रखना है, इसीलिए यही उपमान दिया गया। अथवा उसकी शोभावृद्धि के सकेत के लिए यह उपमान दिया हो। इसी प्रकार अन्य कारण भी विज्ञ पाठक सोच सकते है।

शशिकर

जाबालि के आश्रम का वर्णन करते समय कहा गया है कि सिह जैसे स्वभाव से हिंस्र पशु भी अपनी हिंसा प्रवृत्ति को भूल गये है। सिह की जटा में मृणाल की शका हाथियों को हो गयी है। हाथियो के बच्चे नि शक हो उसे खीच रहे है, इतना होने पर भी मृगपति कुछ नही बोलता— यह है जाबालि के वन का प्रभाव। यहाँ सिह की जटा को शशिकरधवल (चन्द्रमा की किरण के समान धवल) बताया गया है।

इसी प्रकार विलासवती के शयनतल को इन्दुदीधितिधवल प्रच्छदपट (चन्द्रकिरण के समान धवल) कपड़े से छाया हुआ बताया है।

इसी प्रकार राजभवन मे अम्बरवितान को चन्द्रकिरण के समान धवल बताया है। पत्रलेखा के कादम्बरी वृत्तश्रावण में भी कुल को रजनिकरकिरणावदात (चन्द्रकिरण के समान अवदात) बताया है। (अवदात श्वेत पीत दोनो मे व्यवहृत होता है, किन्तु कवि एक बार चन्द्र-किरण को धवल का उपमान मान चुका है, अत धवल ही समझना चाहिए।) सूक्ष्मता से देखा जाय तो मालूम होगा कि चन्द्रमा की किरणो मे सबसे ऊपर रहना, फैली रहना आदि गुण विद्य-मान है, जो अन्य उपमानो में नही है। प्रथम उदाहरण मे जटा का शरीर पर फैली रहना, दूसरे में कपड़े का शयनतल पर, तीसरे मे अम्बरवितान का भवन पर फैला रहना गुण विद्यमान है ही। चौथे उदाहरण में कवि का उच्च या श्रेष्ठ कुल के रूप मे कादम्बरी के कुल को रखना है, यही कारण है कि यही उपमान कवि को जचा।

दुकूल

कथामुख के सन्ध्यावर्णन मे अम्बर (आकाश) को धोए हुए दुकूल के समान धवल बताया है। चन्द्रापीड के दिग्विजय प्रस्थान मे कहा है कि सेना आदि के चलने से उठी हुई रज से दुकूलपट के समान धवल गगनापगा (आकाशगगा) भी मलिन हो गयी।

दुकूल में आश्रित रूप गुण होने के कारण उपमान बनाया गया। तात्पर्य यह है कि दुकूल मनुष्य आदि के आश्रित रहता है, आकाशगगा भी आकाश के आश्रित रहती है।

प्रथम उदाहरण मे तो अपवाद के कारण यह उपमान दिया गया।

भस्म

जाबालिवर्णन में जाबालि के बुढापे को भस्म के समान धवल बताया गया है। इसी प्रकार इन्द्रायुधवर्णन में भी इन्द्रायुध के मुख के तिलक को भस्म के समान धवल कहा है।

यहाँ यद्यपि अन्य उपमान उपयुक्त हो सकते थे, किन्तु श्लेष को मिलाने के लिए यह उपमान बाध्य हो कर देना पड़ा। पाठको को यहाँ का स्थल देख कर समझ लेना चाहिए।

जलफेन

"अहो ! बुढापा बडा बली है। जाबालि मुनि की प्रलेयकालीन रवि की प्रचण्ड किरण के समान नही देखी जा सकने वाली,चन्द्रकिरण के समान पाण्डु केश वाली जटा मे फेनपुञ्ज के समान धवल बुढापा आता हुआ उसी प्रकार भयभीत नही हुआ, जिस प्रकार फेनपुञ्ज के समान धवल गगा पूर्वकथित जैसी जटा मे तथा क्षीराहुति अग्नि की ज्वाला में गिरती हुई नही भयभीत होती।" यहाँ हमारे बताये गये अपवाद के कारण यह उपमान देना पडा।

कुमुद

यह एक सफेद कमल होता है। इसे पुण्डरीक पद से भी कहा जाता है।

कथामुख के सन्ध्यावर्णन में चन्द्र रूपी सर को खिले हुए पुण्डरीक के समान धवल कहा गया है।

उज्जयिनीवर्णन मे उज्जयिनी सरोवरो से, जो खिले हुए कुमुद के समान धवल मध्यभाग वाले इन्द्र के लोचन के समान धवल हैं, सुशोभित है। यहाँ लोचनो के मध्य भाग को कुमुद के समान धवल कहा गया है।

इसी प्रकार 'पुण्डरीक के गगननयन' मे आकाश से उतरे हुए पुरुष को कुमुद के समान धवल देह वाला बताया है।

कुमुद को आकृतिसाम्य से उपमान बनाया गया है। अर्थात् लोचन और कुमुद में आकृति की समानता है, इसी कारण यही उपमान दिया गया। अन्तिम को छोड कर अन्य उदाहरणो मे अपवाद के कारण यह उपमान दिया।

चन्दन

राजा के भोगविलासवर्णन मे चन्दन के समान धवल राजा की चन्दन से धवल मुसलायुध से उपमा दी गयी है। यहा भी अन्य उपमानो के रहते हुए भी यही उपमान देने का कारण अपवाद पड़ जाना है।

सुधा

उज्जयिनीवर्णन में उज्जयिनी के सुधालेप से सफेद प्राकारमण्डल की उपमा सुधा के समान सफेद कैलास से दी गयी है।

उसी वर्णन मे **पशुपतिलास्यक्रीडेव सुधाधवलाट्टहासा** से सुधा से धवल अट्टालिका के प्रकाश वाली उज्जयिनी की उपमा सुधा के समान धवल अट्टहास वाली पशुपतिलास्यक्रीडा से दी गयी है।

यहीं पर रक्तवर्णापि सुधाधवला से उज्जयिनी को सुधा से धवल कहा है।

चन्द्रापीड के दर्शन से कादम्बरी के भावावेश में स्मित रूपी ज्योत्स्ना को सुधा के समान बताया गया है।

यहाँ कवि को यह ध्वनित करना है कि हँसने से उसकी शोभावृद्धि हुई, इसी कारण से मकान आदि की शोभा बढाने वाली सुधा को उपमान बनाया गया है। पहले तीन उदाहरणो में अपवाद आने के कारण इसे दिया गया।

बिस

चन्द्रापीड के दिग्विजयप्रस्थान में उठी हुई रेणु धूलि को दीर्घकालीन मृणाल के समान धवल बताया गया है।

पुण्डरीक के प्रवृत्तिनिवेदन मे मुक्तालता को बिस मृणाल के समान धवल कहा है। महाश्वेता के अभिसार वर्णन मे करो को मृणालवलय के समान धवल बताया गया है। पुण्डरीक शरीर के गगननयन प्रसग मे अगुलियो को मृणाल के समान धवल बताया है।

जैसे—आकाश से उतरे हुए पुरुष का वर्णन करते समय।

प्रथम उदाहरण मे धूलि में उठना रूप गुण होने के कारण, द्वितीय मे लम्बन रूप गुण होने के कारण, तीसरे मे कोमलता रूप गुण होने के कारण, चौथे मे भी उसी कारण से इसे उपमान दिया गया है। अन्य कारण भी विज्ञ पुरुष बना सकते हैं।

क्षीरोदधि

दिग्विजयप्रस्थान मे हाथियो के सूड से निकले हुए सशीकरासार को क्षीरोदधि के समान धवल बताया गया है।

कादम्बरीविषयक प्रश्न पूछे जाने पर केयूरक कादम्बरी की वियोगावस्था को खूबी के साथ वर्णन करता है। ——————————'आपके (चन्द्रापीड) के चले आने पर कादम्बरी मदलेखा के कन्धे पर अपना मुख रख कर दुग्धोदधि के समान धवल दृष्टिपातो से मानो उसी दिशा को धोती हुई जिधर आप चले आए थे, बहुत देर तक बैठी रही।' यहा दृष्टिपात को क्षीरोदधि के समान धवल कहा है।

यहाँ यद्यपि अन्य उपमान दिये जा सकते थे, किन्तु क्षीरोदधि मे द्रवत्व रूप गुण होने के कारण यह दिया गया है। तात्पर्य यह है कि शीकरासार एक द्रव पदार्थ है तथा वह दृष्टिपात से धो भी रही है अत प्लावन रूप गुण भी है, यह सब गुण क्षीरोदधि में ही है, अन्य उपमानो में नही हैं। विज्ञ पुरुष अन्य उपमानो के त्याग देने पर अन्य कारण स्वय विचार सकते है।

हिम, हार तथा हरहास

बाण ने इन तीनो को एक जगह उपमान बनाया है। महाश्वेताकृत आतिथ्य प्रसग मे गुफा में गिरते हुए झरनो को हिम, हार तथा हरहास के समान धवल बताया गया है।

यहाँ तीनों को उपमान बनाने का यह रहस्य मालूम होता है कि हिम को उपमान बना कर बाण को शीतलता का बोध, झरनो के जल में कराना है। हार को उपमान बना कर यह ध्वनित करना है कि जिस प्रकार गले पर ऊपर से नीचे आता हुआ हार उसकी शोभा बढ़ाता है, उसी प्रकार गुफा में वे झरने ऊपर से नीचे हार की तरह आ रहे थे तथा उसकी शोभा भी बढ़ा रहे थे। हरहास को उपमान बना कर पाठकों को यह बोध कराना है कि वहाँ मगल ही मगल का साम्राज्य था। जिस स्थान पर हर-शकरजी हँसते हो, उस स्थान पर अमंगल की शका कौन कर सकता है ?

केवल हरहास को भी बाण ने उपमान बनाया है। पुण्डरीक के जन्मवृत्तान्त के प्रसग मे मन्दाकिनी के प्रवाह को हरहसित के समान धवल कहा है।

यहा भी इसे देने का पूर्वोक्त कारण हो सकता है।

कुसुम

पुण्डरीक वर्णन में उसके तिलक को कुसुम के समान धवल बताया गया है। कादम्बरी की विरहावस्था के वर्णन मे लतापल्लवो को कुसुम के समान धवल कहा है। कुसुम में पुष्पत्व जाति विद्यमान होने के कारण पल्लवो का उपमान इसे बनाया। पहले उदाहरण मे तो पूर्वोक्त अपवाद होने के कारण इसे दिया गया।

दशनप्रभा

महाश्वेता के अभिसार के पहिले—चन्द्रोदय वर्णनप्रसग मे 'ज्योत्स्ना ने आकर निशा की मुख शोभा की'। कवि यहाँ उत्प्रेक्षा करता है कि—'अपने प्रियतम चन्द्र को देखकर मन्द-मन्द हसी हुई रात्रि के मुख की शोभा बढाने वाली यह उसकी दशनप्रभा है।'

दशनप्रभा—दातो की प्रभा सफेद होती ही है, यह ज्योत्स्ना भी सफेद है इसलिए दशनप्रभा को ज्योत्स्ना का उपमान बनाया गया है, और इसी के आधार पर उत्प्रेक्षा भी की गयी है।

तारागण

पुण्डरीक शरीर के गगननयन प्रसंग मे आकाश से उतरे हुए पुरुष के मोटे-मोटे मोतीवाले हार को तारागण की तरह कहा गया है। कही-कही उपमा मे साधर्म्य छिपा भी लिया जा ा है अत यहाँ तारागण के समान सफेद ऐसा नही कहा गया किन्तु तारागण की तरह ऐसी ही। यहा टीकाकार ने लिखा भी है कि 'श्वेतत्ववर्तुलत्वसाम्यादाह—तारेति।' अर्थात् यह उपमान दोनों के सफेदी तथा गोलाई रूप साधर्म्य को कहने के लिए प्रयुक्त किया गया है।

इस कथन से यही उपमान क्यो किया गया इस प्रश्न का भी समाधान हो जाता है कि गोलाई को द्योतित करने के लिए इसे दिया गया।

स्वच्छ जल

पूर्वोक्त प्रसंग में ही उसकी देहप्रभा को स्वच्छ वारि के समान धवल कहा है। वहाँ उत्प्रेक्षा की गयी है कि वह मानो दिगन्तरो को धो रहा है।

कादम्बरी विरहावस्थावर्णन में उसके नखमयूख को जलधारा के समान धवल कहा है। यहा प्लावन रूप गुण जलधारा मे होने के कारण इसे उपमान बनाया गया।

यहाँ शंका हो सकती है कि क्षीरोदधि ही क्यो नही दिया गया, इसका उत्तर यह है कि इस उपमान की अपेक्षा क्षीरोदधि में कुछ वैशिष्ट्य है। क्षीरोदधि को कादम्बरी के दृष्टिपातो का उपमान बनाया गया है। वहाँ वह उपमान धवलता वर्णन के साथ-साथ उसकी मधुरता को भी ध्वनित करता है। सामान्य रमणी की आखो मे जब मधुरता दीख पडती है तब कादम्बरी जैसी सर्वगुणसम्पन्न नायिका की आँखो मे क्यो नही मधुरता होगी। हाथियो के सूँड से निकले हुए शीकर सार मे इस उपमान को प्रयुक्त करने की शका ही नही होती, जल का उपमान जल ही देना बुद्धि की बलिहारी ही कहा जायगा।

जलधर

कथामुख मे शूद्रक के स्नान के बाद शूद्रक के आस्थानमण्डप मे उसके शयनतल को **अखिलविगलितजलनिवहजलधरशकलानुकारिणा** से जल हीन मेघ के समान बताया गया है।

यहाँ कवि को शूद्रक तथा उसके आस्थानमण्डप की उन्नतम महिमा बतानी है। जलधर आदि इन्द्र आदि की सभा को छोड कर कहाँ रह सकते हैं, तथा जलधर पर इन्द्र जैसे को छोड कर कौन बैठ सकता है। इस उपमान को देने से यह भी ध्वनित होता है कि शयनतल ऊँचा था क्योंकि जलहीन मेघ भी हलके होने के कारण ऊपर उठ जाता है।

शुक्ति

कादम्बरीवर्णन मे उसके कपोलो को मदिरारस मे पूर्ण माणिक्यशुक्तिसपुट की छवि की तरह छवि वाली कहा है। यहा धवल रग के साधर्म्य के साथ-साथ इन दोनो मे आकृति समानता भी है इसीलिए यही उपमान दिया गया।

ज्योत्स्ना

शिवसिद्धायतनवर्णन मे कैलाशपाद की प्रभा को, तथा सिहासनारोहण के समय चन्द्रापीड के शरीर को चादनी के समान धवल बताया है। यहा इन दोनो की प्रभा को सर्वश्रेष्ठ ध्वनित करने के लिए ज्योत्स्ना को उपमान बनाया गया।

शेषफणामण्डल

महाश्वेता के अभिसार के पहिले चन्द्रोदयवर्णन मे चन्द्रबिम्ब को—'रसातल को भेद कर आये हुए शेषनाग के फणसमूह के समान धवल कहा है।' यहा धवल रूप साधर्म्य को छिपा लिया गया है।

यहाँ धवलता के साथ-साथ उपमेय की गोलाई रूप साधर्म्य को भी दिखाने के लिए इसे प्रयुक्त किया गया है। टीकाकार ने लिखा भी है कि 'श्वेतत्ववर्तुलत्वसाधर्म्यमाह—इति'। यद्यपि तारागणको उपमान बना सकते थे किन्तु तारो की प्रभा चन्द्र प्रभा से नीची है, इसलिए उसको ठीक नहीं होता, तथा उत्प्रेक्षा का दर्शन भी नही होता। अब हम इन सब उपमानो के नाम, उनके उपमेय, उनके प्रयोगस्थल का निर्णयसागर प्रेस से मुद्रित—नवम संस्करण, भानुचन्द्रकृत टीका वधकपरिष्कृत—कादम्बरी का पृष्ठ तथा उनकी विशेषताओं का चार्ट द्वारा बोध कराएंगे।

उपमान		उपमेय	कारण	पृष्ठ
हंस	१	ज्योत्स्ना	आकाशवासी की धवलता का वर्णन	१०७
	२	शयनतल	देव स्थान की धवलता का वर्णन	२०३
	३.	चाण्डाल कन्या	अपवाद श्लेषगर्भ उपमा आदि	१५
अमृतफेन	१	दुकूल	निर्जीव पदार्थ की धवलता का वर्णन	१७
स्फटिक	१	स्नानपीठ	आरोहण योग्य पदार्थ की धवलता का वर्णन	[illegible]
भुजगनिर्मोक	१	जटा	अपवाद	६४
शशि	१	दुकूल	महान् व्यक्ति की शोभावर्द्धक पदार्थ की धवलता	२[illegible]६
शशिकर	१	जटा	ऊपर फैले हुए पदार्थ की धवलता का वर्णन	१००
	२	अम्बरवितान	,, ,, ,,	१९९
	३	शयनतल	ऊंचे पदार्थ की धवलता का वर्णन	१५३
	४	कुल	ऊंचे श्रेष्ठ पदार्थ की धवलता का वर्णन	४७३
दुकूल	१	अम्बर	आश्रित पदार्थ की धवलता का वर्णन	१०६
	२	आकाशगंगा	,, ,, ,,	२५१
भस्म	१	बुढ़ापा	अपवाद	३१
	२	तिलक	अपवाद	१७६
जलफेन	१	गगा	अपवाद	६७
कुमुद	१	चन्द्र रूपी सर	अपवाद	१०७
	२	लोचन	अपनी आकृति वाले पदार्थ की धवलता का वर्णन	१६३
	३	लोचन मध्य भाग	,, ,, ,,	१११
	४	देह	अपवाद	३६८
चन्दन	१	राजा	अपवाद	१३२
सुधा	१.	कैलाश	अपवाद	१०९
	२.	अट्टहास	अपवाद	११५
	३.	स्मित रूपी ज्योत्स्ना	शोभावर्द्धक पदार्थ की धवलता का वर्णन	३९८

उपमान	उपमेय	कारण	पृष्ठ
मृणाल	१. धूल	उत्थित पदार्थ की धवलता का वर्णन	२४८
	२. मुक्तालता	स्वजाति वाले लतादि लम्बे पदार्थ की०	३१६
	३ हाथ	कोमल पदार्थ की धवलता का वर्णन	३४६
	४. अंगुलि	,, ,, ,,	३५८
क्षीरोदधि	१ शीकरासार	द्रव पदार्थ की धवलता का वर्णन	२५२
	२ दृष्टिपात	प्लावन गुण वाले पदार्थ की धवलता का०	४३४
हिम	१ झरना	शीतल पदार्थ की धवलता का वर्णन	२८९
हार	१ झरना	अपनी आकृति वाले शोभावर्द्धक पदार्थ की०	२८९
हरहास	१. झरना	मगलमय पदार्थ की धवलता का वर्णन	२८९
	२. मन्दाकिनी प्रवाह	,, ,, ,,	३१०
कुसुम	१. तिलक	अपवाद	३०२
	२. लतापल्लव	अपनी जाति वाले पदार्थ की धवलता का०	४३४
दशनप्रभा	१ ज्योत्स्ना	अपवाद	३४०
तारागण	१ हार	शोभावर्द्धक गोल पदार्थ की धवलता का०	३५७
स्वच्छ जल	१ देहप्रभा	प्लावन गुण वाले पदार्थ की धवलता का०	३५८
	२. नखमयूख	फीकी कान्ति वाले पदार्थ की धवलता का०	४३४
जलहीन मेघ	१ शयनतल	ऊँचे पदार्थ की धवलता का वर्णन	३६
शुक्तिसुपुट	१ कपोल	आकृतिसाम्य वाले पदार्थ की धवलता का०	३९०
ज्योत्स्ना	१ कैलाशप्रभा	सर्वश्रेष्ठ पदार्थ की धवलता का वर्णन	२७६
	२. चन्दन	,, ,, ,,	२३८
शेषफणामण्डल	१ चन्द्रबिम्ब	गोल पदार्थ की धवलता का वर्णन	३४०

नील रंग

यद्यपि नील रग के उपमान भी बाण ने अधिक सख्या मे प्रयुक्त किये है, तथापि हम उनमे से कुछ उपमान तथा उनके प्रयोगस्थल आदि बतलायेंगे।

उपमान

(१) कुवलय प्रभा (२) तमाल (३) मृगरोमपल्लव (४) नील कञ्चुक (५) मधुकर कुल (६) कालिन्दी जल (७) अन्धकार।

कुवलयप्रभा

पम्पासर का वर्णन करते समय चक्रवाकों के पक्षपुटो को 'विकचकुवलयप्रभाश्यामायमानानि' (खिले कुवलय की प्रभा के समान श्याम रग वाला) बताया गया है।

शबरसेनापतिवर्णन में उसकी देहप्रभा को असित कुवलय के समान श्याम रंग वाला कहा है। यहाँ प्रथम उदाहरण में पम्पासर में रहने वाले चक्रवाकों का वर्णन किया गया है, अत उनकी उपमा भी तालाब में रहने वाले किसी श्याम रग के उपमान से दी जानी चाहिए। वैसा उपमान कुवलय है, इसलिए यह उपमान दिया गया।

दूसरे उदाहरण मे शबरसेनापति की—श्याम रग की होते हुए भी शोभा वाली—प्रभा को वर्णन करने के लिए श्याम रग तथा शोभा वाले उपमान कुवलय दिया गया।

तमाल

कादम्बरी मे दिग्विजय प्रस्थान के बाद जलान्वेषण के समय मदजल को, शबरसेनापति वर्णन में मधुकरकुल को तमालपल्लव के समान धवल बताया गया है।

कथामुख के तथा आगे के सन्ध्यावर्णन मे अन्धकार को तमाल की तरह कहा है। विन्ध्याटवीवर्णन में नारायणमूर्ति को तमाल की तरह नील रग की कहा है।

प्रथम उदाहरण मे तमाल मे श्यामता के साथ-साथ सरसता (तमालपल्लवसरसश्यामेन) तथा दूसरे में आतपनिवारकता होने के कारण यह उपमान प्रयुक्त किया गया है।

यद्यपि नील रग के ५वे उपमान मधुकर में आतपनिवारकता है, किन्तु उसी उपमेय के लिए वही उपमान देना ठीक न होता। तीसरे, चौथे तथा पाचवें में अपवाद होने के कारण यह उपमान प्रयुक्त किया गया है।

मृगरोमपल्लव तथा नीलकञ्चुक

दिग्विजयप्रस्थान मे रेणु को बूढे रल्लक (हरिणविशेष) के रोओ के समान (मलिन) श्याम रग का बतलाया है। कादम्बरीवर्णन में मधुकरो को नीलकञ्चुको के समान नील बताया है। प्रथम उदाहरण मे रोओ तथा रेणुओ में कुछ विशेष आकृति समानता होने के कारण वही उपमान प्रयुक्त हुआ।

मधुकरकुल कादम्बरी के शरीर पर बार-बार गिर रहे थे, अत श्याम रग वाले तथा शरीरवासी पदार्थ के लिए वैसा ही उपमान नीलकञ्चुक बाण ने प्रयुक्त किया।

मधुकरकुल, कालिन्दीजल तथा तम

कादम्बरी के बालो को मधुरकरकुल के समान काले बताया है। अपवाद के कारण यह उपमान प्रयुक्त हुआ है।

शबरसेनापतिवर्णन में उसके देहप्रभाप्रवाह को कालिन्दीजल के समान कहा है।

प्रवाहवाले उपमेय के लिए प्रवाहवाला उपमान कालिन्दीजल बाण ने यहाँ उपयुक्त समझा। कथामुख के सन्ध्यावर्णन में तमालवृक्षो को अन्धकार के समान बताया है। इस उपमान को अपवाद के कारण प्रयुक्त किया गया है।

नील

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
कुवलय	१. पक्ष्मपुट	सरोवर में रहने वाली नीलता का वर्णन	५०
	२. शबरसेनापति देहप्रभा	शोभावाले श्याम पदार्थ की नीलता का वर्णन	६४
तमाल	१. मदजल	सरस पदार्थ की नीलता का वर्णन	२६०
	२. मधुकरकुल	आतपनिवारक पदार्थ की०	६५
	३. सन्ध्या	अपवाद	१०६
	४. सन्ध्या	अपवाद	४२२
	५ विन्ध्याटवी	अपवाद	४३
मृगरोमपल्लव	१ रेणु	वनवासी तथा आकृतिसाम्य मिलाते हुए किसी की नीलता का वर्णन	२४८
नीलकञ्चुक	१ मधुकरकुल	शरीरवासी पदार्थ की०	३६२
मधुकरकुल	१ केश	अपवाद	३६३
कालिन्दीजल	१. देहप्रभा०	प्रवाह वाले पदार्थ की नीलता०	६४
अन्धकार	१ तमालवृक्ष	अपवाद	१०६

पीत, रक्त तथा हरित रंग

जाबालिवर्णन में जाबालि की मूर्ति को उत्तप्तकनकावदाता कहा है (अर्थात् तपाये हुए सोने के समान अवदात कहा है) ।

उत्पन्न हुए चन्द्रापीड के करतल को रक्तोत्पलकलिका के समान लोहित बताया है ।

कादम्बरीवृत्त-श्रवण में अनुराग को अलक्तकरस मेंहदी के रस के समान कहा है ।

ताम्बूलकरकवाहिनी परिचय मे अंशुक को शक्रगोपका के समान लोहित बताया गया है ।

विलासवती दुःस्वप्रदर्शन में अलक्तकरस को, शूद्रकस्नान वर्णन में कुकुमजल को बालातप के समान बताया गया है । शूद्रकवार्तालाप मे आमलकी फलो को नलिनीदल के समान तथा चन्द्रापीड के गृहप्रवेश मे उत्तरीयांशुकप्रान्त को शुकपक्षति के समान हरित कहा है ।

तप द्वारा उद्भासित जाबालिमूर्ति के लिए सन्ताप द्वारा शोभित कनक उपमान ही उचित था । नवजात शिशु चन्द्रापीड के कोमल करो के लिए कोमल रक्तोत्पलकलिका, लता के समान फैले कोमल तथा बहुमूल्य अधरों के लिए विद्रुमलता, दूसरे को रञ्जित करने वाले अनुराग के लिए दूसरे को रञ्जित करने वाला अलक्तकरस, पूर्व गुणो से रहित के लिए वैसा ही उपमान शक्रगोपक दिया गया ।

अन्तिम दोनो उदाहरणो में अपवाद आ जाने के हेतु वह उपमान दिया गया है ।

अरुण रंग

विन्ध्याटवीवर्णन में कल्पांतप्रदोषसन्ध्या को पल्लव के समान अरुण बताया गया है। चाण्डालकन्या के वर्णन में उसके पादपकजो की कोमलता प्रदर्शित करने के लिए पल्लव दिया गया। रक्तध्वजदर्शन में रक्तचन्दनरस को अभिनव शोणित के समान अरुण बताया है।

पाण्डु रंग

इस रग के निम्नाकित उपमान है—

(१) परिणतरङ्कुरोम

(२) उत्पन्नऊर्णातन्तु

(३) शुष्कचन्दनानुलेप

कथामुख के प्रभातवर्णन मे दिक्समूह को परिणतरङ्कुरोम के समान (बूढे राङ्कु-मृग के रोओ के समान) पाण्डु, दिग्विजयप्रस्थान मे रेणु को ऊन के समान पाण्डुर, महाश्वेता के अभिसार मे शरीर को शुष्कचन्दनानुलेप के समान पाण्डु कहा है।

वन में होने वाले प्रभातवर्णन के लिए वनवासी मृगरोम दिया गया। ऊर्णा तथा रेणु मे आकृतिसाम्य होने के कारण वह दिया गया। कामिजन के शरीर के लिए कामिजनोपयुक्त शुष्कचन्दनानुलेप दिया गया।

अवशिष्ट रंग

पीत रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
१. उत्तप्तकनक	१. जाबालिमूर्ति	तप (सन्ताप) द्वारा हुए तेजस्वी की पीतता का०	९५

रक्त रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
१ रक्तोत्पलकलिका	१ चन्द्रापीडकर	कोमल पदार्थ की०	१६३
विद्रुमलता	१ कादम्बरीअधर	कोमल बहुमूल्य पदार्थ की०	३९०
निजानुराग	१ अलक्तकरस	अपवाद	४७४
शक्रगोपक	१ अंशुक	पूर्वकथित गुणो से रहित पदार्थ की०	२१८
बालातप	१ अलक्तकरस	अपवाद	१३६
	२ कुंकुमरस	अपवाद	३३

हरित रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
नलिनीदल	१ आमलकीफल	पक्षिसेव्य पदार्थ की०	३८
शुकपक्षति	१ उत्तरीयांशुक	उक्त गुण से रहित पदार्थ की०	१८८

अरुण रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
पल्लव	१ सन्ध्या	अपवाद	४
अभिनव शोणित	१ पादपंकज	कोमल पदार्थ की०	२२

पाण्डु

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
परिणत रंकु रोम	१. दिक्समूह	वनवासी पदार्थ की०	५५
ऊर्णातन्तु	१ रेणु	आकृतिसाम्य पदार्थ की०	२४८
शुष्कचन्दनानुलेप	१ शरीर	कामिजनोपयुक्त पदार्थ की०	३४६

पाटल रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
प्रहृतहरिणरुधिरानुरक्तशार्दूलनखकोटि	चञ्चुपुट (शुकनिवास-वर्णन)	पूज्य पदार्थ की०	५३
रुधिर	दृष्टि (शबरचरित्र)	क्रोधपूर्ण वस्तु की०	७१
पारावतपाद	रवि (रात्रिवर्णन)	आकाशवासी पदार्थ की०	१०४
विद्रुमलता	सन्ध्या (रात्रिवर्णन)	गतिमती पदार्थ की०	१०४
विकसिताशोक	इन्द्रायुध (वर्णन)	अपवाद	१७६
जयकुञ्जर	पाणि (कादम्बरी-चन्द्रापीड मिलन)	दिग्विजयी के पदार्थ की०	४०१
हरिणकुलकालरात्रिसन्ध्या	दृष्टि (शबरसेनापति)	हरिणो के कालभूत पदार्थ की०	६५

धूसर रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
रासभरोम	धूमलेखा (प्रभात)	ऊपर उठने वाले पदार्थ की०	५६
क्रकचचन्दनक्षोद	रेणु (दिग्विजय प्रस्थान)	मंगलमय पदार्थ की०	२४९
पारावतमाला	धूमलेखा (प्रभातवर्णन)	आकाश में छाये हुए पदार्थ की०	१४६

नीलपाटल रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
कोकिललोचन	जम्बूफलरस (शुककथारम्भ)		३७

कृष्णपाण्डुर

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
अम्बिकावामस्तन	तारकाराज (कादम्बरी-जन्म कथा)	शान्ति तथा सुख देने वाले पदार्थ की०	३७२

कपिल रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
जरत्कपिकेश	रेणु (दिग्विजय प्रस्थान)	वनवासी पदार्थ की०	२४८

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
कुंकुम	केशरसटा (कादम्बरी-विषयक प्रश्न)	मंगलमय पदार्थ की०	४३३
हरितरोम	शाखा (रक्तध्वजदर्शन)	वृक्षत्व जाति वाले पदार्थ की०	५४५
तपोवनधेनु	सन्ध्या (रात्रिवर्णन)	अपवाद	१०५

धूम्र रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
पारावतपक्ष	नभ (राजा का स्वप्न दर्शन)	ऊपर रहने वाले पदार्थ की०	१४६

पिंग रंग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
दीपिकालोक	देहप्रभा (पुण्डरीकवर्णन)	तेजसीय पदार्थ की०	३००
कोकिललोचन	किरण (सायका०) (महाश्वेता चन्द्रापीड की सन्ध्या-विधि)	वनवासी पदार्थ की०	३६९
कुमुदकेशर	चरणयुग्म (शुकसारिका मुख से कौतुकारम्भ)	कोमल पदार्थ की०	४०३

शबल रग

उपमान	उपमेय	विशेषता	पृष्ठ
हरिणलोचनद्युति	शिखिबर्हकलाप (जाबालिवर्णन)	वनवासी पदार्थ की०	९९
महावराहकेशरजटा	रज (धूलि) (दिग्विजय प्रस्थान)	शक्तिमान पदार्थ की०	२५०

हमने ये जितने उपमान, उपमेय तथा उनकी विभिन्नताओं की विशेषता आदि का जो निबन्ध पाठको के सामने रक्खा है, वह इतना ही है और यही विशेषता रग हैं—ऐसी बात नही। उसी रंग के कई उपमान तथा उनके कई उपमेय भी आपको मिल सकते है। हमने तो एक नयी वस्तु आपके सामने रक्खी है, विज्ञ पुरुष इस विषय पर अधिक गवेषणा कर सकते है।

आचार्य सूर्यनारायण व्यास

संस्कृति-संगम

साहित्य, सभ्यता और सस्कृति ये किसी भी राष्ट्र की उच्चता के मापदण्ड है। ये चिर-कालिक हैं, इनका नाश नही होता, जिस देश की जितनी ही सबल और सहिष्णु-सस्कृति होगी वह विभिन्न सस्कृतियो को अपने मे आत्मसात कर अपना मूलरूप अक्षुण्ण बनाए रखेगी, सस्कृति और साहित्य में युगानुरूप परिवर्तन न होना सभव है, अनेक उत्थान-पतनो की परम्पराएँ उन पर अपना कुछ न कुछ सस्कार अवश्य डाल जाती है, परन्तु उनका सहार सभव नही होता, आज हम जिसे भारतीय सस्कृति समझते है, या मानते है, उसकी एक परिभाषा करना कठिन है, और यह कहना भी सरल नही कि यह किस काल की देन है। हमारे विशाल देश के विभिन्न भागो में विभिन्न सस्कृति सम्बन्धी धारणाएँ है। महाराष्ट्र सस्कृति, उत्तर भारतीय सस्कृति, आदि। किंतु इन सस्कृतियो के रूपो में आकारो मे भिन्नता होते हुए भी हमारा सारा देश एक ही सस्कृति के सुन्दर-सूत्र मे आबद्ध है। परन्तु प्रत्यक्ष है कि यह हमारी सस्कृति कितने सदी पूर्व की है? क्या इसमे कोई परिवर्तन कभी नही हुए ? हमने मगोलो को, शको को, हूणो को, पठानो को और न जाने किन-किन लोगो को उसमे मिला लिया है, और वे इतने मिल गये है कि आज उनका पूर्वरूप पहचाना भी नही जाता, किंतु उनकी सस्कृति भारतीय ही है, अवश्य ही उनके जीवन व्यवहार या किसी सस्कार में परपरागत पूर्व रूप की कोई धुधली सी झलक दिखलाई दे जाती हो, पर वे आज उसके सही स्वरूप को भूलकर भारतीय बने हुए हैं। हम पर गजनी के आक्रमण हुए है। अल्तमश के प्रहार हुए हैं। औरगजेबी भी सही है। फिर भी आज हम अपनी सस्कृति का सहारा लिए हुए है, जो सस्कृति पर प्रहारो मे मिट नही सकी। दूसरो को अपने में आत्मसात कर विकृत न बनी उसे आज कौन-सी ऐसी विपत्ति का सामना पडा है कि वह विनष्ट हो सकेगी। यदि ऐसे ही आदोलनो मे कोई सभ्यता या सस्कृति उध्वस्त हो सकती है तो वह निर्बल है। वह चिरजीवी नही रह सकती, किंतु जिस सस्कृति की महत्ता का हम गर्व रखते है, जिसने हमें ही नही, विश्व-मानवता को अपने समक्ष अवनत मस्तक किया है, क्या वह ऐसे हवा के झोको से धूलि-धूसरित बन जाएगी ? जिन व्यास-वाल्मीकि, कालिदास के साहित्य को काल के अनेक कुटिल प्रहार विनष्ट नही कर सके। हजारो वर्षों के उत्थान-पतन परिवर्तनों का प्रभाव उन्हे मिटा न सका। क्या वह साहित्य मर सकता है ? या जिस देश का ऐसा सप्राण-साहित्य हो वह सस्कार हीन बनाया जा सकता है ? जीवित साहित्य ही प्रगतिशील होता है, और प्रगतिशील साहित्य का सहार नही होता,

वह सर्वकालीन बना रहता है। यही हाल संस्कृति का है। परन्तु कुछ समय से हमारी संस्कृति परिवर्तन काल से गुजर रही है। इस कारण हमारी आशंकाएँ, और चिन्ताएं परम्परा प्रियतावश हमें चीख पुकार करने को प्रेरित करती हैं, प्रगति विरोधी जन इससे उद्विग्न है। पुरातनता प्रेमी परेशान हैं, कुछ संघो ने इस संस्कृति का सहारा लेकर समाज के अर्धसंस्कृत या असंस्कृत जनों को भड़काना शुरू कर रखा है। किंतु क्या आज गजनीगोरी, या शक-हूण के हमले से भी भयानक काल उपस्थित हो गया है, कि हम केवल पश्चिमी-प्रभाव मात्र से विचलित हो जाएँ? अवश्य ही हमारी प्रगति पश्चिम के प्रभाव से प्रभावित हो रही है, पर क्या हमारी सस्कृति इतनी निर्बल है कि वह उस चकाचौंध में अपने उन्नत अस्तित्व को गमा देगी! क्षण भर की चकाचौंध से हमें चमकने की आवश्यकता नही है, हमारा चंचल स्वभाव थोडी देर उस चमत्कार में भले ही आ जाए, पर हमारे सस्कार चमक के मद होते ही उस पर अपना प्रभाव डाले बिना नही रहेंगे। शक और हूणो जैसी विदेशी-शक्तियो को भी निरतर सपर्क में रहकर अपने आपको भुलाकर हमसे मिल जुल जाने को विवश होना पडा था, अकबर और जहागीर को भी इस सभ्यता के सामने सम्मान देने को समझ लेना पडा तो स्पष्ट है—कि पश्चिम का प्रभाव हमें अधिक काल भुलावे में नही रख सकेगा।

संस्कृति संगम महाविद्यालय तथा अंतर-एशियाई महाविद्यालय

कुछ समय हुआ, सस्कृति-रक्षा के लिए चिन्तित हो दिल्ली मे सस्कृति-सम्मेलन का एक आयोजन हो गया था, और इसी की ढाल बनाकर सास्कृतिक-स्वतन्त्रता सम्मेलन नाम से बम्बई में भी कुछ देशी-विदेशी जनो का स्वल्प समारम्भ हो गया था। दिल्ली के आयोजन मे विभिन्न भाषी सस्कार-स्वामियो का सुभग-मिलन हो गया और सस्कृति सगम नामक सस्था की नीव पड गयी, विभिन्न भाषी विद्वानो के निकट लाने का यह एक लघुतम, किन्तु शुभ प्रयत्न ही हुआ है। १९३५ मे हमने इसी प्रकार की एक कल्पना की थी और उस सम्बन्ध मे भारत सरकार के वर्तमान खाद्य मन्त्री श्री मुशीजी से चर्चा भी की थी। यह पत्र व्यवहार हमने (विक्रम में) प्रकाशित भी किया है। हमारा विचार था कि विभिन्न भाषी विद्वान् अपना एक दल बना कर दूसरे प्रान्त के विद्वानो से मिले, सम्पर्क साध्य करे, साहित्यिक विनिमय आरम्भ करें, इस तरह एक दूसरे के निकट आएँ, इसके लिए अनुवाद, प्रवास और प्रत्यक्ष परिचय के प्रयत्न हो। दिल्ली सम्मेलन ने इस दिशा में कुछ सफलता भी प्राप्त की है। उसे सरकारी सहयोग भी प्राप्त रहा है। यदि वह सूझ से काम करे तो अवश्य समस्त भारतीय साहित्य-सस्कार निर्माताओ को एक स्नेह-सूत्र में ग्रथित किया जा सकता है, और हमारा साहित्य-वैभव एकतानता प्राप्त कर सबल और समृद्ध बन सकता है। सरकारी साधनो का सहयोग प्राप्त होने पर तो कोई कारण नही कि हम साहित्य-श्री की सुषमा से सर्वाङ्ग-सम्पन्न न बनें।

एक सुझाव

हमारा तो यह भी सुझाव है कि सरकार देश के मध्य भाग में एक बड़े रूप में "संस्कृति-

सङ्क्रम-महाविद्यालय" की प्रतिष्ठा करे, उसमें देश की विभिन्न भाषा और संस्कृतियों का एक जगह अध्ययन करवाने की व्यवस्था की जावे। जैसे—गुजराती, मराठी, बङ्गला, तेलगू, कन्नड़, तामिल, उत्कल, बङ्गाली, राजस्थानी, मैथिली, उर्दू, काश्मीरी, आसामी, सिंहली, हिन्दी और संस्कृत आदि इन सब भाषा के ऐसे एक-एक अध्यापक की उसमें योजना की जाये, जो हिन्दी-संस्कृत या अंग्रेजी के माध्यम से अपनी-अपनी भाषा के साहित्य, भाषा विज्ञान, सस्कृति, दर्शन और इतिहास एव ग्राम्य साहित्य का अध्ययन उच्च स्तर पर करवा सकें। इसमें न तो बी० ए०, एम० ए० आदि डिग्री की पढाई हो, न यह क्रम ही रहे। केवल साहित्य-सस्कृति, भाषा-दर्शन और इति-वृत्ति की जानकारी देने की दृष्टि से योजना की जाए, यह अपने प्रकार का सर्वथा नवीन और एकसूत्रता लाने का सर्वोत्तम प्रमाण होगा, किसी भी मैट्रिक पास, विशारद, या सस्कृ. के प्रथमोत्तीर्णों को उसमें प्रवेश की सुविधा हो, इस तरह देश के किसी भी भाग का व्यक्ति अपने देश के विभिन्न भागो की भाषा-साहित्य सस्कृति से परिचित हो जायगा, और वह समस्त भारतीय एकता के प्रयत्न में सहायक बन सकेगा। आज हमारा एक दूसरे प्रान्त, या भाषा-संस्कृति आदि के विषय में अज्ञान हो वह नष्ट होता जायगा। इस दिशा में यह अन्त:प्रान्तीय-सस्कृत-सङ्क्रम-महाविद्यालय बहुत बडा सहायक सिद्ध होगा। इसी प्रकार एक अन्तरराष्ट्रीय महाविद्यालय की भी योजना की जानी आवश्यक है, जिसमें समस्त एशियाई महाद्वीपो, द्वीपखण्डो की, तथा सलग्न राष्ट्रो की भाषा का एक जगह अध्ययन हो सके। जिनमे १ अर्बी-परशियन, २ बर्मी, ३ चीनी, ४. जापानी, ५ स्यामी, ६ इण्डोनेशियन्, ७ सिंहली, रशियन भाषाओ के साहित्य, इतिहास, सस्कृति और दर्शन और जन-साहित्य का ज्ञान प्राप्त हो सके। जहाँ तक सम्भव हो हमारे देशी विद्वान् जो इनमें से जिस किसी देश की भाषा सस्कृति के जानकार हों उनकी योजना की जाए, और न मिलने पर उस देश के भारतीय भाषा या अंग्रेजी के माध्यम से पढाने वाले की नियुक्ति की जाए। बडे राष्ट्रो की दृष्टि से उसमें जर्मन, इटालियन और फ्रेञ्च को भी स्थान दिया जाय तो यह एक संस्था-अन्तर-एशियाई और अन्तरराष्ट्रीय ज्ञानदान का माध्यम बन सकेगी। यह प्रयत्न हमारे राष्ट्र की उन्नति, प्रगति और व्यापक ज्ञान एव दृष्टिकोण के लिए वास्तव में बहुत महान् सिद्ध होंगे। एक दूसरे के मतभेदों और भ्रमो को दूर करने मे तथा परस्पर समझने में सहायक होंगे। इस प्रकार सस्कृति, समन्वय और आदान-प्रदान भी हमारे लिए बहुत हितकर होगा।

प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल

आधुनिक कला की मनोवृत्ति

लोगो का ख्याल है कि "कला में आनन्द पाना सार्वजनिक नही है और इसमें आनन्द उसी को मिल सकता है जो स्वय कलाकार है या जिसने थोडा-बहुत कला का अध्ययन किया है। कला में प्रवीणता या उसमें रस पाना एक ईश्वरीय वरदान है।" यह कथन और भी सत्य प्रतीत होता है जब हम देखते है कि आधुनिक समाज में कला को कोई स्थान नही। कलाकार जीवन भर रचना का कार्य करता है पर अक्सर वह समाज में अपना स्थान नही बना पाता, न समाज उसके परिश्रम का मूल्य ही देता है। कला की साधना कलाकार के लिए जीवन से लडना है। कितने ही कलाकार अपने लहू से रचना करके मिट गये पर समाज उन्हें जानता तक नही, उनकी कला का रस लेना तो दूर रहा। ऐसा समाज यह भी कहता है कि कला एक साधना है जिसके लिए मर मिटना कलाकार का कर्तव्य है। बिना बलिदान के कला प्राप्त नही हो सकती। इतना ही नही लोगो का विश्वास है कि कलाकार उच्च रचना तभी कर सकता है जब दुनिया भर का दुःख वह भोग ले और तडपन की ज्वाला में भुजता हुआ जब उसके मुह से आह निकलने लगे तभी वह सफल रचना कर सकता है। शायद ऐसा समाज इस आह मे सबसे अधिक रस पाता है। रोम का शासक विख्यात नीरो सबसे महान् व्यक्ति था और उसे कला की सबसे ऊँची परख थी, इसीलिए वह मनुष्यों को खूंखार भूखे शेरो के कटघरो में डालकर उन व्यक्तियो के मुह से निकले हुए आह! का रसास्वादन सुनहले तख्त पर बैठ कर शराब की चुस्कियाँ लेता हुआ करता था, और तारीफ यह कि वह उसका आनन्द लेने के लिए अपने समाज के अन्य व्यक्तियो को भी निमन्त्रित करता था और हजारों की तादाद में लोग इकट्ठा होकर इस आह! का रसास्वादन करते थे।

जरा कल्पना कीजिए कि यदि आप कलाकार होते और नीरो के राज्य में जीवन निर्वाह करते होते और एक दिन शेर के कटघरे में आपको डाल दिया जाता और जब शेर ने आपकी छाती में अपना नुकीला पञ्जा चुभाया होता और नीरो आपको कविता पाठ करने की आज्ञा देता तो आपकी क्या दशा होती। नीरो तो एक व्यक्ति था, कभी-कभी सारा समाज नीरो बन जाता है, ऐसे समय कला की क्या रचना होगी इसकी कल्पना आप कर सकते हैं।

यह सत्य है कि भावो के उद्वेग में ही कला की उत्पत्ति होती है, परन्तु भाव से कलाकार पैदा नही होते, कलाकार भाव पैदा करते हैं। एक भूखे से पूछिये कला कहाँ है तो कहेगा रोटी में, एक अन्धे से पूछिये, तो कहेगा अन्धेरे में, राजा कहेगा महलों में और रक कहेगा झोपडी में, राजनीतिज्ञ कहेगा राजनीति में, धार्मिक कहेगा धर्म में। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की जैसी दशा होगी उसी

रूप में वह अपने वातावरण को समझेगा, जिस प्रकार लाल चश्मा लगा लेने पर सारी दुनिया लाल दीखती है। यह चश्मा कला का गला घोटता है, सत्य पर परदा डाल देता है। सच्चा कलाकार वही है जो इस चश्मे को उतार फेकता है और पैनी आँखों से सत्य की ओर देखता है। कलाकार भाव का गुलाम नही होता, भाव कलाकार का गुलाम होता है। इसी प्रकार वह रचना जो चश्मे के आधार पर हुई है वह कभी सफल तथा सत्य या सुन्दर नही कही जा सकती है। सच्ची कला की रचना तब होती है जब कलाकार कमल की भाँति कीचड़ में रहकर भी कीचड से ऊपर होता है और ऊपर रहकर भी अपनी जड उसी कीचड में रखता है और उससे भी अपनी खुराक लेता है। अर्थात् सच्चा कलाकार वह है जो नीचे रहकर भी ऊपर को जान लेता है और ऊपर होकर भी नीचे को पहिचानता है, वह समदर्शी होता है। वह भावो का गुलाम नहीं होता, भावो को वह पैदा करता है।

किसी विख्यात कथाकार से जब पूछा गया कि प्रेम-सम्बन्धी कथा साहित्य का निर्माण सबसे अच्छा किस समय होता है तो उसने कहा, जब कथाकार ने प्रेम करना छोड दिया हो। जिस समय कथाकार स्वय प्रेम में बँधा रहता है, उस समय यदि वह प्रेम पर कुछ लिखे तो वह प्रेम की सच्ची अनुभूति का वर्णन नही कर सकता क्योकि उस समय वह प्रेम में अन्धा भी हो सकता है। जब कथाकार प्रेम कर चुकता है, उससे काफी अनुभव प्राप्त कर चुकता है, और स्वय हृदय तथा मस्तिष्क से किये हुए अनुभव पर पुन मनन करता है, तब उसे सच्ची अनुभूति प्राप्त होती है और उसकी रचना स्वस्थ तथा सुन्दर होती है, क्योकि अब प्रेम का गुलाम कथाकार नही है बल्कि कथाकार का गुलाम प्रेम है। कथाकार प्रेम में अन्धा होकर नही लिख रहा है बल्कि प्रेम से ऊपर होकर प्रेम पर शुद्ध रूप से विचार कर रहा है। इसी प्रकार क्षणिक भावावेश मे आकर बिना भलीभाँति मनन किये उत्कृष्ट रचना नही हो सकती और अगर ऐसे समय रचना होती है तो वह सुदृढ नही हो सकती। इस प्रकार यह समझना कि सच्ची कला की रचना उसी समय हो सकती है जब कलाकार भूखा हो, दरिद्र हो और दुनिया की मुसीबतो से जर्जरित हो गया हो, नितान्त मूर्खता है। ऐसी भावना उन्ही लोगो की होती है जो कलाकार से उसी प्रकार की आह! सुनने को उत्सुक होते है जिसे नीरो मनुष्य को शेर के कटघरे मे डाल कर सुनता था।

सच्ची और उत्कृष्ट कला की रचना उसी समय हो सकती है जब कलाकार के मन, मस्तिष्क में और शरीर में सुडौलता रहती है। यदि एक कलाकार जिसको हजार कोशिश करने पर भी दोनो समय का खाना नही जुटता, कविता की रचना करना चाहे तो उसके मन में सुडौलता कभी नही रह सकती, या तो वह भूख तड़पन से पीडित रचना करेगा और समाज के अन्य व्यक्तियो के प्रति आग उगलेगा या जिस प्रकार भूखा कुत्ता किसी को कुछ खाते देखकर जीभ हिलाता है और लार टपकाता रहता है, दया का पात्र बनेगा, दूसरो को कुछ देना तो दूर रहा।

सच्ची कला की रचना उसी समय हो सकती है जब कलाकार सुखी और सम्पन्न हो, हृष्ट-पुष्ट हो, सुडौल विचार वाला हो, समाज से घृणा न करता हो, किसी के प्रति द्वेष न हो, जीवन का मूल्य समझता हो। इसका यह तात्पर्य नही कि आज तक जितने उत्कृष्ट कलाकार हुए

हैं उनको यह सब प्राप्त था, मेरा तो यह कहना है कि अगर उनको यह सब भी प्राप्त होता तो और भी ऊँची कला का निर्माण हुआ होता और आज उनकी देन से हमारा समाज और ऊँचे तथा सुडौल परिस्थिति में होता। कलाकार एक घड़े के समान है। जैसा जिसका घडा होता है, ससार से वह उतना ही उसमें भर पाता है। अगर घडा टेढ़ा मेढा है, फूटा हुआ है, तो उसमें क्या रह सकेगा, यह साफ है। सुडौल, मजबूत तथा बडा घडा ही अपने अन्दर कोई बडी वस्तु रखने की कल्पना कर सकता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट रचना के लिए यह आवश्यक है कि कलाकार हर प्रकार से सुडौल हो, विशाल व्यक्तित्व वाला हो। उसे किसी प्रकार की लालसा न हो अर्थात् बनारसी भाषा में मस्त रहनेवाला हो। इसी मस्ती में हीकुछ रचना की उम्मीद की जा सकती है। कलाकार चिन्ता से रहित हो। एक योगी के समान हो जिसे कुछ पाने की लालसा न हो अपितु समाज को कुछ देने की क्षमता हो। वह अपने लिए चिन्तित न हो बल्कि समाज की शुभ-कामना करता हो। समाज का व्यक्ति होते हुए भी समाज के दायरे से ऊपर उठकर समाज का निरीक्षण कर सकने की क्षमता रखता हो। अपने को अकेला न समझे बल्कि घट-घट में व्याप्त होने की क्षमता रखता हो। अपनी भावनाओं में बहनेवाला न हो बल्कि दूसरो के भावो में प्रवेश करने की क्षमता हो। अपना दर्द लिये समाज को दर्दीला न बनावे बल्कि समाज के दर्द में रोनेवाला हो। अपनी खुशी में मस्त न हो बल्कि समाज की खुशी में हिस्सा लेने वाला हो। समाज के साधारण व्यक्ति के समान मुसीबतों में रोनेवाला न हो बल्कि समाज का पथ-प्रदर्शन करने की क्षमता रखता हो।

ससार में जीव जो कुछ करता है, सुख पाने की लालसा से करता है। सुख की वृद्धि के लिए ही समाज भी बनता है। जब व्यक्ति अकेले सुख प्राप्त करने में बाधाएँ देखता है तब उसे समाज की शरण लेनी पडती है। समाज से उसे बल मिलता है। समाज की शक्ति उसे अधिक सुख की प्राप्ति करने में सहायक होती है। मनुष्य बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक समाज पर आश्रित रहता है। वह जो कुछ सीखता है, अनुभव करता है या प्राप्त करता है उसका आधार समाज ही होता है। व्यक्ति समाज का एक अंग है जो समाज के द्वारा पोषित होता है। व्यक्ति का जो स्वरूप बनता है वह उसका अपना रूप नही है और अगर है तो बहुत थोडा-सा, अधिकतर समाज का ही दिया हुआ हिस्सा होता है। समाज यदि जननी है तो व्यक्ति उसका बालक। जिस प्रकार बालक माता पिता के गुणो को सञ्चित कर आगे बढता है उसी प्रकार व्यक्ति समाज के गुणों को सञ्चित करता है। मेढक का बच्चा मेढकों-सा ही व्यवहार सीखता है और मेढको के ही समाज में रहना चाहता है। वह उनसे कभी अलग हो ही नही सकता। इसी प्रकार व्यक्ति सब कुछ समाज से ही सीखता है और उसी का व्यवहार करता है, अपने जीवन में। उसके किसी व्यवहार को हम असामाजिक व्यवहार नही कह सकते, क्योकि वह समाज का ही बनाया हुआ है, और उसके उचित या अनुचित कार्यों का उत्तरदायित्व भी उसी समाज पर है, जिसका वह एक अग है।

जब व्यक्ति समाज का ही बनाया हुआ है, समाज पर ही आश्रित रहता है तब यह कहा

जा सकता है कि उसे अपनी सारी शक्ति का उपयोग समाज के हित तथा प्रगति के लिए ही करना चाहिए। यही उचित है, और न्याय-सङ्गत है। जब हम किसी से लेते हैं, तो उतना ही उसे देना भी चाहिए। अगर यह ठीक है तो व्यक्ति समाज को उतना ही दे सकता है जितना पाया है। कलुषित समाज में पैदा हुआ तथा पलापोसा व्यक्ति समाज को कालिमा ही देगा, यह स्वाभाविक ही है। मेढक मेढको से पैदा होकर तथा तालाब के वातावरण में रहकर वही कार्य कर सकेगा जो अन्य मेढक करते है और जो तालाब के वातावरण में हो सकता है, मेढक न घड़ियाल बन सकता है, न तालाब का स्वच्छ कमल। उसका आचरण सदैव मेढको का ही होगा। परन्तु मेढक और मनुष्य में अन्तर माना गया है। अन्तर है मस्तिष्क का। मस्तिष्क की शक्ति अपार है, कल्पना से भी अधिक। मनुष्य का मस्तिष्क भी मनुष्य का ही मस्तिष्क है, उसी दायरे में है, उससे परे नही है। मनुष्य वही कर सकता है जो मनुष्य की क्षमता के अन्दर है, जिस प्रकार मेढक तालाब में रहकर वही कर सकता है जो मेढको की क्षमता के भीतर है। अब प्रश्न यह है कि मनुष्य की क्षमता क्या है और कितनी है? कभी-कभी तो मनुष्य की क्षमता को भी अपार माना गया है। यह क्षमता कहाँ से आती है, समझ मे नही आता। जो भी हो साधारण दृष्टि से मनुष्य की क्षमता वही हो सकती है जो मनुष्य की क्षमता है, मनुष्य अपनी शक्ति का उपयोग भी समाज में करता है, समाज से जो लिया है उसे समाज को ही देना है।

इस विचार से "कला कला के लिए है" यह न्याय-सगत नही मालूम पडता। कला मनुष्य का कार्य है, एक शक्ति है। मेढको का कूदना, फुदकना, टर्र-टर्र करना भी एक प्रकार की कला है, और जिस प्रकार उसकी इस कला का उपयोग उसके लिए तथा उसके समाज के अन्य मेढको के लिए है, उसी प्रकार मनुष्य की कला का उपयोग भी उसके लिए तथा केवल मनुष्य के समाज के लिए ही है। मनुष्य की कला मेढको के लिए नही हो सकती, उसका उपयोग मनुष्य के समाज के लिए ही है। मेढको ने फुदकना तथा टर्र-टर्र करना मेढको से ही सीखा है। उसकी इस कला का गुरु उसके माता-पिता तथा उसका मेढको का समाज ही है। इसी प्रकार मनुष्य भी कलाओ को अपने समाज से ही सीखता है, कला का कार्य करने की प्रेरणा भी उसे अपने सामाजिक जीवन की अनुभूतियो से ही प्राप्त होती है। उसकी कला का रूप उसकी अनुभूति ही होती है, फिर कला कला के लिए है यह कैसे कहा जा सकता है? लेकिन 'कला कला के लिए है', यह विचार बड़ा प्राचीन है और इसमें विश्वास करने वाले आज भी बहुत-से है। आधुनिक पिकासोवाद, सूक्ष्मवाद, क्यूबिज्म, सुरियलिज्म इत्यादि सभी को "कला कला के लिए है" से प्रभावित कहा जा सकता है, क्योकि इन सभी प्रकार की शैलियो मे सामाजिक चित्रण बहुत कम मिलता है और मिलता भी है तो जोर अन्य वस्तुओ पर दिया होता है, खासकर रूप तथा रङ्ग पर। ऐसे चित्रो मे विषय गौण रहता है। इन चित्रो का आनन्द साधारण समाज नही ले पाता परन्तु कलाकार इसमें बहुत आनन्द पाता है। ऐसे कलाकारों से लोग शिकायत करते हैं कि उनके यह चित्र जनता की समझ में नही आते। उस पर आधुनिक कलाकार चुप रहता है और इसकी चिन्ता नही करता कि उसके चित्र समाज को पसन्द है या नहीं। ऐसी स्थिति मे ही कला को कला के लिए समझा जाता है। कलाकार समाज

का ख्याल करता हुआ नहीं दिखाई पड़ता । ऐसी स्थिति को देखकर ही फ्रान्सीसी विचारक लकांत-दलिस्ल (Leconte do lisle) ने कहा है—

The tendency of the artist to accept the theory of art for art's sake arises when he finds himself in disaccord with the society in which he lives.

"कलाकार उसी समय इस विचार की ओर झुकता है, कि 'कला कला के लिए है', जब वह अपने को अपने समाज से भिन्न पाता है, अर्थात् जब समाज कलाकार की कृतियों का मूल्य समझने में असफल होता है और कला का आदर करना छोड़ देता है, तब कलाकार निराश होकर कला का कार्य करना ही नही छोड़ देता, बल्कि कला की रचना करता जाता है, और उसका आनन्द स्वयं लेता है, उसे समाज से प्रशंसा की आशा नही रहती। ऐसे समय जब उससे कोई कुछ पूछता है तो वह यह न कहकर कि वह समाज के लिए कला की रचना करता है, कहता है, कि वह अपनी रचना कला के लिए करता है, अर्थात् क्योंकि उसे उसमें मजा आता है और इसीलिए करता है। वह ऐसा दूसरो को दिखाने के लिए नही करता। ठीक भी है उसका ऐसा कहना क्योंकि अगर वह कहे कि वह अपनी रचना समाज के लिए करता है, तो लोग कहेंगे कि समाज तो उसकी रचना को समझ ही नही पाता, न उसका कोई आनन्द ही ले पाता है, तब कैसे वह कहता है कि वह अपनी रचना समाज के लिए करता है ? इसीलिए कलाकार यही कहना उचित और हितकर समझता है कि कहे 'कला कला के लिए है'।

एक बार किसी गाँव का एक धनी व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ पहिली बार शहर घूमने आया। बाजार में एक दूकान पर बड़ी भीड़ लगी थी और तरह-तरह के स्त्री-पुरुषों की तस्वीरें टँगी थी। दोनो वहीं रुक गये और यह जानने का प्रयत्न करने लगे कि आखिर माजरा क्या है ? एक अन्य देहाती को दूकान से बाहर निकलते हुए देखकर अपनी भाषा मे उससे पूछा—"का गुरू, काहे का भीड़ लागल बा?" बाहर निकलते हुए देहाती ने अपनी तथा अपनी स्त्री का फोटो दिखाकर कहा—"गुरू देखा, कैसन निम्मन बनौलेस हौ।" हमारे देहाती की स्त्री इन चित्रो को देखकर अपना फोटो खिचवाने के लिए मचल पडी। दोनो दुकान में गये और फोटो खिचवाया। फोटो जब हाथ में आई तो सज्जन अपनी स्त्री का चित्र देखकर बड़े प्रसन्न हुए पर जब स्त्री ने अपने पतिदेव का चित्र देखा तो उसे बड़ा अचम्भा हुआ। पतिदेव की एक आँख का चित्र में नाम-निशान भी न था। स्त्री ने पति के कान में कुछ कहा। पति ने मारे नाराजगी के चित्र दुकान पर पटक दिया और कहा—"मखौल करत हौवा महराज", वह डण्डा सम्भाल रहा था कि दुकानवाले ने हाथ जोड़ा और दण्डवत कर उन्हें किसी तरह बिदा किया। समाज के इस देहाती का फोटोग्राफर ने ख्याल नही किया, क्योंकि उसने इस देहाती का फोटो खीचा था जिसमें केवल एक ही आँख दिखाई पड़ती है। परन्तु उस बेचारे देहाती ने तो यही समझा कि फोटोग्राफर ने उसे काना बना दिया। फोटोग्राफर का चित्र, उसकी मिहनत, उसकी कला सब बेकार हो गई, क्योंकि समाज के देहाती को वह खुश न कर सका।

इसी प्रकार एक बार विश्व-विख्यात डच कलाकार रेम्ब्रा (Rembrandt) को किसी खेलाड़ियों की टोली ने अपना ग्रूप चित्रित कराने के लिए आर्डर दिया। कई महीनों बाद चित्र तैयार हुआ परन्तु खेलाड़ियो को वह चित्र पसन्द न आया। कारण यह था कि रेम्ब्रा अपने चित्रो में छाया का उपयोग अधिक करता था और प्रकाश को कही-कही डालकर चित्र के पात्रो को चमकाता था जिससे चित्र में एक विलक्षणता आ जाती थी। और ऐसे चित्र में पात्र का रूप बिल्कुल साफ-साफ नही दिखाई पड़ता, कभी-कभी पात्र अन्धेरे में पड जाता है। यही हाल खेलाडियो में से कुछ जो प्रकाश में थे उनका रूप साफ-साफ था, तथा पहिचाना जाता था, पर अन्धेरे में पड़े खेलाडियो का रूप धूमिल था और पहिचान में नही आता था। ऐसे खेलाडियो ने चित्र को नापसन्द कर दिया। रेम्ब्रा कुछ न बोला और चाकू से उस बडे चित्र को टुकडे-टुकडे कर डाला। पेशगी ली हुई रकम वापस करके, खेलाडियो को बाहर कर दरवाजा बन्द कर लिया। ऐसे समय मे रेम्ब्रा अगर कहे कि—'कला कला के लिए है' तो क्या अनुचित है।

कलाकार, दार्शनिक या वैज्ञानिक समाज के उपयोगी अग हैं। यह तो आज कोई नही कह सकता कि कला, दर्शन या विज्ञान ने समाज को लाभ नही पहुँचाया परन्तु आज भी कलाकार, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक का स्थान समाज मे निराला होता है। इनका जीवन प्राय अधिक सामाजिक नही हो पाता। साधारण लोग इनके गुणो तथा कार्यों से भी परिचित नही हो पाते और यही कारण है कि इनका सामाजिक जीवन सकीर्ण हो जाता है। फिर भी समाज इनको एक ऊँचा स्थान देता है, और देना भी चाहिए।

डॉ० महादेव साहा

डेढ़ शताब्दी पूर्व देशी भाषा के माध्यम से शिक्षादान की प्रचेष्टा

आज देश मे सभी स्तरो की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से देने की चेष्टा चल रही है। जहाँ तक विश्वविद्यालय के स्तर की शिक्षा का प्रश्न है, हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय ने इस देश मे सबसे पहले एक भारतीय भाषा (उर्दू) के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था की थी। आज उस्मानिया विश्वविद्यालय के दृष्टान्त का अनुकरण सारे देश मे हो रहा है। देश की शिक्षा के इतिहास मे यह बहुत बडी घटना है।

भारत की आधुनिक भाषाओ के माध्यम से शिक्षा देने के आन्दोलन का इतिहास बहुत पुराना है। सभी भाषा-क्षेत्रो मे यह आन्दोलन एक ही साथ नही शुरू हुआ। जहाँ तक बङ्गला भाषा का सम्बन्ध है, इस आन्दोलन का श्रीगणेश विदेशी मिशनरियो ने ही किया। जोशुआ मार्शमैन श्रीरामपुर के बैपटिस्ट मिशनरियो मे एक थे। १८१६ ई० में श्रीरामपुर से प्रकाशित अपनी पुस्तक—

—Hints relating to Native Schools, together with the outline of an institution for their extension and management

नामक पुस्तिका के दूसरे अध्याय मे उन्होने लिखा कि, बङ्ग सन्तानो को बङ्गला के माध्यम से ही शिक्षा दी जा सकती है और ऐसा करना उचित भी है। यह पुस्तिका इस वक्त सामने न होने के कारण जोशुआ मार्शमैन के पुत्र जान क्लर्क मार्शमैन ने इसका जो साराश दिया है उससे पता चलता है कि—

"The socond section dwelt on the mode in which it was advisable to communicate knowledge, and boldly maintained the principle that my hope of giving instruction to the people of India, or indeed of any country, through the medium of a language not their own, was altogether fallacious For ideas to be acquired in a foreign language, opportunity, leisure, inclination and ability must combine in the case of each individual . Moreover, instruction to answer its proper design should be such as to render the inhabitants of every country happy in their own sphere and not to take them out of it." (The Life and Times of Carey, Marshman and Ward London, 1859 Vol II p 122)

श्रीरामपुर मिशन ने १८१५ ई० मे ही पाठशालाएँ खोलनी शुरू की। मुदर्रिस तैयार करने के लिए श्रीरामपुर में एक नार्मल स्कूल कायम किया गया। श्रीरामपुर को केन्द्र बनाकर बीस मील के अन्दर दो सालो में कम-से-कम पैंतालीस पाठशालाएँ खोली गईं। इनमे दो हजार विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। 'हिन्ट्स' मे प्रस्तावित बङ्गला के माध्यम से ही ये विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। मिशनरियो के इस प्रयास में स्थानीय निवासियो ने भी भरपूर मदद की। जान मार्शमैन ने लिखा है—

Contributions poured in with a degree of librality which marked the confidence the missionaries enjoyed in Indian society.
(वही, पृष्ठ, १५७)।

देशी पाठशालाओ के सुधार और उन्नति के लिए १८१८ ई० मे कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी स्थापित हुई। इन पाठशालाओ मे बङ्गला मे ही पढाई होती थी। स्कूल बुक सोसाइटी (स्थापित १८१७ ई०) ने कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित विभिन्न विषयो की पाठ्य-पुस्तको को अपने अधीनस्थ स्कूलो मे चालू किया। सोसाइटी के पण्डित और उनके चार सहकारी निश्चित दिन इन पाठशालाओं मे जाकर शिक्षको को विभिन्न पुस्तको का मर्म समझा देते थे और शिक्षा-प्रणाली के बारे मे उपदेश देते थे। इससे विद्यार्थियो और शिक्षको दोनो को ही लाभ होता था।

सोसाइटी की पाठशालाओ मे डेविड हेयर द्वारा सञ्चालित ठनठनिया (कलकत्ता) के पास की आरपुली पाठशाला आदर्श थी। इसके साथ ही अंग्रेजी विभाग या स्कूल भी था। हेयर साहब ने यह नियम बनाया था कि, आठ साल की उम्र पूरी करने के पहिले किसी भी विद्यार्थी को अंग्रेजी नही पढाई जायगी। इसका नतीजा बहुत अच्छा हुआ था। आठ साल की उम्र तक विद्यार्थी बङ्गला के माध्यम से सभी विषयो को पढते थे। उनका मातृभाषा का ज्ञान भी पोख्ता हो जाता था। उन्नीसवी शताब्दी के विख्यात पण्डित पादरी कृष्णमोहन वन्द्योपाध्याय इसी आर-पुली पाठशाला के छात्र थे। अंग्रेजी के हामी होने पर भी उन्होंने कभी भी मातृभाषा की अवज्ञा नही की। अपने जीवन मे वे बहुतेरी बङ्गला पुस्तकें लिख गये है। इस पाठशाला का कोई विद्यार्थी अगर बङ्गला मे कमजोर देखा जाता तो रोज कुछ समय उसे बङ्गला पढकर कमी पूरी कर लेनी पडती थी।

बङ्गला की बुनियाद पक्की हो जाने पर आरपुली तथा दूसरी पाठशालाओ के विद्यार्थी सोसाइटी के पटलडांगा (कलकत्ता) अंग्रेजी स्कूल मे और वहाँ नतीजा अच्छा होने पर मासिक वजीफा देकर हिन्दू कालिज[1] (स्थापित १८१७ ई०) मे भेज दिये जाते थे। इस प्रकार शिक्षा की एक क्रमिक धारा भी मानी जाती थी।

---

१ १८५५ ई० में इसका नाम प्रेसिडेंसी कालिज पड़ा और यह सरकार की देखरेख में चलने लगा। १९५५ में इसकी शतवार्षिकी मनाई गई है।

हिन्दू कालिज के अगरेजी शिक्षित विद्यार्थियो ने मातृभाषा से श्रद्धा करना सीखा था। इनमें से कितने ही साहित्य और पत्रकारिता में स्थायी नाम रख गए हैं।

कलकत्ता स्कूल सोसाइटी अधिक दिनो तक नही चल सकी। १८३३—३४ ई० में कलकत्ते की कितनी ही बड़ी-बडी कोठियो (Agency Houses) के साथ इस सोसाइटी की कोषाध्यक्ष मैकिन्टोश कम्पनी का भी दिवाला निकल गया। सोसाइटी का जमा रुपया डूब गया। अर्थागम के दूसरे जरिये भी बन्द हो गये। सोसाइटी ने अपना काम काफी समेट लिया। पाठशालाओ की देख-भाल भी उसने छोड दी। डेविड हेयर की आरपुली पाठशाला बन्द हो गई। इसका अगरेजी विभाग सोसाइटी के पटलडाँगा स्कूल के साथ मिला दिया गया। देशी विद्यालयो मे बङ्गला के माध्यम से जो शिक्षा व्यवस्था स्थापित हो रही थी, वह इस प्रकार नष्ट हो गई।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी

अब ईस्ट इण्डिया कम्पनी शिक्षा के लिए क्या कर रही थी इस पर भी एक सरसरी निगाह डाल लेना अच्छा होगा। १८१३ ई० के कम्पनी की सनद के मुताबिक शिक्षा के मद में सरकार ने एक लाख रुपया हर साल देने का फैसला किया। लेकिन १८२३ ई० के पहिले इस फैसले के मुताबिक कोई खास काम नही हुआ। १८२३ ई० मे उपर्युक्त फैसले के अनुसार कलकत्ते में संस्कृत कालिज स्थापित करने और कलकत्ता मदरसा (स्थापित १७८०ई०) के पुनर्गठन की बात चली।[1] नए सिरे से सस्कृत कालिज स्थापित करने के विचार पर आपत्ति करते हुए राम मोहन राय ने ११ दिसम्बर १८२३ ई० को बडे लाट आमहर्स्ट को एक पत्र लिखा था। प्राच्य विद्याओ की शिक्षा के लिए नए सिरे से कोई आयोजन न कर स्वदेशवासी यूरोपीय ज्ञान विज्ञान अर्जन कर उन्नत जातियो के समान हो सके, इस पत्र मे राम मोहन राय ने इसी की व्यवस्था करने की अपील की थी। उनका यह निवेदन मन्जूर नही हुआ।

१८२४ ई० मे सस्कृत कालिज (कलकत्ता) की स्थापना के बाद कलकत्ता मदरसा पुनर्गठित किया गया। शिक्षा कमेटी ने इन कालिजो में सस्कृत और अरबी के माध्यम से पढाने की व्यवस्था की। दिल्ली और आगरे मे भी प्राच्य विद्या पढाने के लिए कालिज खोले गए। इसी समय से एक ओर जिस तरह अरबी और सस्कृत साहित्य से सकलन-पुस्तके छपने लगी उसी तरह यूरोपीय गणित, पदार्थ-विज्ञान, शरीरविद्या विषयक विज्ञान ग्रन्थ भी संस्कृत और अरबी में अनूदित होने लगे।

इसके अलावा सरकारी हुक्म से कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी, कलकत्ता स्कूल सोसाइटी, हिन्दू कालिज वगैरह गैरसरकारी सस्थाओ को भी १८२३ के बाद से एककालीन दान और थोडी

---

१. कलकत्ता मदरसा सितम्बर १७८० ई० में स्थापित हुआ। करीब सभी पुस्तकों में इसके १७८१ में स्थापित होने की बात लिखी देखी जाती है। लेकिन यह गलत है। The Discovery of India के लेखक श्री जवाहरलाल नेहरू ने १८१७ लिखा जो बिलकुल गलत है।

बहुत मासिक सहायता दी जाने लगी। प्राच्य विद्या के केन्द्रो में भी इसी बीच अगरेजी की पढ़ाई शुरू हो गई।

शिक्षा के खाते मे खर्च होने वाली अधिकाश सरकारी रकम प्राच्य विद्या के प्रचार में ही खर्च होती थी। इस व्यवस्था की उपयोगिता के बारें मे शिक्षा कमेटी में मतभेद दिखाई पड़ा। कमेटी के कुछ सदस्य शुरू से ही सस्कृत और अरबी के माध्यम से शिक्षा देने के पक्षपाती थे। प्राच्य-विद्या के समर्थक होने के कारण वे 'ऑरियन्टलिस्ट' (Orientalists) कहलाए। जो लोग इन दोनो भाषाओ की जगह अगरेजी के माध्यम से शिक्षा देने के पक्ष में थे वे 'ऐंग्लीसिस्ट' (Anglicist) नाम से परिचित हुए। कई सालो तक बहस-मुबाहसे के बाद १८३४ ई० में दोनों पक्षो की बहस अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची और इसका फैसला भी बहुत जरूरी हो गया। इस समय हाल ही मे विलायत से आए बड़े लाट के शासन परिषद् के कानून सचिव टामस बेबिङ्गटन मेकाले शिक्षा कमेटी के सभापति थे। उन्होने दोनों पक्षो की बाते सुनी सही मगर कमेटी में अपना मत जाहिर न कर कानून सचिव की हैसियत से फरवरी १८३५ ई० मे सीधे बड़े लाट के पास अगरेजी वालो के पक्ष मे अपनी राय लिख भेजी। अगली ७ मार्च को सपरिषद् बड़े लाट विलियम बेन्टिक ने मैकाले की राय के पक्ष में फैसला दिया कि १ भारतीयो मे यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान का प्रचार करना ही सरकार का प्रधान उद्देश्य है, २ शिक्षा के लिए निश्चित रकम अगरेजी शिक्षा के लिए खर्च होगी और ३ अगरेजी के माध्यम से ही यूरोपीय साहित्य और विज्ञान की शिक्षा दी जायगी।

शिक्षा के माध्यम के बारे मे सरकारी तौर से फैसला होने पर भी किसी भी देशी भाषा का उल्लेख नही किया गया। जनता मे शिक्षा के विस्तार मे देशी भाषाओ की उपयोगिता पर कोई ध्यान नही दिया गया। शायद इन्ही बातो को देखते हुए १८३६ ई० की शिक्षा कमेटी मे इस प्रकार से सफाई दी गई—

"We are deeply sensible of the importance of encouraging the culivation of the Vernacular languages We do not conceive that the order of 7th. March precludes us from doing this, and we have constantly acted on this construction In the discussion which preceded that order, the claims of the Vernacular languages were broadly and prominently admitted by all parties, and the question submitted for decision of Government, only oncerned the relative advantage of teaching English on the one side, and the learned Eastern languages on the other. .It was therefore unnecessary for the Government, in deciding the question between the rival languages, to take any notice of the Varnacular tongues, and consequently we have thought nothing could reasonably be inferred from its omission to take such notice.

"We conceive the formation of a Vernacular Literature to be the ultimate object to which all our efforts must be directed. ..

"The improvement of the Vernacular Literature, however, is most intimately connected with the measure of establishing a system of really national education..." (pp. 7-9)

देश भाषा के माध्यम से कब शिक्षा सम्भव होगी इसके बारे में रिपोर्ट मे कही कुछ भी नहीं कहा गया। इस व्यवस्था का फल सारे भारत को सौ साल से ऊपर तक भुगतना पड़ा।

इसके बाद भी दो साल बीत गये मगर शिक्षा कमेटी के वादो को पूरा होने के लक्षण नहीं दिखाई पड़े। बल्कि १८३८–३९ ई० में विलियम ऐडम ने देशी शिक्षा व्यवस्था के सुधार और उन्नति के लिए अपनी ऐतिहासिक रिपोर्ट मे जो सिफारिशे की उन्हें भी अर्थाभाव के कारण नामञ्जूर कर दिया गया। लार्ड विलियम बेन्टिक ने जनवरी १८३५ ई० में ऐडम को नियुक्त किया था और चार सालो के घोर परिश्रम के पश्चात् तीन खण्डों में उन्होने रिपोर्ट पेश की। ऐडम ने भी बङ्गला तथा देश भाषा के माध्यम से ही शिक्षा देने की सिफारिश की। २४ नवम्बर १८३९ई० में तत्कालीन बडे लाट आकलैण्ड ने सरकारी तौर से शिक्षानीति के बारे में एक 'मिनिट' अर्थात् निर्देशपत्र दिया। इसमे उन्होंने शिक्षा के मद मे सालाना एक लाख की जगह दो लाख खर्च करने का निर्देश दिया और प्राच्यविद्याओ के लिए सालाना उनहत्तर हजार रुपए की मञ्जूरी देकर उपर्युक्त झगडे को निपटाने की चेष्टा की। बङ्गला तथा दूसरी देशी भाषाओ की श्रीवृद्धि के लिए शिक्षा कमेटी का प्रत्यक्ष आग्रह देखकर किसी-किसी ने शायद सोचा था कि बम्बई प्रदेश में जिस तरह स्थानीय भाषा के माध्यम से शिक्षादान का काम मजे मे चल रहा है, उसी तरह की बात बङ्गाल मे भी चालू की जायगी। लार्ड आकलैण्ड ने इस विश्वास और धारणा को उपर्युक्त 'मिनिट' में दूर किया और घोषित किया कि, अगरेजी के माध्यम से शिक्षादान का जो काम शुरू हुआ है, कुछ दिनो तक उसकी परीक्षा किए बगैर शिक्षा के माध्यम को बदलने का प्रश्न उठ ही नही सकता। लार्ड आकलैण्ड की भाषा में—

"I have thus stated what has seemed most important on the subject of introducing the Vernacular medium in our common district schools; I mean, as to the general principle of such a change, for the measure could not be named as one for early adoption, with no class books prepared or teachers versed in those books yet trained for thier duties. And as the contrary system has been actually established, it is right that, unless urgent reasons for abandoning that system demanded attention, it should be fully tried, with the improvements of which it may fairly be susceptible." (H Sharp–Selections from Educational Records, Part, 1781—1839, Calcutta, 1920 I, p 163)

उपर्युक्त 'मिनिट' में आकलैण्ड ने शिक्षा के माध्यम अंगरेजी भाषा को बदलने के पहिले योग्य बङ्गला पाठ्यपुस्तको की रचना का आयोजन करने के लिए शिक्षा कमेटी को आदेश दिया था। इसके अनुसार काम भी हुआ था। लेकिन एक ऐसी त्रुटि रह गई थी जिसके लिए बङ्गला भाषा की उन्नति की चेष्टा दिन-ब-दिन टलती ही गई। शिक्षा कमेटी के कर्णधारो में अगरेजी के प्रति अत्यधिक पक्षपात और बङ्गला शिक्षा को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए योजना की कमी दोनों ने अपना उद्देश्य सिद्ध किया।

प्रसन्नकुमार ठाकुर, राधाकान्त देव, डेविड हेयर आदि तत्कालीन नेताओ और भारत-हितैषियो ने सरकारी शिक्षा व्यवस्था की त्रुटियो को भलीभाँति समझा। उन्होने देखा कि बङ्गाल के विद्यालयो मे बङ्गला के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था नही करने से एक ओर जैसे साधारण लोगो के लिए शिक्षा पाना असम्भव होगा, उसी तरह दूसरी ओर देश-विदेश के ज्ञान-विज्ञान से तथ्य आहरण करके निज मातृभाषा की श्रीवृद्धि साधन मे भी अडचन पैदा होगी। इन बातो को सोचकर आकलैण्ड के 'मिनिट' के प्रकाशित होने के पहिले ही वे एक आदर्श पाठशाला स्थापित करने के लिए अग्रणी हुए। इस पाठशाला के उद्देश्य के विषय मे शिक्षा कमेटी की रिपोर्ट मे लिखा गया है —

The primary objects contemplated in the establishment of the Pathshala were to provide a system of National Education, and to instruct Hindoo youths in Literature, and the Sciences of India and of Europe, through the medium of the Bengalee Language (General Report on Public Instruction, for 1843-44, p-19)

१ जून १८३९ को डेविड हेयर ने कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालिज के वर्तमान भवन के उत्तर-पूरबी कोने मे इस पाठशाला की नीव डाली। प्रसन्नकुमार ठाकुर, राधाकान्त देव वगैरह हिन्दू कालिज (स्थापित २० जनवरी १८१७, १५ जून १८५५ ई० से प्रेसिडेन्सी कालिज के नाम से परिचित) के सञ्चालको ने अपने खर्च से पाठशाशा के लिए मकान बनवाया। हिन्दू कालिज की देखरेख मे १८ जनवरी १८४० मे पण्डित रामचन्द्र विद्यावागीश की अध्यक्षता में बडे समारोह के साथ पाठशाला का काम शुरू हुआ। अपने प्रारम्भिक भाषण मे अध्यक्ष ने भली-भाँति समझा दिया कि, बङ्गला भाषा के तत्कालीन विकास की सहायता से पूरब और पच्छिम के ज्ञान-विज्ञान दर्शन के सर्वोच्च ज्ञानो को अभिव्यक्त करना सम्भव है और इसी भाषा में ही बङ्गाली विद्यार्थियो को इन विषयो को आयत्त करना सहज और सर्वसम्मत है।

१८४२ ई० से ही हिन्दू कालिज अधिकाधिक शिक्षा कमेटी[1] के नियन्त्रण मे आ गया। कालिज के अधिकारियो की बातें अब उतनी नही सुनी जाती थी। इस समय हिन्दू कालिज का

---

१ पहिले की General Committee of Public Instruction का नाम जनवरी १८४२ से Council of Education पड़ा।

एक नियम यह था कि, अंगरेजी नही जानने से आठ साल से ऊपर वाले किसी बालक को वहाँ भर्ती नही किया जाता था। कालिज के अधिकारियो ने शिक्षा कमेटी से इस नियम को बदल कर हिन्दू कालिज में भर्ती होने की कम-से-कम उम्र दस करने का अनुरोध किया। क्योकि चालू नियम के अनुसार आठ साल के होते ही विद्यार्थियो को भर्ती होने के लिए बाध्य होना पडता था। इसके अलावा नाना कारणो से अगरेजी की कदर होने से अभिभावक आठ साल के होने के पहिले ही बच्चो को अगरेजी स्कूलो मे भर्ती करा देते थे। इसके फलस्वरूप पाठशालाओ मे विद्यार्थियो की सख्या दिन-दिन घटने लगी और उसके उद्देश्य की पूर्ति मे भी बडी बाधा दिखाई पडी। कालिज के अधिकारियो ने पाठशाला के विद्यार्थियो का उत्साह बढाने के लिए कालिज मे पढने के लिए पाठशाला के कुछ विद्यार्थियो को छात्रवृत्ति देने का प्रस्ताव भी रखा। शिक्षा कमेटी ने एक न सुनी। पाठशाला स्थापित करने का उद्देश्य विफल हो गया। धीरे-धीरे और पाठशालाओ की तरह यह भी एक साधारण पाठशाला बन गयी। यहाँ बता देना जरूरी है कि, कालिज के अधिकारियो की प्रचेष्टा से पाठशालोपयोगी बङ्गला पुस्तको की रचना और प्रकाशन शुरू हो गया था। शिक्षा कमेटी के उत्साह न दिखाने के कारण यह काम भी बन्द हो गया। इसी प्रसङ्ग मे देवेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा हिन्दू कालिज के आदर्श पर प्रतिष्ठित तत्त्वबोधिनी पाठशाला और उसके व्यवहार के लिए पुस्तके लिखने की बात को स्मरण करना चाहिए।

आकलैण्ड, के बाद १८४४ मे हार्डिञ्ज बडे लाट होकर आए। अपने शासनकाल में उन्होने बङ्गाल में (तब बिहार और ओडिसा भी इसी प्रदेश मे थे) एक सौ एक बङ्गला विद्यालय खुलवाए थे। इनकी देखभाल सदर बोर्ड आफ रेवेन्यू करता था। शिक्षा कमेटी की अगरेजी की अत्यधिक रुझान के कारण ही शायद ऐसा किया गया था। लेकिन उन दिनो सरकार की शिक्षा-नीति की जो धारा थी उसे देखते हुए किसी भी व्यक्ति के लिए, चाहे वह कितना बडा पदाधिकारी क्यो न हो, बङ्गला की शिक्षा की उन्नति करना सम्भव नही था। कुछ साल चलने के बाद १८५५ के पहिले ही हार्डिञ्ज द्वारा स्थापित अधिकाश विद्यालय बन्द हो गए।

विलायत में भी सरकार की शिक्षा नीति की आलोचना होने लगी। बङ्गाल मे बङ्गला के माध्यम से जनता को शिक्षादान करने की ओर सरकार ने ध्यान नही दिया, इसका उल्लेख करते हुए कम्पनी के बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के सभापति चार्ल्स उड ने १९ जुलाई १८५४ को शिक्षा के विषय मे भारत सरकार को भेजे अपने खरीते मे लिखा—

Very little has, however, been hitherto done in Bengal for the education of the mass of the people, especially for their instruction through the medium of the vernacular language.

बङ्गला के माध्यम से शिक्षादान प्रचेष्टा के प्रारम्भ में थोडी-बहुत सहायता देने पर भी १८३५ ई० के बाद सरकार ने इधर कोई ध्यान नही दिया। इसका जिक्र करते हुए जान क्लार्क मार्शमैन ने लिखा —

"But the Anglicist whose influence now became paramount...did little or nothing for the education of the people through the medium of their own Vernacular tongues. They declared indeed, that, 'they conceived the formation of a vernacular literature to be the ultimate object to which all their efforts must be directed,' but no practical effort was made to carry these views into effect, and during the next cycle of twenty years, the patronage of the state was given almost exclusively to the study of English as it had previously been given to that of Sanskrit and Arabic." (The Life and Times of Carcey, Marshman and Ward, Vol.II, p. 491)

उक्त साहब के खरीते के अनुसार सरकार ने १८५६ ई० मे बङ्गाल के कुछ जिलो मे माडेल स्कूल यानी आदर्श विद्यालय स्थापित करने का आयोजन किया। इन्हे स्थापित करने और इनकी देखभाल का भार सस्कृत कालिज (कलकत्ता) के तत्कालीन अध्यक्ष पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय पर पड़ा। उन्होंने स्वय पाठशालाओ के लिए आदर्श पुस्तकें लिखी और लिखाई। उन्ही की देखरेख मे बङ्गला के इन विद्यालयो मे बगला के माध्यम से शिक्षादान आरभ हुआ। यह विषय हमारे लिए बहुत ही शिक्षाप्रद है। इस पर फिर कभी लिखा जायगा।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

जिला आजमगढ़ के ग्राम-नामों में इतिहास

आजमगढ जिला प्राचीन काशी जनपद का एक अश है। उत्तर वैदिक काल (ई० पू० ८००) मे यहाँ आर्य जरूर आ चुके थे, लेकिन उस समय आबादी मे उनकी प्रधानता नही रही होगी। उपनिषद्काल में काशी की ख्याति थी। वहाँ कितने ही तत्त्वचिन्तक भी पैदा हुए थे। पर, भारत के सामान्य इतिहास की तरह यहाँ का भी इतिहास बुद्ध काल (ई० पू० ५००) से शुरू होता है। आर्यो के आने से पहले यहाँ सिन्धु-सभ्यता वाले द्रविड पहुँचे होगे, तो कोई आश्चर्य नही। पर, यहाँ की धरती से पन्द्रह-सोलह फुट नीचे बचे हुए उनके अवशेष जब तक नही मिलते, तब तक उनके बारे मे कल्पना करना बेकार है। ताम्र-युग (ई० पू० १०००) मे द्रविड रहे होगे। किरात हिमालय की तराई मे अब भी थारू लोगो के रूप मे मौजूद है। उस समय वह इस भूभाग मे थे यह कहना मुश्किल है। बहुत सम्भव है उस समय किरात नव-पाषाण युग की सस्कृति मे भी विकसित नही थे। पाषाणास्त्रवाला मानव गुहावासी था। नवपाषाण-युग मे वह खेती करके ग्रामों (गृह-समूहो) मे बसने लगा था, तो भी पहाडो से बहुत दूर वह जाकर बसता रहा होगा, इसमे सन्देह है। आजमगढ के केन्द्र से हिमालय साठ-सत्तर मील उत्तर और विन्ध्याचल करीब-करीब उतनी ही दूर दक्खिन मे अवस्थित है, इसलिए पाषाण-युगीन मानव को अपनी जीविका और प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक पाषाण-हथियारो का यहाँ सुभीता नही था।

आज की धरती मे दस-ग्यारह हाथ (१५–१६ फुट) नीचे छिपी ताम्रयुगीन सभ्यता के अवशेषो का प्राप्त करना आसान नही है। पर, आरम्भिक लौहयुग (ई० पू० ७००) के अवशेषो का मिलना यहाँ बहुत सम्भव है। पिछली सत्ताईस शताब्दियो के इतिहास की ऐसी सामग्री को खोज निकालने का प्रयत्न हमें जरूर करना चाहिए—अगली पीढी इसे जरूर करेगी। आर्योंके आनेसे पहले यदि किरात यहाँ रहते रहे, तो उनकी भाषा भी बोली जाती होगी। पर, कृषि-जीवन मे न प्रविष्ट हो वह अधिकतर आखेटजीवी रहे होगे। आज जहाँ हिन्दी-युरोपीय वश की भोजपुरी भाषा बोली जाती है, वहाँ किसी समय द्रविड भाषा बोली जाती थी, इसमे सन्देह नही। आज तो बडी-छोटी हिन्दू-मुसलमान सभी जातियाँ रक्त-सम्मिश्रण के कारण एक-सी हो गयी है अन्तर केवल प्रतिशत का रह गया है। यह रक्त-सम्मिश्रण द्रविड़ और निषाद (आस्ट्रिक) जाति का परिचय देता है। पर, जहाँ तक आजमगढ जिले के आज के आबाद ४७१८ गाँवों का सम्बन्ध है, द्रविडकालीन नाम का पता नही मिलता। सास्कृतिक विकास और परिवर्तन के साथ नामो में भी परिवर्तन होता रहता है। द्रविड काल की बात क्या करना, जब उत्तर-वैदिक, प्राग्-बुद्ध काल के

भी नामों के अवशेष हमें गाँवों में नही मिलते। आजमगढ के पास केराकत कस्बा बुद्धकाल मे कीटा-गिरि के नाम से मशहूर था, दोनो नाममें कितना अन्तर है। वाराणसी नगर और काशी जनपद जैसे नाम जरूर बहुत पुराने है। जिस वक्त इस जिले में बोलचाल की सस्कृत जनभाषा रही होगी, उस समय के नामोका पहचानना आज मुश्किल है। उसके बाद पालि-युग (ई० पू० छठी से प्रथम शताब्दी) के बारे में भी निश्चित नही कहा जा सकता। प्राकृत और अपभ्रश काल के नामो का पता जरूर मिलता है, पर ईसा की आरम्भिक बारह शताब्दियो तक फैले इस काल की दोनो भाषाओ (प्राकृत १–५५० ई०, अपभ्रंश ५५०–१२०० ई०) मे नामो का फर्क करना बहुत मुश्किल है, क्योकि दोनो के उच्चारण-परिवर्तन एक-से थे। पुरका उर, ओर, और, एव ग्राम का आव, पल्ली का बल, वलि एक-सा ही होता था।

§ १. प्राक्-मुस्लिमकालीन नाम

प्राक्-मुस्लिम ऐतिहासिक काल मगध के शिशुनाग वंश से शुरू होता है। पालि ग्रन्थो से मालूम है, कि बुद्ध के समय (ईसा पूर्व ५००) काशी स्वतन्त्र राज्य नही रह गया था। वह कोसल के अधीन एक विशाल जनपद था। काशीवालो मे अब भी अपने जनपदका अभिमान था, जिसे सन्तुष्ट करनेके लिए कोसलराज प्रसेनजित् ने अपने भाई को काशिराज बनाकर उसे वाराणसी मे रक्खा था। इससे दो-तीन पीढी पहले काशी स्वतन्त्र जनपद था। बुद्ध के निर्वाण (४८३ ई० पू०) के तीन ही साल बाद मगधराज अजातशत्रु ने वैशाली के शक्तिशाली गणराज्य को अपने अधीन कर लिया। यह आशा की जाती है, कि ४०० ई० पू० तक काशी और कोसल दोनों मगधराज्य के अन्तर्गत हो गये। इसके पचास वर्ष बाद नन्दो के शासनकाल में तो पञ्जाब की सीमा तक का उत्तरी भारत एक छत्र के नीचे आ गया था। ऐतिहासिक प्राक्मुस्लिम काल मे आजमगढ निम्न राज्यो और राज-वंशो में रहा—

	राजवंश	राजधानी	काल	
१	कोसल	श्रावस्ती	५०० ई०	पू०
२	शिशुनाग	पाटलिपुत्र (पटना)	–३२३	,,
३	मौर्य	,,	३२३–१६०	,,
४.	शुग	,,	१६०–१००	,,
५.	कुषाण	मथुरा	७८–२००	,,
६	गुप्त	पाटलिपुत्र (पटना)	३१८–५००	,,
७.	हेफ्ताल (श्वेत-हूण)	सागल (स्यालकोट)	५००– ३०	,,
८.	मौखरी	कन्नौज	५५०–६००	,,
९.	वर्धन	,,	६००–६५०	,,
१०	गुर्जर प्रतिहार	,,	८००–१०००	,,
११.	गहडवार	कन्नौज	१०५०–११९३	,,

ग्यारह राजवंशों के अधीन आजमगढ जिले का ऐतिहासिक हिन्दूकाल बीता। इनमें पहले चार वंश भाषा के अनुसार पालि-काल में थे, पाँचवें, छठे, सातवें राजवंश प्राकृत-काल में और अन्तिम चार अपभ्रंश-काल में। जैसा कि हमने ऊपर बतलाया, प्राक्-मुस्लिम काल के ग्राम नाम प्राकृत और अपभ्रंश-काल (गुप्त से गहडवार वंश तक के) ही हो सकते हैं। अमुसल्मानी नामो वाले सभी गाव इस काल के नही है, इनमें से कुछ मुस्लिम काल के भी हो सकते हैं। ५०० की आबादी से कमवाले हिन्दू नामधारी गाव मुस्लिम-काल मे ही अस्तित्व में आये, यह अधिक संभव है।

१ नामों से काल का परिचय

ऊपर हम बतला चुके है, कि प्राक्-मुस्लिमकालीन गावो के नाम अपभ्रंश उच्चारण वाले थे। पुर ऋग्वेदिक काल मे मोर्चाबन्द स्थान को कहा जाता था। वह स्थायी बस्ती वाले गाव भी हो सकते थे और अस्थायी छावनियाँ भी। लेकिन, पीछे के काल में पुर स्थायी बस्तियो— ग्रामो या नगरो—को कहा जाता था। पालि-काल में पुर का ही उच्चारण था—अस्सपुर (अश्वपुर)। लेकिन, प्राकृत काल मे पुर का उर हो गया।

मगलपुर उस काल में मगलोर कहा जाता था। आज भी पाकिस्तान की स्वात-उपत्यका में मंगलोर है। हरद्वार के पास भी मगलोर है और सुदूर कर्नाटक का मगलोर शहर भी मशहूर ही है। उर अपने पूर्व के नाम के साथ मिल कर कभी उर, ओर कभी और, कभी औरा भी हो जाता रहा। पुर-अन्तवाले निम्न नाम इस जिले में मिलते है, जो प्राक्-मुस्लिमकालीन हैं।

(१) उर, ओर, और, औरा

	गाव	पर्गना[1]	(पर्गना-नम्बर)	जनसंख्या
	उर—			
१	नानूर	नत्थूपुर	६२४	५६८
२.	गगउर (गगापुर)	कौडिया	३८६	१११
	ओर, और—			
३	अजोर	माहुल	१३	४२४
४.	गिरौर	देवगाव	३०२	६१७
५	गुलोर	सगडी	४२३	४८८
६	पिठौर (-पुर)	बेला-दौलताबाद	६६१	८८७
७	बच्छौर (वत्सपुर)	सगडी	८६,८७	२३६,४९७

१. प्राकृत-अपभ्रंश कालमें सूबे को भुक्ति, जिलेको विषय, पर्गने को पत्तला (पर्गना भी) कहते थे। पहिले की तरह मुगलकाल में भी पर्गनावार ग्राम-सूचि रखी जाती थी, जिसे ही अंग्रेजोंने अकारादि क्रम से करके उनपर संख्या (नम्बर) लगा दी।

८.	बरमौर (ब्रह्मपुर)	महमदाबाद	६१७	१,७७०
९.	भेलौर (भिल्लपुर)	नत्थूपुर	११७	२८३
१०	सिकरौर (सहवरी)	माहुल	९६२	८७२
११	सिकरौर (राजपुर)	निजामाबाद	७३५	१,६८८
	औरा			
१२	अनौरा (अन्नपुर)	निजामाबाद	३	७८३
१३	अमौरा (आम्रपुर	,,	२६	३२३
१४	इटौरा (इष्टिपुर)	घोसी	३४९	८५१
१५	खण्डौरा (खण्डपुर)	माहुल	५५५	६१४
१६	गडौरा	सगडी	३९९	५०२
१७	टिसौरा	चिरैयाकोट	९५९	१,७१९
१८	नदौरा (नन्दपुर)	सगडी	६९६	१४५
१९	बडौरा (भद्रपुर)	करियात–मित्तू	१०७	९२०
२०	बिजौरा (बीर्यपुर)	निजामाबाद	१३८	१००
२१	लदौरा	कौडिया	६१५	७४९
२२	सिकरौडा	निजामाबाद	८४५	७८३

(२) दह, दहा, दही

किसी बडे जलाशय को संस्कृत मे ह्रद कहते है। पालि काल में ही ह्रद का दह बन गया था। आजकल की बोलचाल मे यह उस अर्थ मे अधिक प्रयुक्त नही होता, और दह का अर्थ दह जाना (बह जाना) लिया जाता है। जिले में जिन गावो के नामो के अन्त मे दह, दहा, दही आते है, वह किसी प्राकृतिक या कृत्रिम ह्रद के पास बसे हुए है, और उनके प्राचीन होने की बहुत सम्भावना है। यह नाम है—

२३	औदह	देवगाव	४५	९८६
२४	बरदह (चौकी)	,,	२१४	१३८०
२५	रायदह	माहुल	८३८	७४०
२६	नगदाहा	अतरौलिया	७१८	२६३
२७	पनदह्य	निजामाबाद	६९५	३१९
२८	,,	बेला-दौलताबाद	६३४	८८८
२९.	परदहा	महमदाबाद	६४३	१८६४
३०	बरदहा	देवगाव	८९	१,२१३
३१.	,, (चौकी)	,,	२१४	१,३८०
३२.	अमदहीं	करियात-मित्तू	३१	५९६

(३) वल

यह पल्ली (गाव) का अपभ्रंश मालूम होता है, और इस प्रत्यय वाले पुराने गाव निम्न है।

३३.	इदवल (इद्रपल्ली)	बेला-दौलताबाद	३६३	३४५
३४	खुदवल (क्षुद्र पल्ली)	करियात-भित्तू	५२७	३९९
३५	गगवल (गगापल्ली)	देवगाव	२८५	२७७
३६	गडवल (गर्त पल्ली)	सगडी	४०२	६८८
३७	घोघवल	घोसी	२९०	२८०
३८.	चिरवल	निजामाबाद	२५१	२५९
३९.	डिडवल	देवगाव	२३३	१,०२७
४०	टुडवल	निजामाबाद	८९७	३३५
४१	धजवल (ध्वज पल्ली)	देवगाव	२५१	१९२
४२	पिठवल (पठि पल्ली)	घोसी	६७४	१,१७०
४३	नदवल (नद पल्ली)	,,	६०५	४६९
४४	बछवल (वत्स पल्ली)	बेला-दौलताबाद	५०	१,९२७
४५	बिंदवल (विंदु पल्ली)	सगडी	२२७	१,४८४
४६	सेठवल (श्रेष्ठि पल्ली)	निजामाबाद	८०९	२,१००

(४) औल, औला, औलिया, औली

इन परसर्गों का सम्बन्ध भी वन से है। कभी र के स्थान पर ल हो जाने के कारण और, औरा से भी यह हो सकता है। यद्यपि औल आदि प्रत्यय वाले गावो मे सभी को पुराना नही कह सकते, क्योकि पीछे नये गावो के नाम रखने मे पुराने नामो का अनुकरण किया गया। तो भी जिन गावो की जनसंख्या ५०० से ऊपर है, और जहां पुरानी आबादी के अवशेष मिलते है, उन्हे हम प्राक्-मुस्लिमकालीन कह सकते है। ऐसे नाम है—

४७	पकरौला	माहुल	७६२	९१७
४८	कोरौली	घोसी	४६०	८४७
४९	पैंकौली	गोपालपुर	७२९	९९३
५०	धरौली	घोसी	२५१	८५३
५१	बरौली	,,	४९४	८५०
५२	रघौली	,,	७१२	९७५
५३.	सोहौली	माहुल	९६९	१,०८९
५४.	हरधौसी	घोसी	३१९	९१४

(५) डिह

दूसरे पूर्वी जिलों की तरह आजमगढ जिले में भी डिह ऐसे स्थान को कहते हैं, जहा प्राचीन काल में कोई गांव था। जिन गांवो के नामो के अन्त में या पूरा नाम डिह मिलता है, उनके पुराने होने की पूरी सम्भावना है। हो सकता है, ऐसे नामो में कुछ मुस्लिम काल के भी हो, क्योंकि ग्रामो का ध्वस मुस्लिम काल में भी अनेक बार हुआ है, और उजड़े हुए ऊचे स्थानो में लोगो ने फिर नये सिरे से गाव आबाद किये। प्राक्-मुस्लिम काल में गृह-युद्ध के अतिरिक्त इस भूमिपर बड़े आक्रमण बाख्त्री ग्रीको (ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी का मध्य), कुषाणो (ईसवी प्रथम शताब्दी) श्वेत हूणो (ईसवी पाचवी शताब्दी) के हुए। मुस्लिम-काल में सबसे बड़े आक्रमण १३ वी शताब्दी में तुर्कों के हुए। इन आक्रमणो के समय बहुत से सपत्ति वाले—(ऊची जाति वाले) अपने गांवों को छोड कर प्राण, धन और इज्जत बचाने के लिये भाग गये। ऐसी पुरानी परम्पराएँ किन्ही-किन्ही गावो में मिलती हैं, जिससे मालूम होता है, कि शायद सम्पत्तिहीन छोटी जाति के लोग अपने गावो में ही रह गये। जिले में डिह नाम वाले निम्न गाव है—

डिह, डीहा—

५५	अतरडीहा	माहुल	५६	२१३
५६	आदाडिह	मऊ	१०	६६७
५७	इमिलियाडिह	घोसी	३४२	०
५८	ऊचाडिह (सलेमपुर)	निजामाबाद	६४३	३६१
५९	ककराडिह	नत्थूपुर	४२३	३१६
६०	कंकूडिह	घोसी	३६८	३१७
६१.	कमरियाडिह	,,	४००	८१८
६२	खासडिह	माहुल	५५६	७८३
६३.	खेरीडिह	गोपालपुर	५७२	४३०
६४	गौरडिह (आइमा)	निजामाबाद	३३१	२७६
६५	गौरडिह (खालसा)	,,	३३२	३४६
६६	गौरीडिह	घोसी	२८३	५५०
६७	घोडियाडिह	बेला-दौलताबाद	३००	०
६८	चमराडिह	निजामाबाद	२३६	५७७
६९	जमडीहा	घोसी	३६५	३८१
७०	जमीरा चौराडिह	,,	३६७	३५३
७१	जामूडिह	देवगाव	३६५	५८५
७२	डिह, कैथौली-	माहुल	३४३	८००
७३	डिहपुर	,,	५६०	५६०

७४	डीहा	सगडी	३६८	७७
७५.	डीहा	बेला-दौलताबाद	२६२	६६४
७६	डेहुला (सरकार)	अतरौलिया	३१६	२३७
७७.	ताराईडिह	नत्थुपुल	८०३	३४०
७८.	तानडिह	बेलहाबास	८१०	१३६
७९	तारकडिह	बेला-दौलताबाद	८१२	२६५
८०	दरीडीहा	माहुल	३०१	१६३
८१	देवताडिह	निजामाबाद	४५७	५३
८२	देवराडिह	,,	२७६	२१७
८३	निबुआडिह	अतरौलिया	७३९	४०१
८४	नोंनियाडिह	माहुल	७४६	५०७
८५	पकरडीहा	अतरौलिया	७५५	१,१२७
८६	पखऊडिह	,,	७६०	१५९
८७	,, (सर्फ नदगाव)	,,	७६१	१६१
८८	पखारडिह	निजामाबाद	७०३	०
८९	बबुरा व्योहारडिस	चिरैयाकोट	७०७	४००
९०	बरहरडिह	,,	१५५	३६९
९१	बालडिह	बेला-दौलताबाद	७५	३८२
९२	बावनडिह	नत्थूपुर	५२	३२१
९३	बिकरमडिह	कौडिया	१८५	२३८
९४	बेमनडिह (गोसाईं)	अतरौलिया	१२४	२९७
९५	,, (किसुनदेव पट्टी)	,,	१२५	३८३
९६	बेलनाडिह	निजामाबाद	१४३	६५१
९७.	बेलहाडिह	बेलहाबास	११२	९९८
९८	बैरागडिह	माहुल	७५	४३७
९९	बौराडिह	निजामाबाद	६६	१,६५८
१००.	बेरियाडिह	नत्थूपुर	४८	२०२
१०१	बेरीडिह	बेलहाबास	७०	१५३
१०२	बेसाडिह	माहुल	७७	४२७
१०३	भूलनडिह	देवगांव	१,०२१	१,०२१
१०४	मेलुईडिह	घोसी	११९	९६
१०५	मनिकाडिह	निजामाबाद	५८५	५३०
१०६	मनिकाडिह	सगडी	६४६	५२९

१०७	मुसहरडिह	मऊ	६६४	३४३
१०८	मोटाडिह	निजामाबाद	६२०	६
१०६	रगडिस	माहुल	८६१	१,०६१
११०	रेकवारडिह	महमदाबाद	८२३	२,०७६
१११	रेवडीडिह	घोसी	७१४	७१५
११२	रेवडीडिह	,,	७१५	४१६
११३	लाखनडिह	अतरौलिया	६०१	६१२
११४	लाहीडिह	निजामाबाद	५४३	५६३
११५	शकरडिह	,,	८२३	०
११६	शाहडिह	सगडी	८५८	५७५
११७	सहनूडिह	देवगाव	७३१	३२४
११८	सुरियाडिह	निजामाबाद	८६६	३११
११६	सोनाडिह	घोसी	७८०	८२८
१२०	सोनारडिह	सगडी	८६०	०
१२१	सोमारीडिह	घोसी	७७६	४८८
१२२	हलुवाडिह	निजामाबाद	३५६	३८०
१२३	हसनाडिह	अतरौलिया	४३२	४११

(६) आव, आंवा

प्राकृत-अपभ्रंश काल मे ग्राम का आव हो गया था। जिन गावो के नामो के अन्त मे आव, आवा आते हैं, उनके प्राक्-मुस्लिम कालीन होने की पूरी सभावना है। जिले के भिन्न-भिन्न पर्गनो मे ऐसे थोडे-से ही नामो का होना भी उनकी प्राचीनता को बतलाता है—

१२४	अराव (गुल्जार)	कौडिया	३८	६४७
१२५	अवाव	महमदाबाद	६१	१,१६७
१२६.	कुजराव	देवगाव	४६५	७३६
१२६	गोठाव (गोष्ठग्राम)	निजामाबाद	३५४	१,८७१
१२७	छाव	,,	२४६	१,३५१
१२८	डुमराव (उदुबरग्राम)	महमदाबाद	३३१	१,३५८
१२६	तरियांव	घोसी	७६३	५५४
१३०	दसाव (दशग्राम)	अतरौलिया	३०७	३६६
१३१	दसाव	,,	४४६	२८६
१३२	दसाव (जमीन)	अतरौलिया	१,०३२	७४७
१३३	नदाव (नन्दग्राम)	निजामाबाद	६६१	२,२१३

१३४	नरियाव (नदीग्राम)	अतरौलिया	७८६	१,७३३
१३५	फटरांव (ठंढवल)	नत्थूपुर	२५६	६६२
१३६.	परसांव (मऊ)	देवगांव	५६०	७२२
१३७.	बवराव (बदरग्राम)	घोसी	३८	१,२५६
१३८.	बेलांव (विल्वग्राम)	बेला-दौलताबाद	१५२	१,१८५
१३९	बेराव	कौंदिया	१२८	२८६
१४०.	रेयाव	घोसी	७१७	१,११७
१४१	सठियाव (षष्ठिग्राम)	महमदाबाद	८६८	१,७३६
१४२	हरियाव (हरिग्राम)	नत्थूपुर	३२४	३२५
	आंवा—			
१४३	उडियावा	देवगाव	८३९	८०१
१४४	कमरावा	निजामाबाद	४३६	८२५
१४५	कुरियावा	माहुल	५८८	९६३
१४६	जरवावा	,,	४७१	१९१
१४७	जमुआवा (जम्बूग्राम)	बेला-दौलताबाद	४०१	१,१२९
१४८	सरावा (शरग्राम)	माहुल	९१२	८०६

२. जनसंख्या के अनुसार प्राचीनता—

मऊ, मुबारकपुर भी हिन्दू काल मे वस्त्र-शिल्प के केन्द्र रहे होगे। यह हमे मालूम है, कि इस्लाम के प्रथम विजय के साथ ही हिन्दू ततुवाय (पटकार) समूह-रूप से मुसलमान जुलाहे बन गये। इसीलिए मुलतान-पेशावर से ढाका तक हिन्दू पटकार नही मिलते। सिर्फ थोडे से रेशम के कपडे बुननेवाले ततवा (ततुवाय) बिहार के कुछ जिलो मे रहते है। बहुत सम्भव है, हिन्दू काल मे भी मऊ और मुबारकपुर ततुवायो का गढ था। असाधारण रूप से किसी बस्ती और उसकी सख्या की वृद्धि तभी होती थी, जब कि वहा कोई शासन-शिल्प-व्यवसाय-व्यापार का केन्द्र स्थापित हो जाय। आजकल जैसे रेल और उद्योग-धन्धे के कारण बस्तियो की आबादी असाधारण रूप से बढ जाती है। उस समय उनके बढने के कारण शासन-केन्द्र, शिल्प-व्यवसाय केन्द्र का होना ही हो सकता था। जिले में ऐसे स्थान कम ही रहे होगे, जिनमें से भी कितने ही युद्धो और आक्रमणो के समय ध्वस्त होकर डिह के रूप में परिणत हो गये होगे। उस समय बड़ी बस्ती या नगर का किसी नदी के पास होना स्वाभाविक था, क्योंकि उसके कारण नाव के सस्ते याता-यात का सुभीता होता। इस जिले में उत्तरी सीमा पर अवस्थित घाघरा (सरयू) को छोडकर और कोई ऐसी बडी नदी नहीं है, जिसमें बडी नावें बारहो मास चल सकती हों। घाघरा अपनी अनिश्चित धार के कारण स्थायी नगर बसने के अनुकूल नही है। हाल के कई वर्षों के तजर्बे बतलाते हैं, कि बाढ़ इस जिले की सदा से जबर्दस्त शत्रु रही है।

केवल कृषिप्रधान ग्राम स्वाभाविक रूप से ही अपनी जन-वृद्धि कर सकते थे। आजकल प्राय: सत्तर वर्ष में जनसंख्या दूनी हो जाती है। पुराने काल में जन-वृद्धि में बहुत-सी बाधाएँ थी। चेचक काफी सं या में लोगो का बलिदान लेती थी। हैजा आनेपर आधा गांव साफ हो जाता था। वैद्य की चिकित्सा से अधिक लोगो का विश्वास देवी-देवता और भाग्यपर था। इसके अतिरिक्त अकाल, बाढ और युद्ध भी सख्या-ह्रास के कारण होते थे। इसमें सन्देह है, कि १९वीं शताब्दी से पहले जनसंख्या सौ वर्ष में भी दूनी हो जाती थी। यदि सौ वर्ष मे हम दूनी होना मान लें, तो जिस गाव की आबादी १२वी सदी में पाच थी, उसकी आज बारह सौ से ऊपर होगी। लेकिन, हर शताब्दी बाद जनसख्या के दूने होने में बहुत-सी बाधाएँ थी, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। छह-सौ से ऊपर सख्या रखनेवाले गाव अकबर (सोलहवी सदी) से पहले के हो सकते है। और हजार से ऊपरवाले हिन्दू काल के। इस तरह देखने पर हजार से ऊपर संख्या रखनेवाले अर्थात् छह-सात शताब्दियो के ग्राम निम्न प्रकार मालूम होते है—

	गाव	पर्गना	नम्बर	जनसख्या
१४९	मऊ	मऊ	६२७	३४,४६५
१५०.	दुबारी	नत्थूपुर	२६२	७,७६६
१५१	बरहगावा (सुल्तानपुर)	,,	७८८	४,५४३
१५२	धरमपुर (बिशुनपुर)	,,	२४९	३,८३३
१५३	निजामाबाद (कस्बा)	निजामाबाद	४५५	३,९११
१५४	अदरी	घोसी	८	३,७३९
१५५	गोठा	,,	२९६	३,७२१
१५६	बड़ागाव	,,	६६	३,४०९
१५७	रानीपुर रजमो	निजामाबाद	७५५	३,३६८
१५८	काझा	महमदाबाद	४५२	२,२६४
१५९	काझा (खुर्द)	,,	४५३	१,०३०
१६०.	कुरथी (जाफ़रपुर)	घोसी	४७१	३,०८३
१६१	समेडा	महमदाबाद	८४९	३,०६२
१६२.	तरवा	देवगाव	८१३	२,९५८
१६३.	लड़ुआ	,,	५०९,५१०	२,९१६
१६४.	जगदीशपुर	निजामाबाद	४०२	२,७७९
१६५	सरवां	मऊ	७०	२,५४७
१६६.	चांदपट्टी	सगडी	२८१	२,५३२
१६७.	अतरौलिया	अतरौलिया	५८	२,५०८
१६८.	सोहरा	,,	६१८	२,५०१
१६९	सुरहन	माहुल	६२८	२,४८८

१७०.	घरवारा	चिरैयाकोट	३१७	२,४६७
१७१.	मरियादपुर	नत्थूपुर	५३७	२,४३७
१७२	मंगरावां (रामपुर)	निजामाबाद	५८४	२,४१०
१७३.	हरखोरी (जमीन)	सगड़ी	६६०	२,३८३
१७४	जोकहर	"	५००	२,२७०
१७५	लसरा (कला)	माहुल	६१३	२,२०६
१७६	लसरा (खुर्द)	माहुल	६१४	५५६
१७७	हरैया	सगड़ी	४३४	२,१६२
१७८.	पकड़ी (बुजुर्ग)	घोसी	६३४	२,१२५
१७६	पकड़ी (खुर्द)	"	६३५	६२८
१८०	सेठवल	निजामाबाद	८०६	२,१००
१८१	गभीरबन	"	३१६	२,०६१
१८२	भादो	महमदाबाद	१३३	२,०६७
१८३	कोहड़ा	माहुल	५७२	२,०६२
१८४.	मेहनाजपुर	देवगांव	५६३	२,०४२
१८५	लखनौर	नत्थूपुर	४८५	२,०२६
१८६	जीयनपुर	सगड़ी	४६४	२,०१५
१८७.	इदोरा	घोसी	३४५	२,००७
१८८.	महुला	सगड़ी	६३२	१,६६१
१८६	सिघौना	देवगाव	७८०	१,६६१
१६०	मित्तूपुर	करियात-मित्तू	६३८	१,६२३
१६१.	जिगरसंडी	चिरैयाकोट	४३८	१,६१०
१६२.	मुड़ियार	निजामाबाद	६४४	१,८८३
१६३	उचहुवा	बेलहाबास	८४४	१,८८२
१६४.	अतरैठ	अतरौलिया	५५	१,८७७
१६५	अरौली	अतरौलिया	१४८	१,८६४
१६६	चिरकिहिट	देवगाव	२२६	१,८५२
१६७	कौरा गवनी	माहुल	५३५	१,८४६
१६८	पकड़ी (कलां)	देवगाव	६३०	१,८४८
१६६	पकड़ी (खुर्द)	देवगाव	६३१	२२५
२००	गौरा	बेला-दौलताबाद	२६०	१,८३३
२०१	पूक	माहुल	८०७	१,७६५
२०२.	देवडट	बेला-दौलताबाद	२४७	१,७६३

२०३. गुसवा	महमदाबाद	१६०	१,७३६
२०४. नौरसिया	देवगाव	६१३	१,७३३
२०५. जैराजपुर	सगडी	४७७	१,७१५
२०६. गुजारपुर	महमदाबाद	३७३	१,७०६
२०७. मालो	महमदाबाद	६०४	१,६६६
२०८ करुई	माहुल	५२१	१,६४२
२०९ कुरगा	घोसी	५८४	१,६७८
२१० मधुआपुर	सगडी	६१५	१,६२१
२११ पिडउप (सिहपुर)	घोसी	६७३	१,६०१
२१२ मेलउर चंगरी	घोसी	११८	१,५७४
२१३ गोपालपुर	बेला-दौलताबाद	३१६	१,५७४
२१४ बनगाव	देवगाव	८४	१,५७०
२१५ उकडीपुर	निजामाबाद	६००	१,५२५
२१६ द्रोभाव (हैबतपुर)	देवगांव	३२६	१,५१५
२१७ कम्हरिया	बेलहाबांस	४२४	१,५११
२१८ कनेरी	माहुल	५११	१,५०७
२१९ पलथी	माहुल	७६६	१,४६५
२२० मुडहर	बेला-दौलताबाद	५६७	१,४६२
२२१ सरवा	देवगाव	७५२	१,४५५
२२२ महुवा	महमदाबाद	५६४	१,४५४
२२३ महुआरी (करौंदा)	बेला-दौलताबाद	५३६	१,४७४
२२४ पसका	बेला-दौलताबाद	६४८	१,४४४
२२५ घुसरी	निजामाबाद	३४१	१,४४१
२२६ छपरा (सुल्तानपुर)	सगडी	२६६	१,४४०
२२७ ओडा	निजामाबाद	६८८	१,४३४
२२८ सडवारी	निजामाबाद	४७४	१,४१०
२२९ ककरहटा	निजामाबाद	४३१	१,३६८
२३० गहजी	कौडिया	३७६	१,३७०
२३१. असवनिया	देवगांव	४७	१,३५५
२३२ अजगरा	सगडी	५६	१,३४६
२३३ दौलताबाद	चिरैयाकोट	२६१	१,३५०
२३४. हदरी	निजामाबाद	७६६	१,३४५
२३५. गोपालपुर (मुरारपुर)	गोपालपुर	४१५	१,३४३

२३६	मुगमास	घोसी	५८५	१,३३९
२३७.	मझगावां	निजामाबाद	५७०	१,३१८
२३८.	अचार	मऊ	९	१,३०६
२३९	मदीर	महमदाबाद	१४२	१,२९३
२४०.	उसरी (खुर्द)	घोसी	८२६	१,२४९
२४१.	उसरी (बुजुर्ग)	घोसी	४२४	६२८
२४२	रानीपुर	महमदाबाद	८०८	१,२४२
२४३	खजुरी	बेला-दौलताबाद	४५४	१,२२८
२४४	कौडिया	कौडिया	५३४	१,२२७
२४५	करमैनी	सगडी	५३४	१,२१९
२४६	कोटिला	निजामाबाद	५१९	१,२१५
२४७	दुर्वासा	निजामाबाद	२९७	१,३०९
२४८	लपसीपुर	चिरैयाकोट	५७०	१,२०९
२४९	सरौंदा	चिरैयाकोट	८६६	१,२००
२५०	बडागाव	महमदाबाद	१०१	१,१९४
२५१.	कुसुम्हरा	कौडिया	५९२	१,१९२
२५२	पवाई	माहुल	७८८	१,१८०
२५३	अतरसवा	घोसी	३१	१,१७६
२५४	चकबारा	बेला-दौलताबाद	२०६	१,१७५
२५५	भडसरी	बेला-दौलताबाद	११९	१,१६२
२५६	भुजही	चिरैयाकोट	१८४	१,१५५
२५७	बरहलगज	चिरैयाकोट	११९	१,१२०
२५८	नेमडाड	नत्थूपुर	६१४	१,११४
२५९	टडवा	बेलहाबास	८०८	१,११३
२६०	बरौली (सदरपुर)	माहुल	८८८	१,१०९
२६१	बासगाव	बेलहाबास	८५	१,०८७
२६२.	बकुया	अतरौलिया	१०१	१,०८२
२६३	मेहमौनी	निजामाबाद	६०४	१,०७७
२६४	सीही	महमदाबाद	९००	१,०७३
२६५	गभोई	निजामाबाद	३२०	१,०५७
२६६.	सुरहरपुर	महमदाबाद	९३१	१,०४७
२६७.	खिरिया	महमदाबाद	५१९	१,०२६
२६८.	कुतहरा	देवगांव	२३१	१,०१३

२६९. ओन्हाइन	महमदाबाद	७२०	१,०११
२७०. लौहटा	महमदाबाद	५७५	१,००१

३. संभवतः प्राचीन गांव

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम पाद मे—जब कि अपभ्रंश काल का अन्त हो रहा था—तद्भव के स्थानपर तत्सम शब्दो का प्रयोग शुरू हो गया। यह १२०३ ई० में तिब्बत गये बिहार के भिक्षु-कवि सुनयश्री के गीतो से मालूम होता है। १३वी सदी के मध्य में भारत आये तिब्बती पंडित छग-लोचवा धर्मश्रीस्वामी ने अपनी यात्रा में कुछ ऐसे शब्द उपयुक्त किये हैं, जिनसे भी पता लगता है, कि तद्भव की जगह तत्सम शब्दो का प्रयोग थोडा-थोडा हो चला था। अगली दो शताब्दियो में इस तरफ प्रवृत्ति और अधिक हुई। और जिस तरह माहव पीछे माधव हो गया, वैसे ही कितने ही तद्भव ग्राम-नाम भी तत्सम में परिणत हुए होगे। ग्राम-नामो के अत में आंव, आवां, उर, और, औरा, दह, दहा, दही, वल, औल, औलिया, औली प्रत्ययोके उदाहरण हम दे चुके है। निम्न प्रत्यय या परसर्गवाले नामोवाले गावो के भी प्राचीन होने की सभावना है—

	कोट—			
१.	चिरैयाकोट	चिरैयाकोट	२७१	५७५
	गांव—			
२	आमगांव	माहुल	२८	९८१
३	ऊचागाव	निजामाबाद	९०२	९१५
४.	देवगाव	देवगाव	६७०	१,२३४
	टी, नौ—			
५	भीटी	मऊ	१८२	९८३
६	बरौना	माहुल	१००	८१२
	पुर—			
७.	जहनियापुर	घोसी	३५५	८४५
८.	पुरंदपुर	माहुल	८३१	९२६
९.	हरखपुर	गोपालपुर	४३५	९३१
	रा—			
१०.	तितरा	बेलहाबास	८३२	९४३
	री—			
११.	टारी	करियात-मित्रू	९४८	५१३
१२.	पडरी	महमदाबाद	७२६	९२९
१३.	सगरी	सगडी	५३६	९९१

	वक--			
१४	आवक	अतरौलिया	३५	१,३०४
	वा, वां--			
१५	सिसवा	बेलहाबास	७६१	७२६
१६	उंचहुवा	निजामाबाद	८४४	१,८८२
१७	सरवा	मऊ	८७०	१,५४७
	वारा--			
१८	सिसवारा	माहुल	६६८	६२२
	सठ--			
१९	कारीसठ	घोसी	४०६	६२८
	संड--			
२०	अविलासड	चिरैयाकोट	७	२५८
२१	गुरसंड (गुरुषंड)	चिरैयाकोट	३७४	२२२
२२	घरसड	सगड़ी	३६१	३५६
२३	भैसड	सगड़ी	१८६	५६८
	हट, हटा--			
२४	कर्नहट (कनैला-)	करियात-मित्तू	४६४	५८३
२५	खोरहट	महमदाबाद	५२६	१,१८३
२६	देवहटा	कौड़िया	३२१	४३८
	हता--			
२७	अगेहता	देवगाव	६	७११
२८	घुरेहता	बेलहाबास	३१६	६४१
२९.	बरेहता	देवगाव	६०	३६७
	हर--			
३०.	सोनहर	घोसी	७८५	८३४
	हा--			
३१	घिनहा	बेलहाबास	२९९	९१५
	हां--			
३२	खरसहां (कला)	माहुल	५५७	९९८
३३.	खरसहा (खुर्द)	,,	५५८	८००
	हो--			
३४.	कोलहो	करियात-मित्तू	५४०	६२०

प्रकीर्ण—

३५.	अमरेशू (अमरवस्तु)	माहुल	२३	८६४
३६.	अमारी	बेलहाबास	२४	७४८
३७	गुआई	माहुल	४०८	८२०
३८	गोधना	,,	४०१	६३६
३९.	चानदेउरा	देवगांव	२१०	७७५
४०	ठेकमा	बेला-दौलताबाद	८२१	९४३
४१	दिघिया (दीर्घिका)	माहुल	३४२	३३९

४. नामकरण

ग्रामों के नाम रखने की कई परिपाटिया प्राचीन काल से चली आती है। गावो के नाम पूर्वज, सस्थापक या किसी प्रभुतासम्पन्न व्यक्ति के नाम पर रक्खे जाते, कभी जिस् वृक्ष के पास गाव बसता, उस पर नाम रख दिया जाता। कभी वहा देखे जाते प्राणी के नाम पर भी नाम रखते और कितनी ही बार बसनेवाले लोगो की जाति, उपजाति या उपाधि के नामपर भी इनके उदाहरण हैं —

१. वनस्पति के नामपर—

१	अमहा	निजामाबाद	२८	१००
२	इमली-महुआ	माहुल	४४५	५१९
३	चिलबिली	सगडी	३०९	७६६
४	पर्कुलहा	माहुल	९९८	१३४
५	पकडी	निजामाबाद	६९२	१५०
६	पिपहा	सगडी	७६८	९५९
७.	पिपरही	,,	७६९	४१
८	बनकट	,,	१३८	८४३
९	बनकट (बासुपुर)	,,	१७०	७४१
१०.	बनकटा	,,	१३९	७८६
११	बेलवई	माहुल	१२३	७२६
१२.	महुआपुर	देवगांव	५३४	१,०६०
१३.	महुआरी	बेला-दौलताबाद	५३५	७१५
१४.	सेमरा (जंगी)	गोपालपुर	८४८	८३
१५	सेमरी (जमालपुर)	,,	७५५	१,२०९

२. प्राणी—

१६.	बघौरा (व्याघ्रपुर)	निजामाबाद	६१	३३०

१७.	भैंसा	सगड़ी	९३	०
१८.	बघवार	,,	९५	१,४८५
१९	बघेला	सगड़ी	९१	१०१
२०	भैंसहा	गोपालपुर	१८७	३४९
२१.	भैंसौरा	सगड़ी	१८८	२३२
२२.	सियरहा	,,	८८०	७३१
२३	सियरही	,,	८६८	७०७
२४	हुडरहा	महमदाबाद	३९८	९४

३. जाति—

२५.	अहिरौली	नत्थूपुर	१२	२८७
२६	अहीरपुर	,,	१३	५२३
२७	ओझौली	महमदाबाद	९६५	१,३३६
२८.	कथका (जाफरपुर)	माहुल	४६२	१९३
२९	केवट (पट्टी)	सगड़ी	५५०	०
३०	कैथी (शकरपुर)	देवगाव	४१९	१४६
३१	कैथौली	महमदाबाद	४५०	९१
३२.	,,	माहुल	४९४	२७५
३३	कोहरौली	,,	५७३	७५१
३४	कौशिक (गढ़-)	गोपालपुर	३९०	२३४
३५	चौबे (गढ़-)	,,	३८९	१७६
३६.	तुरकौली	,,	९३४	०
३७.	पटकौली	घोसी	३५७	११०
३८.	पडिता (जाफरपुर)	माहुल	४६३	१०९
३९.	पांडेपार	घोसी	३४१	२३५
४०	बरईपुर	अतरौलिया	९७	७७८
४१.	,,	माहुल	९८	२१०
४२.	,,	महमदाबाद	१०४	७१
४३.	बहेलियापुर	अतरौलिया	६८	२३४
४४.	भटौली	महमदाबाद	१६२	१७८
४५.	भरचकिया	माहुल	१४९	७६२
४६.	भरौली	महमदाबाद	१५७	०
४७.	मलकौली	नत्थूपुर	५२१	३९३
४८.	मिसरौलिया	माहुल	६८७	२१०

४९	मिसरौली	घोसी	५६४	८९४
५०.	मिसिरपुर	सगड़ी	६७२	३४९
५१	लोनियापुर	महमदाबाद	५७८	१९४
५२.	शेखूपुर (शेखू = जहागीर)	बेला-दौलताबाद	७७४	६५३
५३	सैदपुर	गोपालपुर	८२१	८७९
५४	,,	घोसी	७२५	१०५
५५	,,	माहुल	८९६	७४४

§ २. मुस्लिमकाल के गांव

नामों मे प्राक्-मुस्लिम (प्राकृत-अपभ्रश) काल और मुस्लिम-काल का भेद है। मुस्लिम कालमें केवल अरबी, फारसी, तुर्की से सम्बन्ध रखनेवाले नाम ही नही रखे गये, बल्कि उस समय बहुत से सस्कृत (तत्सम नामवाले रामपुर, माधवपुर जैसे) गाव भी रहे। इसमें शक नही, नामो में कुछ तद्भव से तत्सम बनाये गये और कुछ के तत्सम ही नामकरण हुए। शुद्ध मुसलमानी नामवाले गाव इस जिले मे कितने है, यह निम्न तालिका से मालूम होगा —

पर्गना	जनसख्या	आबादग्राम	मुस्लिमनाम (प्र०)	डिह	हजारी
१. तहसील आजमगढ़					
१ निजामाबाद	३,१३,२४८	७२२	२५१ (३५%)	१२	६१
२. तहसील महमदाबाद					
२ महमदाबाद	२,१६,५२१	४०४	१९९ (४२%)	६	४८
३ चिरैयाकोट	६४,२८२	२२४	११७ (५२%)	१	१०
४. करियात-मित्तू	१६,७५५	५०	१२ (२४%)	०	१
५ मऊ	७७,७३९	४३	२१ (५०%)	२	३
३. तहसील सगड़ी					
६ सगड़ी	२,३४,५१०	६१९	१३३ (२०%)	७	४४
७ गोपालपुर	७७,०३९	२१९	४३ (२०%)	२	१४
४. तहसील घोसी					
८. घोसी	२,३२,९२५	४७२	१२८ (२७%)	११	५२
९ नत्थूपुर	१,१२,१७०	२७७	७६ (३०%)	४	२०
५ तहसील फूलपुर					
१० कौड़िया	५७,७५४	१३६	२१ (१५%)	४	३८

११. अतरौलिया	१,१४,८००	३२६	५३ (१७%)	३	७
१२. माहुल	२,२२,३७५	५०४	१५३ (३०%)	,१०	३७
	६. तहसील लालगंज				
१३. देवगाँव	१,५७,२६५	३६३	८२ (२१%)	४	३८
१४ बेला-दौलताबाद	१,०५,५२६	२०५ (%)	३६ (१७%)	५	२३
१५. बेलहा-बाँस	५२,०११	१५१ (%)	२५ (१६%)	२	८
नगर-निगम (११)	१,०७,६६५				
	२१,०२,२८६	४७१८	१३११ (२७%)	७०	३७६

मुस्लिमकालीन नाम सबसे अधिक चिरैयाकोट पर्गनेमे है। वहाँके २२४ गाँवोमें से ११७ (५२ प्रतिशत) मुसल्मानी नामवाले हैं। उसके बाद दूसरा न०बर उसके पासके पर्गने मऊ का है, जहाँ ४३ मे २१ (५० प्रतिशत) मुसलमानी नाम हैं। जिलेमे सबसे कम मुसल्मानी नामवाले गाँवोका पर्गना कौडिया है, जहाँ वह १५ प्रतिशत ही है। मुस्लिम शासन और व्यक्तियोसे जिस पर्गनेका घनिष्ट सम्बन्ध रहा, वहाँ मुस्लिम नामो का आधिक्य होना सम्भव है।

अमुस्लिम नामोका यह मतलब नही है, कि यह सभी प्राक् - मुस्लिमकालीन हैं।

मुस्लिम कालमे बहुत से नाम इस्लाम या मुस्लिम-प्रभुओसे सम्बन्ध रखनेवाले रक्खे गये। उस समय अपने नामपर नाम रखकर प्रभुने समझा, कि अब मेरा नाम अमर हो गया। परन्तु, निजामाबाद जिलेके अबू सईदपुर (न० ४, जनसख्या ४४४) से क्या मालूम हो सकता है, कि अबूसईद कौन था। यही बात उस पर्गनेके आदमपुर (७,१) अहमदाबाद (१६,३९६), अलीपुर (२३–२५, ५६३–६०–५०८)के बारे मे भी है। अकबर का पडाव एक समय निजामाबादमें काफी दिनो तक रहा। वही उसका जन्मदिन बडी धूमधामसे मनाया गया। इस पर्गनेके कुछ नाम उसके या उसके अमीरोके नाम पर भी हो सकते है। लेकिन, जलालपुर (४११,१९९) जलालुद्दीन अकबरके नामसे बसा, यह मानना मुश्किल है। निम्न ग्राम-नामोमे अटकलपच्छ् भी बहुत कमको किसी ऐतिहासिक पुरुषके नामसे हम जोड सकते है। आजमपुर और आजमगढ मेहनगरके राजवंशके एक पुरुषके नामपर है।

बाँकीपुर	निजामाबाद	७१	४६९
बशीरपुर	,,	९९	२९६
बेगपुर	,,	१०३	२१६
बेगपुर (खालसा)	,,	१०४	३६८
बीबीपुर	,,	१३३	९१०
बीबीपुर	,,	१३४	९२
बीबीपुर	,,	१३४	९८

बीबीपुर (इब्राहीमपुर)	निजामाबाद	१३४	२६०
बुरहानपट्टी	,	१६३	३०४
दाऊदपुर		२६४	३६८
दाऊदपुर	,,	२६५	६०८
दोस्तपुर	,	२९०	१२१
एतमादपुर	,,	३०१	०
फैजुल्लापुर	,,	३०२	७३४
फ़रीदपुर	,,	३०५	५१६
फ़रीदाबाद	,,	३०६	१६९
फरीदपुर	,,	३०७	१४
फैजपुर	,,	३१२	८३
गौसपुर	,,	३३६	३६२
गौसपुर	,,	३३७	३८५
गयासपुर	,,	३३८	५५२
हाफिजपुर	,,	३५५	१,१६७
हैबतपुर	,,	३५६	२३७
हैदराबाद (छतवारा)	,,	३५७	१,६१३
हाजीपुर	,,	३५८	२३०
हमीदपुर	,,	३६०	६३
हमजापुर	,,	३६१	१४९
हसनपुर	,,	३७०	३८१
हसनपुर	,,	३७१	४९३
हिसामपुर	,	३७७	१४४
हिसामपुर (बड़ागाँव)	,,	३७८	७२१
हुसेनगंज	,,	३८०	७१४
हुसेनपुर	,,	३८१	१९३
इब्राहीमपुर	,,	३८३	५४३
इब्राहीमपुर	,,	३८४	२५६
इब्राहीमपुर	,,	३८५	२५८
एकरामपुर	,,	३८७	५४२
इसहाकपुर	,,	३९१	१५१
जहाँगीरपुर	,,	४०६	२८१
जहानियापुर	,,	४०७	२१६

जमालपुर	निज़ामाबाद	४१२	४२७
जमालपुर	,,	४१३	२२६
जमालपुर (माफ़ी)	,,	४१४	२६६
जमालपुर (बेलखरा)	,,	४१५	३०५
जमालपुर (बाजबहादुर)	,,	४१६	७५५
जमालपुर (मदसी)	,,	४१७	८४
जमालपुर (क़ाज़ी)	,,	४१८	८१७
कमालपुर	,,	४३४	५१५
करीमपुर	,,	४४१	१८४
करीमुद्दीनपुर	,,	४४२	६६६
काजी याकूबपुर	,,	४५६	४७
खलीफतपुर	,,	४६८	८१२
खलीलाबाद	,,	४७०	२६५
खालिसपुर	,,	४७२	२३८
खानकाह	,,	४७५	३६४
खानपुर	,,	४७६	४३६
ख्वाजापुर	,,	४९४	४७४
ख्वाजेपुर (सन्ना)	,,	४९५	३८३
ख्वाजेपुर (माधवपट्टी)	,,	४९६	४४९
कियामुद्दीन पट्टी	,,	५०७	१,१५९
महमूदपुर	,,	५६१	१४२
महमूदपुर	,,	५६२	२३९
मखदूमपुर	,,	५७२	५५२
मलिक हुसेनपुर	,,	५७७	२९४
मलिक शाहपुर	,,	५७८	३११
ममारखपुर (मुबारक०)	,,	२८०	६२०
मारूफपुर (हादी अली)	,,	५९१	८२
मारूफपुर (कासिम अली)	,,	५९२	१६
मस्जिदिया	,,	५९६	२८६
मसूदपट्टी (मसऊद०)	,,	५९७	३८९
मीरपुर	,,	६०८	४४९
मिर्जापुर	,,	६०९	१,००४
महमदपुर	,,	६१४	१,१०२

मुहज्जबपुर	निजामाबाद	६१६	२१२
मुहीउद्दीनपुर	"	६१८	२१२
मियाँ मखदूमसुर	"	६३०	६१४
मोलनापुर	"	६३४	७७४
नासिरपुर (खालसा)	"	६७०	१९४
नासिरुद्दीनपुर	"	६७१	७५८
निजामुद्दीनपुर	"	६८१	३८५
नूरुद्दीनपुर	"	६८४	१९३
परवेजाबाद	"	७०४	४२७
रफीपुर (गौरा)	"	७२७	७१
रफीपुर	"	७२८	८९
रसूलपुर (माफी)	"	७५७	२५९
रसूलपुर	"	७५९	२६३
रसूलपुर (बरवा)	"	७६०	७५७
रुकुनुद्दीनपुर	"	७७१	१७१
शहादतपुर	"	७७२	९७
सादुल्लापुर	"	७७४	११५
सैदपुर	"	७७८	३२१
सैफपुर	"	७८०	९७
सालारपुर	"	७८३	४१९
सालेहपुर	"	७८४	१३६
सलेमपुर	"	७८५	३४६
संजरपुर	"	७८६	१,६१६
शाहपुर	"	८१६	२५८
शकूरपुर	"	८१८	८५
शर्फुद्दीनपुर	"	८२५	४६१
शेखपूरा	"	८२७	१,००२
शेखूपुर	"	८२८	२४०
सिकन्दरपुर	"	८४२	४२७
सूफीपुर	"	८५९	४८२
सुल्तानपुर	"	८६२	३३५
वजीहुद्दीनपुर	"	९१०	११७
वजीरमालपुर	"	९१२	७७०

यह्यियापुर	निजामाबाद	६१३	२२०
ज़हीरपुर	„	६१४	१०५
ज़हीरुद्दीनपुर	„	६१५	१०५

जिलेमें निजामाबाद पर्गनेके ३५ सैकडे गाँवोका ही नाम मुसलमानी है। सबसे अधिक मुसलमानी नामवाले गाँव चिरैयाकोट पर्गनेमे हैं, अर्थात ५२ प्रतिशत। उसके बाद मऊ (५० प्रतिशत) फिर महमदाबाद (४२ प्रतिशत) है। तीनो पर्गन पास-पासमें हैं, जान पडता है, कि इस भूभागपर मुसलमानी जागीरें और प्रभाव अधिक रहा। चिरैयाकोटके २२४ गाँवोमें ११७ मुसलमानी नामवाले हैं, जो निम्न है —

अब्दुलअजीजचक	चिरैयाकोट	४	८०
अब्दुल्लापुर	„	६	२३१
अफजलपुर मस्तान	„	१२	१७५
अलाउद्दीनपुर	„	२०	६१
अलीनगर	„	२५	२८२
अलीपुर	„	२६	३६३
असलपुर	„	४९	५१४
औसतपुर	„	६०	२४५
अजीजाबाद	„	६३	१३४
बहाउद्दीनपट्टी	„	७४	७६
बहलोलपुर	„	७५	५६७
बैरमपुर	„	८०	१०१
बख्तावर चक	„	८४	४१
बीबीपुर (सुल्तानपुर)	„	११४	५६
दौलताबाद	„	२९१	१,३५०
फतेहपुर (हाफिजपुर)	„	३४७	१९०
फतेहपुर (करमी)	„	३४८	११३
गालिबपुर	„	३६१	१५६
हाफिजपुर	„	३७६	४६१
हसनबाँध	„	३९१	५६
हुसैनाबाद	„	३९९	१५८
इब्राहीम चक	„	४०१	१२४
कादीपुर	„	४४८	२६६
कमालुद्दीनपुर	„	४६०	४८

खानपुर	चिरैयाकोट	५०७	४२४
मोहीउद्दीनपुर	"	५८७	२८२
मीरपुर	"	६२९	२११
मिर्जापुर	"	६३३	२६३
मिर्जापुर (खास)	"	६३४	१२१
मुबारकपुर (बेनासीपुर)	"	६५४	१३६
मुस्तफाबाद	"	६६६	६८३
नासिरपुर	"	६८६	४२२
नासिरुद्दीनपुर	"	६८९	१३१
निजामपुर	"	७०८	१८५
निजामपुर (करमी)	"	७०९	४८
निजामपुर (सुल्तानीपुर)	"	७१०	१५७
कलिचपुर	"	७७१	१
काजीपुर	"	७७४	२४५
रसूलपुर	"	८१६	१७४
रसूलपुर	"	८१७	३१०
सलेमपुर (खुदावदपुर)	"	८४७	२२९
समाउद्दीनपुर	"	८४८	२६४
शहाबपुर	"	८७९	१५२
शाह् असलमचक	"	८८४	१३८
शाहपुर	"	८८५	४७७
सुल्तानीपुर	"	९२२	५७०
तायबपुर	"	९३५	७३
वलीनगर	"	८७७	८३
यूसुफाबाद	"	९८५	९७१
जफरपुर (अदई)	"	९८६	९८

मुसलमानी नामवाले गाँवोंमें अधिकतर व्यक्तिपरक हैं। लेकिन, उन व्यक्तियोंके बारेमे परिचय प्राप्त करना असम्भव - सा मालूम होता है। पुराने सर्वे (बन्दोबस्त) के कागजोंमें गाँवोंके बारेमें "वाजिबुल्-अर्ज" लिखे गये थे, जिनसे कभी-कभी उनके नामकरण आदिके सम्बन्ध में कुछ बातें मालूम हो सकती है। उनमें इतिहास, भूगोल आदिके सम्बन्धमें जो बातें है, उन्हें हर जिलेका पुस्तकाकार छपना चाहिए। गाँववालोंको अपने प्रथम पुरुष, या गाँवसे सम्बन्ध रखने वाले प्रधान पुरुषके बारेमें कितनी ही परम्पराएँ मालूम है। यदि उन्हें एकत्रित किया जाये, तो गाँवके इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। खानजहाँपुर (माहुल, ५५६,१,४७४) एक बड़ा गाँव है,

जो अकबरके समयसे पहलेका भी हो सकता है। अकबरके एकाधिक सेनापतियोंकी उपाधि "खानजहाँ" थी, एक खानजहाँको जौनपुरका इलाका जागीरमें मिला था। सम्भव है उसीके नाम पर इस गाँवका नाम पड़ा हो।

२. ग्रामों की प्राचीनता

दूसरे जिलोकी तरह इस जिलेके भी अधिकाश गाँव बहुत पुराने नही हैं। पर, हो सकता है, कि वह किसी उजडे गाँवकी जगहपर बसे हो। गाँवोके मालिक सदासे बडी जातवाले होते आये है। मुसलमान शासकोका भी पक्षपात बडी जातिवालोके साथ था। इसका एक कारण यह भी था, कि सम्पत्तिके स्वामी बड़ी जातवाले ही रहे। उनके साथ बन्दोबस्त किये गाँवकी मालगुजारी आसानीसे वसूल हो सकती थी। क्योकि उनके पास धन भी था और इज्जत भी। दोनोको खोनेके लिए वह तैयार नही हो सकते थे, जिस तरह अंग्रेज कम्पनीके राज्यमें स्थायी बन्दोबस्त करके इलाकेके इलाके ऐसे लोगोके सुपुर्द कर दिये गये, जिनसे मालगुजारी वसूल होनेमें आसानी थी। उसी तरह मुस्लिम और प्राग्-मुस्लिम कालमे भी बडी जातवाले विश्वसनीय मालूम होते थे, जिसके कारण उनके साथ यह पक्षपात था। बडी जातवाले कितनों ही जगहोपर एक पूर्वजकी सन्तानके रूपमे बसे हुए हैं। उनकी पीढ़ियाँ आसानीसे मालूम हो सकती हैं, और हर पीढ़ीके पच्चीस साल रखनेपर आदिम पूर्वजका काल जाना जा सकता है। मेरे पितृग्राम (कनैला) में १९५० ई० तक नौ पीढियाँ बीती, और मेरे मातृग्राम (पन्दहा) मे दस पीढियाँ, जिससे कनैलाका आरम्भ १७७५ ई० और पन्दहाका १७५० ई० से होता है। पर, कनैलामें निकली मौर्यकालीन ईंटे उसके इतिहासको आजसे २२ शताब्दी पूर्व ले जाती हे, और आरम्भिक मुस्लिम-कालके सम्बन्धकी कथाएँ बतलाती है, कि १३वी सदीमें भी वहाँ बस्ती थी, जबकि चूरी बनानेवाली जाति (चूडिहारे) सारे मुसलमान हो गये। आरम्भिक मुस्लिमकालीन परम्पराके वाहक कोई होने चाहिए, तभी वह नवागन्तुक ब्राह्मणोंके पास पहुँच सकती थी। इससे जान पडता है, कि कनैलाके अछूत और पिछडी जातवाले लोग उस समय भी इस गाँवमे मौजूद थे, जिस समय यहाँ के वर्तमान ब्राह्मण भूस्वामी नही आये थे। इस प्रकार ग्रामस्वामियोकी पीढ़ियोसे ग्रामके कालका निश्चय करना उचित नही है। बडी जातवाले हिन्दू भूमिपतियोका स्वामित्व गाँवोके ऊपर बराबर स्थापित रहा, लेकिन वह एक ही वशका नही। हम जानते है, कि इस भूभागपर कई बार विदेशियो और आक्रमणकारियोके जबर्दस्त आक्रमण होते रहे, जिनसे सबसे ज्यादा खतरा सम्पत्तिशाली बडी जातिवालोंको था, वह अनेक बार अपने पुराने गाँवोको छोड दूर भागे, फिर नयी भूमिकी तलाशमे किसी नयी जगहपर बसे। आजमगढ़मे हरएक ब्राह्मण-कुल अपनेको सरयूपार (सरवार) से आया बतलाता है। पर, हम जानते है, कि १२वी शताब्दीके मध्यमें गहडवार गोविन्दचन्दके समय भी जिस इलाकेमें आज सर्वरिया ब्राह्मणोकी प्रधानता है, वहाँ भारी सख्यामें ब्राह्मण बसे हुए भी थे, जो सभी सरयूपारसे नही आये थे। कुछ ग्रामवासियोके बारेमें निश्चित कहा जा सकता है, कि वह सरवारसे आये थे। हाल तक अपनी लड़कियोको सरयूपार व्याहनेका उनका आग्रह भी इस बातकी पुष्टि

करता है। राजपूतोंके तो अपने एक वंशके पर्गनेके पर्गने है। बेलहाबांस १५१ गाँवो और ५२००० आबादीका पर्गना है, जो सारा बैस राजपूतोका है। सभी गाँवोंमें नहीं, पर अधिकांशमें बैस बसे हैं। वह अपने उद्गम बैसवाड़ा (उन्नाव जिला) बतलाते हैं। एक पर्गनेके सैकड़ों गाँवोमें उनका फैलना बतलाता है, कि वह बहुत पहले वहाँ आकर बसे। तभी उनकी इतनी बृद्धि हुई। इसी तरह भूमिहारोके भी कितने ही इलाके हैं। प्रथम पूर्वजसे इनकी पीढियोकी गणनासे भी मूल गाँवके कालका निश्चय हो सकता है। पर, जैसा कि बतलाया, सम्पत्तिशाली वर्ग (बडी जाति) की स्थिति किसी भी राजनीतिक भयंकर आँधीमे डाँवाडोल हो जाती थी। सम्पत्तिहीन वर्ग (छोटी जाति) की स्थिति ऐसे कालमें ज्यादा सुरक्षित थी, क्योकि उनके पास लुटनेके लिए कुछ नहीं था। हाँ, वह जीविकाके लिए अपने गाँवोको पुराने गाँवको छोडकर कही भी जा सकते थे। उनमें अपने पुराने डिह (मूल ग्रामदेवता) के पूजनेकी प्रथा हाल तक मौजूद रही है, और देवता के डरके मारे दूरस भी आकर पूजा करते रहे। इन मूल-डिहोसे भी अन्धकाराच्छन्न इतिहासपर कुछ प्रकाश पड सकता है।

४. पर्गनावार ऐतिहासिक गांव

जिलेके प्राचीन गाँवों और उसके इतिहासके सम्बन्धमें हम संक्षेपमें बतला चुके। अच्छा होगा, यदि हरएक पर्गनेके पुराने गाँवोंका विवरण यहाँ दे दिया जाये। जिलेके सम्बन्धमें जिन गाँवोंको हम प्राचीन बतला चुके है, उनके प्राचीन होनेकी बहुत सम्भावना है। पर्गनावार दिये जाने वाले गाँवोके बारेमें वही बात नही कही जा सकती, तो भी अनुसन्धानकर्ताओके लिए इससे सहायता मिल सकती है।

१. आजमगढ तहसील

१. निजामाबाद पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी† नगर-ग्राम

नाम ग्राम या नगर	पर्गना नम्बर	जनसख्या (१९५१)
१ आजमगढ	५८	२६,४९८
२ सरायमीर	७९४	४,०४५
३ *निजामाबाद (कस्बा)	४४५	३,८११
४. *रानीपुर रजमों	७५५	३,३६८
५ जगदीशपुर	४०२	२,७७९

---

†हजार से अधिक जनसख्यावाले

*इस चिह्नवाले प्राक्-मुस्लिम-कालीन गाँव

६.	फरिहा (खास)	७१२	२,७४३
७.	*मैंगरावाँ (रायपुर)	५८४	२,४१०
८	*नदाँव (खास)	६६१	२,२१३
९	*सेठवल	८०९	२,१००
१०	*गँभीरबन	३१९	२,०९१
१२	*निऔज	५७८	२,०७४
१३	*मुड्डियार	६४४	१,८८३
१४	*गोठाँव	३५४	१,८७१
१५	सिकरोर (राजापुर)	७३५	१,६८८
१६	*बैराडिह	६६	१,६५५
१७	सजरपुर	७८६	१,६१६
१८	माधोपट्टी	५५६	१,६०९
१९	बिशाम (मिर्जापुर)	१४९	१,५९३
२०	कलन्दरपुर	४३२	१,५३१
२१	उकड़ौपुर	९००	१,५२५
२२	दयालपुर (खास)	२६७	१,४५०
२३	*घुसरी	३४१	१,४४१
२४	*सरवन	८०५	१,४३४
२५	ओडा	६८८	१,४३४
२६	खण्डवारी	४७४	१,४१०
२७	ककरहटा	४३१	१,३९८
२८	*छाँव	२४९	१,३५१
२९.	*रुदरी	७६९	१,३४५
३०	खजुरा (शाह)	८१५	१,३२९
३१	*आँवक	३५	१,३०४
३२	मझगाँवाँ	५७०	१,३१८
३३	आजमपुर	५७	१,२६९
३४	भूरा (मकबूलपुर)	१३२	१,२६३
३५	बद्दोपुर	६०	१,२३९
३६	बनवीरपुर	७७	१,२३१
३७	मनचोहा	५८२	१,२२७
३८	पल्हनी	६९३	१,२१९
३९.	कोटिला	५१९	१,२१५

४०	*दुर्बासा	२९७	१,२०९
४१.	मुजफ्फरपुर	६५३	१,१८३
४२.	छतवारा (हैदराबाद)	३५७	१,१६७
४३	तमौली	८७४	१,१६७
४४	हाफिजपुर	३५५	१,१६७
४५	कियामुद्दीन पट्टी	५०७	१,१५९
४६	जाफरपुर	४००	१,१५३
४७	*सोनवारा	८५४	१,१५३
४८	पच्छिम पट्टी	६८९	१,१३७
४९	धरनीपुर विसियान	२८५	१,१३९
५०	गौरा	३३३	१,११८
५१	बंशीपुर	८२	१,११३
५२.	महम्मदपुर	६१४	१,१०२
५३	मेहमौनी	६०४	१,०७७
५४	पूरब पट्टी	७२०	१,०७०
५५	*गधोई	३२०	१,०५७
५६	सुम्भी	८६३	१,०४५
५७..	अम्बरपुर	२७	१,०३८
५८.	महुआर	५६३	१,०३७
५९.	करनपुर	४३९	१,०१७
६०	बसरा (आइमा)	९१	१,००८
६१	मिर्जापुर	६०९	१,००४
६२	शेखपुर	८२७	१,००२
६३	*गौरडिह (आइमा)	३७१	२७६
६४	*गौरडिह (खालमा)	३३२	३४९

(ख) डिह

१	गौरडिह (आइमा)	३७१	२७६
२	गौरडिह (खालमा)	३३२	३४९
३	चमराडिह	२३६	५७७
४	देवताडिह	४५७	५३
५	देवराडिह	२७६	२१७
६..	परवारडिह	७०३	०

७. बैलनाडिह	१४३	६५१
८ बैराडिह	५६	१,६५८
९ मनिकाडिह	५८५	५३०
१० मोटाडिह	६२०	९
११ लाहीडिह	५४३	५९३
१२ शकरडिह	५२३	०
१३. मसुरियाडिह	८६९	३११
१४ हलुवाडिह	३५९	३८०
(ग) प्राचीन प्रत्यय		
आंव		
१५ गोठाँव	१५४	१,८७१
१६ छाँव	२४९	१,३५१
१७. नदाँव	६६१	२,२१३
आंवा		
१८ कमराँवा	४३६	८२५
और, औरा		
१९ अनौरा	३	७८३
२० अमौरा	२६	३२३
२१ बिजौरा	१३८	१००
२२ सिकरौर (राजपुर)	७३५	१,६८८
२३ सिकरौहा	९४५	७८३
औली		
२४ खरकौली	४८३	६५८
२५ खुटौली	४९२	९७३
२६ खोटोली	४८७	६१५
२७ थनौली	८८२	४१०
२८ नदौली	६६२	३५१
२९ बिसौली	१५०	७७७
बहा		
३० पन्दहा	६९५	३१९

[illegible]

३१	चिरवल	२५१	२५
३२	तुंडवल	८९७	३३
३३	सेठवल	८०९	२,१०

(२) प्राचीन से चीन्हते

१.	आँवक	३५	१,३०
२	ऊँचा गाँव	६०२	६१
३	कौड़िया	४५३	६७
४	गिलवारा	३४२	६६
५.	चन्दाभारी	२३७	६५
६.	बड़ा गाँव (हिसामपुर)	३७८	७२
७.	बैसर	६८	२०
८	सुरजनपुर	८७०	६६
९.	सुरही (बुजुर्ग)	८६६	७०
१०	सुरही (खुर्द)	८६७	५२

(३) नामकरण

(क) जाति पर

१	तिवारीपुर	८६२	१४
२	दुबौलिया	२६१	११
३.	दूबे चक	१८२	७
४	पठकौली	७०५	३६
५.	पठकौली	७०६	५१
६.	पाँडे पूरा	७२२	१३
७.	बमनौली (अदाई)	७३	७८
८.	बमनौली (माफी)	७४	२६
९	भरौली	१२०	१२
१०	भिलौली	१२६	१४
११	भिलौली	१२७	३३
१२	घोखपूरा	८२७	१,००
१३	घोखौलिया	८२६	२३

(ख) प्राणी पर			
१४	बघौरा (इनामपुर)	६१	३३०
	(३) बसही		
१५	बसही	९३	२०३
१६	बसही (होडीदसपुर)	९४	७९७
१७	बसही (जैरामजीपुर)	९५	८७२
(ग) वृन्दा वनस्पति पर			
१८	अमहा	२८	१००
१९	अमहा	९०	३४
२०	पकड़ी	६९२	१५०
२१.	बनगाँव	७८	२८५
२२	सेमरहा	८४७	७०६
(घ) जमीन			
२३	आसफपुर	९१६	०
२४	इदुई	२७	०
२५	ईसरपुर	९	४१८
२६	कटघर	२०	४९७
२७	पलिया	२	१७
२८	बारी	४१८	४७०
२९	महम्मदपुर	२१	१५७
३०	सिघारी	३	०
(ङ) सराय			
३१	सराय कासिम	२	२०
३२	सराय जगन्नाथ	१	१८८
३३	सराय ताजुद्दीन	९	१४५
३४	सराय दुराज	९	११
३५	सराय धानी	८	११०
३६.	सराय पोही	५	२६५
३७	सराय मऊ	७८७	१९८
३८	सराय मीर चककाजी	४	२०
३९	सराय मुदराज	१	४०३

४०.	सराय सागर	७	२६५
४१.	सराय सादी	६	२६२
४२	सराय सैफ	८	२०५
४३.	सराय हाजी	६०	४६

२. महमदाबाद तहसील

२ महमदाबाद पर्गना

(१) प्राचीन गाँव

(क) हजारी गाँव

१	मुबारकपुर	६५१	१,३३८
२	वलीदपुर	६७६	६,१६६
३	*अमिलो	३७	५,७८५
४	महम्मदाबाद	६४१	५,४४२
५	*कामा	४५२	२,२६४
६	कामा (खुर्द)	४५३	१,०३०
७	*समेवा	८४६	३,०६२
८	खैराबाद	४६४	२,७४३
९	ताजोपुर	६३७	२,४०४
१०	*रेकवारडिह	८२३	२,०७६
११	परदहा	७४३	१,८६४
१२	फतेहपुर	३४६	१,८४०
१३	*इटौरा	४१२	१,८२६
१४	*बम्हौर	६१	१,७७०
१५	शाहगढ़	८८३	१,७४८
१६.	*सठियाँव	८६८	१,७३६
१७	मुसवाँ	१०६	१,७३६
१८.	गुजारपुर	३७३	१,७०६
१९.	*मालो	६०४	१,६६६
२०.	मोहब्बतपुर	६३६	१,६२६
२१	इब्राहीमपुर	४०२	१,५५१

*इस चिह्नवाले प्रायः मुस्लिम कालीन गाँव

२२. रनवीरपुर	८०६	१,५१
२३. महुवाँ	५६४	१,४५
२४ कमालपुर	४५७	१,३७
२५ *डुमराव	३३१	१,३५
२६. *ओझौली	६६५	१,३३
२७. सलहाबाद	८४४	१,२६
२८ *भडेर	१४२	१,२६
२६. *कहनौर	४४६	१,२७
३०. हरपुर	३८६	१,२५
३१ रानीपुर	८०८	१,२४
३२ बडागाँव	१०१	१,१६
३३ खुरहट	५२६	१,१८
३४ खानपुर	५०५	१,१८
३५ *अँवाँव	६१	१,१६
३६ रैनी	७६०	१,१३
३७ बारा	१०३	१,१२
३८ रकौली	७६८	१,१०
३६. करहन	४६८	१,१०
४० बरहदपुर	११८	१,०८
४१. गोकुलपुरा	३६७	१,०८
४२. धरमसीपुर	३१६	१,०८
४३. *सीही	६००	१,०७
४४ अमारी	२६	१,०५
४५ शमशाबाद	८८८	१,०४
४६ सुरहुरपुर	६३१	१,०४
४७. *खिरिया	५१६	१,०२
४८. *ओन्हाइच	७२०	१,०१
४६ लोहटा	५७५	१,००

(ख) डिह

१ अतरडीहा	५६	४६
२. अमिलियाडिह	३४	३६
३ गौराडिह	३७१	५

४. चककुआरडीह	२३५	०
५. चेरनीडीह	२६७	२८८
६. डीहा	३२१	३६४
७. बरडीहा (गेरुआ)	११२	२५१
८. रेकवारडिह	८२३	२,०७९
९. लखनुवाडिह	५६६	७१
(ग) प्राचीन प्रत्यय अवाँ		
१०. तिलसवाँ	९५७	६४८
११. सोनसवाँ	११९	४६४
१२. अवाँव	६१	१,१६७
१३ डुमराँव	३३१	१,३५८
१४. भेलसाँव	१७४	५१
१५. नराँव	६८२	६५९
१६. सठियाँव	८६८	१,७३९
औरु		
१७. असौर	५०	५४९
१८. कहनौर	४४९	१,२७२
१९. कुसमौर	५५६	९०७
२०. बम्हौर	९१	१,७७०
औरा		
२१. इटौरा (चौबेपुर)	४१२	१,८२६
२२. इटौरा	४११	६९०
२३. सोनौरा	९१४	२११
औली		
२४. दतौली	२८७	५७९
२५. रकौली	७९८	१,१०४
वहा		
२६. परदहा	७४३	१,८६४
वल		
२७. सोहवल	९११	३९०
संड		
२८. करासण्ड	४६७	२११

२९.	कुकुरसण्डा	५५०	२७६
३०	बरसण्ड	१२४	७

हट

३१	अमरहट	३८	४४४
३२	खुरहट	५२९	१,१८३

(२) प्राचीन से बोलते

१	अरैला	४३	४५६
२.	असौना	५२	७८१
३	असनी	५४	५९३
४	कोठिया	५४४	७३२
५	जमुरी	४३१	८८९
६.	देवलास (देवकली-)	२९९	५०४
७	नागपुर	६७५	६१६
९.	पँडरी	७२६	९२९
१०	परगार	७४५	९०९
११	बकरी	८७	९१२
१२	बडागाँव	१०१	१,१९४
१३	बन्दी	९५	९६८
१४	बम्नी	९८	७०१
१५	भडकोल	१४४	९४९
१६.	मनसरा (बुजुर्ग)	६१६	७८७
१७	मनसरा (खुर्द)	८१८	११७
१८	मनसरी	६१९	५९९
१९	महासो	५८५	५८४

(३) नामकरण

(क) जाति

२०	ओझोली	९६५	१,३३६
२१	कैथौली	४५०	९१
२२.	बरईपुर	१०४	७१
२३	भटौली	१९२	१७८
२४	भरौली	१५७	०
२५	लोनियापुर	५७८	१९४

(ख) चक

२६. चक अब्दुर्रजाक	२०९	२४३
२७. चक अली	२११	०
२८. चक औंधी	२१०	१०५
२९ चक गरीबुल्ला	२२६	०
३० चक देवसीपुर	२२३	१६
३१ चक देवा	२१३	१३७
३२ चक फिजाजाबाद	२२५	०
३३ चक बरहोझी	२१७	३३०
३४ चक बस्ती	२१८	८२
३५. चक बहाउद्दीनपुर	२१६	०
३६ चक भदवार	२१९	५५
३७. चक भीखम	२२०	२९१
३८ चक भोपत	२२१	७३९
३९ चक बारा	२५४	१०४

३. चिरैयाकोट पर्गना

(१) प्राचीन गाव

(क) हजारी गांव

१. मांडे	६१०	१,०१५
२ सरसमा	८६७	१,०९८
३ बरहलगञ्ज	११९	१,१२०
४ मुजही	१८४	१,१५५
५. सरौदा	८६६	१,२००
६. लपसीपुर	५७०	१,२०१
७. दौलताबाद	२९१	१,३५०
८. जिगरसण्डी	४३८	१,९१०
९. धरवारा (खास)	३१७	२,४६७
१०. बरहतिर जमादीनापुर	११५	३,५७४

(ख) डिह

११ बबुराव्यौहार डिह	७०	४००

(ग) प्राचीन प्रत्यय

खंड

१२. अविलासण्ड	७	२५८

१३.	गुरसण्ड	३७४	२२२
(२)	**प्राचीन से वीखतें**		
१४.	कमथरी (नूरपुर)	४६२	७२६
१५	करउत	४७७	७४३
१६	करमी	४७३	८७८
१७	कुजी	५५१	६६६
१८	चिरैयाकोट	२७१	५७५
१९	टिसौरा (माफी)	९५९	९१९
२०	देवखरी	३०३	६२७
२१	पुनर्जी	७६५	५३८
२२	बजहा	८३	६६३
२३	बोहना	२४	८३७
२४	मुस्तफ़ाबाद	६६६	६८३
२५	यूसुफाबाद	९८५	९७१
२६	सिरसा	९०७	८२३
(३)	**नामकरण**		
(क)	**जाति**		
१	चौबेपुर	२६८	२७४
२	मिसरौली	६३६	८६
(ख)	**वृक्ष**		
३.	इमिलिया	४०५	६७

४ करियातमित्तू पर्गना

(१)	**प्राचीन गांव**		
(क)	**हजारी गाव**		
१	मित्तूपुर	६३८	१,९२३
(ख)	**प्राचीन प्रत्यय**		
	औरा		
२	बडौरा (बुजुर्ग)	१०७	९२०
३	बडौरा (खुर्द)	१०८	२९१
	वही		
४.	अमदही	३१	५९९

	वल		
५.	सुदवल	५२७	३९९
	वारा		
६	गोळवारा	३६६	८०३
	हट		
७.	कर्नहट (कर्नैला)	४६४	५८३
(२)	**प्राचीन से दीखते**		
८.	कुसरना	५५४	५५२
९	किशुनपुर	५३७	७२१
१०	कोलह्यो (खुर्द)	५४०	९२०
११	टारी	९४८	५१३
१२.	नरहया (बनपुर)	६८४	४८१
१३	बसगित	१२८	६९५
१४	रामपुर	८००	८०२
१५	सेवटा	८७७	५५२

५ मऊ पर्गना

(१)	**प्राचीन गांव**		
(क)	**हजारी गांव**		
१.	मऊ	६२७	३४,४८५
२.	सरवा	८७०	२,५४७
३.	अचार	९	१,३०६
१.	**डिह—**		
४.	आदाडिह	१०	६६७
५	मूसरडिह	६६४	३४३
(ख)	**प्राचीन प्रत्यय**		
	वां		
६.	सरवा	८'७०	२,५४७
	सरा		
७	मदेसरा	१४५	८७६
(३)	**प्राचीन से दीखते**		
८	अचार	९	१,३०६
९.	इदरपुर	४०७	५२१

१०.	नासोपुर	६६२	८६५
११	मीटी	१८२	६८३
१२	हकीकतपुर	३८६	६६६

३ सगडी तहसील

६ सगड़ी पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१	करखिया (अराजीदियरा)	३३	३,३५७
२	दियरा (खास राजा)	३४७	३,०५४
३	जुलहापुर	५२३	२,७५६
४.	अजमतगढ	८४	२,७६२
५	चादपट्टी	२८१	२,५३२
६	हरखोरी (जमीन)	६६०	२,३६३
७	बिलरियागज	२२६	२,३०४
८	जोकहर	५००	२,२७०
६	हरैया	४३४	२,१६२
१०	जियनपुर	४६४	२,०१५
११	हाजीपुर	४३०	१,६६३
१२	महुला	६३२	१,६६१
१३	हैदराबाद	४५३	१,६४५
१४.	रोशनगज	८०६	१,६११
१५	जैराजपुर	४७१	१,७१५
१६	गगीपुर	३६६	१,६३४
१७.	मधुआपुर	६१५	१,६२१
१८.	बरडीहा	१५२	१,४८७
१६.	बघवार	६५	१,४८५
२०	बिदवल	२२७	१,४८४
२१.	रौनापुर	८०४	१,४७१
२२	छपरा (सुल्तानपुर)	२६६	१,४४०
२३	नैनीजार (अराजी दियरा)	४०	१,४३४
२४.	करखिया (रुस्तमसराय)	५३३	१,४२८

२५.	अजगरा (पच्छिमी, अराजी नौबरार)	५६	१,३४६
२६	महम्मदपुर (समदपुर)	६८२	१,३००
२७.	बरोही	१६४	१,२५१
२८.	अजमसरीह	३०	१,२४८
२६	बेरमन (खास)	१७६	१,२४१
३०	मऊ (कुतुबपुर)	६६१	१,२२६
३१	करमैनी	५३४	१,२१६
३२	उरडीहा	६४४	१,१८२
३३	भगतपुर	१८३	१,१४६
३४	कघरापुर	५१६	१,१२१
३५	लाटघाट	६०६	१,१०३
३६	बनकटिया (बडिहार)	१४०	१,१०३
३७	भरौली	१६४	१,०७६
३८	अजगरा (पश्चिमी)	८	१,०५५
३६	अजगरा (पूर्वी)	६	५८६
४०	खालिसपुर	५५३	१,०४२
४१	मसुरियापुर	६५८	१,०३१
४२	खानपुर (भगतपट्टी)	५५६	१,०२२
४३	पटिलागौसपुर	७५६	१,०००

(ख) डिह

१	ऊचाडिह सलेमपुर	६४३	३६१
२	डीहा	३६८	७७
३	मनिका डिह	६४६	५२६
४	शाहडिह	८५८	५७५
५.	सोनारडिह	८६०	

(ग) प्राचीन प्रत्यय

औखर

६.	बरोखर	१६६	६६

और

७	गुलौर	४२३	४८८
८	बच्छौर (खास)	८६	२३६
६	बच्छौर (खुर्द)	८७	४६७

औरा

१०.	गँडौरा मझौरा	३९९	५०२
११	नदौरा	६९६	१४५

औली

१२	खोजौली (नैनीजोर)	५७६	७३९
१३	खोजौली (नकीब)	५७७	१६७
१४	बरौली	१४९	१६९
१५	बरौली	१५०	२२४
१६	महरौली	६२७	१९४
१७	महरौली	६२८	१४३

वल

१८	गढ़वल	४०२	६८८

सड

१९	धरसड	३६१	३५९
२०	भैंसड	१८६	५९८

सर

२१	जमसर	४८३	५९७

(२) प्राचीन से दीखते

२२.	अमोरी (नरायनपुर)	२७	९२५
२३	औस्ती	८३	५१४
२४	कखबर	५२२	७७५
२५.	कखबर	५२३	९८
२६	कपरगढ	५२५	१९५
२७	कपसा	५२६	७३१
२८	तरौका	९११	७८८
२९	दिघवनिया (काजी)	३६६	४७६
३०	दिघवनिया (मझना)	३६६	५७५
३१.	बरहन (खास)	७०४	५१४
३२.	पछखोरा	७२४	८२०
३३	पंडरकुंडा	७३३	८३८
३४	बनावे	१३३	९५५
३५.	बरजी	१५९	८३४

३६. बलिया (कल्यानपुर)	१२२	६६१
३७ बैजबारी	११०	६४६
३८. भलवई	१६१	७६२
३६ भुअना (बुजुर्ग)	२००	७४८
४०. भुअना (खुर्द)	२०१	२५२
४१. महावतगढ़	६२१	६७१
४२ मिरियारेंढा	६६८	८८७
४३ सगरी (कस्बा)	५३६	६६१
४४ सिवान	८७६	६७१
४५ लारु	६०८	६८२

(३) नामकरण

(क) जाति

१ केवट पट्टी	५५०	५५०
२ मिसिरपुर	६७१	०
३ मिसिरपुर	६७२	३४६
४. सैदौली (गरथौली बुरहानपुर)	८२०	७५७

(ख) प्राणी

५ सियरहा	८८०	७३१
६. सियरही	८८१	०
७. सियरही (चक शाहदौलत)	८६८	७०७

(ग) वृक्ष-वनस्पति

८. चिलबिली (दान)	३०६	७६६
६. पिपरहा	७६८	६५६
१०. पिपरही	७६६	४१
११ बनकट	१३८	८४३
१२ बनकटा	१३६	७८६
१३. बनकट (बासूपुर–)	१७०	७४१

७. गोपालपुर परगना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१. दियरा नोबरार (जदीद किता)	१	३,१४०

२.	दीवानपुर (जदीद)	३४३	३,०७६
३.	अमैनी (अराजी)	३४	२,३२६
४	विशुनपुर (महाराजगंज)	२३१	१,८७३
५	जमालपुर	४८२	१,७५४
६	चादपुर (अखैचंद)	२८३	१,५८५
७	बुढवे (हिशामुद्दीनपुर)	२३५	१,५६६
८	कपतानगज	५२७	१,४१९
९	दीवानपुर (कदीम)	३५०	१,४११
१०	गोपालपुर (मुरारपुर)	४१५	१,३४३
११	दीवानपुर (हरखपुरा)	३४०	१,२६६
१२	चिउटाहर (सेरपट्टी)	२९५	१,१८६
१३	कुडही	५९३	१,००१
१४	कुभेवाट	५९२	१,०८१
(ख)	डिह		
१५	खेरीहिड	५७२	५७२
१६.	बरहरडिह	१५५	३६०
(ग)	प्राचीन प्रत्यय		
सर			
१७.	लखेसर	६०३	२०२
(२)	प्राचीन से दीखते		
१८	पैकौली	७२९	९९३
१९	बिछवापुर	२२०	७०७
२०	भटनी (मुडेलपुर)	१९८	६४५
२१	भिलमपुर	२०९	८१५
२२	मौरिया	६५५	८५१
२३	रघुनाथपुर	७७९	९६९
२४	सिघरा (महाजी)	६२६	७७२
२५	सिघवारा	८७५	६२३
२६	हरखपुर (खास)	४३५	९३१
(३)	नामकरण		
(क)	जाति		
१	कौशिकगढ	३९०	२३४

२. चौबेगढ़	३८९	१७६
३. तुर्कोली	६३४	०
(ख) वृक्ष		
४. सेमरा (जगी)	२४८	८३
५ सेमरी	८४९	१०९

४. घोसी तहसील

८ घोसी पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१ कोपागज (कस्बा)	४५६	८,२०३
२ अदरी	८	३,७३९
३. गोठा	२९६	३,७२१
४ दोहरीघाट	२५८	३,५४६
५. बडागाव	६६	३,४०९
६ ७. अमिला	२२, २३ (कस्वा)	३,३४६
८ कुरथी (जाफरपुर)	४७१	३,०८३
९ सूरजपुर	८८६	२,६७२
१०. शाहरोज	७६१	२,६०७
११ मावापुर (शमशपुर)	५०२	२,४५१
१२ अमिला	२३	२,२७७
१३ मोलनापुर	५८१	२,२००
१४ पकडी (बुजुर्ग)	६३४	२,१२५
१५ पकडी (खुर्द)	६३५	६२८
१६ इंदौरा	३४५	२,००७
१७ कसेलाबेला	४१०	१,९७७
१८ मीरपुर (रहीमाबाद)	५५८	१,९४३
१९ जमालपुर (मिर्जापुर)	३६४	१,९२१
२० कसरा	४११	१,९१३
२१ पीवाताल	६८१	१,८८६
२२ रसूलपुर	७०१	१,८५४
२३ हमीदपुर	३१२	१,८४६

२४. फतेहपुर	२७१	१,८०१
२५. कठिहारी (बुजुर्ग)	४२०	१,७४०
२६. रामपुर	६६८	१,७२२
२७ कुरगा	४५८	१,६७८
२८ कोइरियापार	४५६	१,६७५
२६. नदवा (खास)	६००	१,६६३
३० धनौली (रामपुर)	२४३	१,६५८
३१ पिडउथसिहपुर	६७३	१,६०१
३२ धवरियासाठ	२५२	१,५६८
३३ लखनी मुबारकपुर	४८६	१,५७६
३४ भेलउरचगरी	११८	१,५७४
३५ महमदाबाद (सिपाह)	५७१	१,४५६
३६ अलीनगर	१८	१,४४४
३७ सियरही (बरजाला)	७६६	१,३४५
३८ मुगमास	५६५	१,३३६
३६ करीमुद्दीनपुर	४०८	१,३२२
४० कसबा खास	६८५	१,२६८
४१ बदराव	३८	१,२५६
४२ दगौली	२२६	१,२५८
४३ उसरी (खुर्द)	८२६	१,२४६
४४ उसरी (बुजुर्ग)	४२४	६२८
४५ महम्मदपुर (हसनपुर)	५८३	१,२४६
४६. सेमरी (जमालपुर)	७५५	१,२०६
४७ अपछरिया (हरपारा)	१	१,२०७
४८. घघाचौर	२४५	१,२०१
४६ अतरसवा	३१	१,१७६
५० पिठवल	६७४	१,१७०
५१ चक ओठ	१४५	१,१६४
५२. बेलौली (सोनवरसा)	८८	१,१६३
५३. जैसिहपुर	३५७	१,१५२
५४ रेथाव	७१७	१,११७
५५. पिसुई (अहलासपुर)	६७८	१,०६६
५६. कोपागज	४५७	१,०६६

५७. पूनापार	६८२	१,०४७
५८. फैजुल्लापुर	२६५	१,०११
५९. भटमिला	११०	१,०००
(ख) डिह		
६०. छमिलिया डिह	३४२	०
६१. ककूडिह	३९८	३१७
६२ कपरियाडिह	४००	८१८
६३. गौरीडिह	२८३	५५०
६४. जमडिह	३६५	६८१
६५. जमीरा चौराडिह	३६७	३५३
६६ भेलुईडिह	११९	९६
६७. रेवडीडिह	७१४	३०
६८. रेवडीडिह	७१५	४१९
६९. सोनाडिह	७५०	८२८
७० सोमारीडिह	७७९	४८८
(ग) प्राचीन प्रत्यय		
आंव		
७१. तरियाव	७९३	५५४
आसों		
७२. अरवासो	२८	६९२
औरा		
७३. इटौरा (डोरीपुर)	३४९	८५१
वल		
७४. घोघवाल (रामपुर)	२९०	२८०
७५ नदवल	६०५	४६९
सर		
७६. सोडसर	७८४	६९९
सरा		
७७. गोडसरा	३०१	५६०
हर		
७८. सोनहर	७८५	८३४
औली		
७९. कोरौली	४६०	८४७

८०. गरथौली	२७६	४८२
८१. घरौली	२५१	८५३
८२. बरौली (लिलारी)	४६४	८५०
८३. रघौली	७१२	६७५
८४. हरघौली	३१६	६१४

(२) प्राचीन से दीखते

८५. स्कौना	२६४	६७८
८६ कच्छी (कला)	३७६	८२८
८७ कच्छी (खुर्द)	३८०	२४
८८ कल्यानपुर	३८८	७०६
८९ कारीसरु	४०६	८२८
९० गोफा	२६८	६५३
९१ गौहरपूर	२८१	८११
९२ चडीदेई	२११	४
९३ चौगानगाह	२०३	१३६
९४ जहानियापुर	३५५	८४५
९५ डोहिया देलिया	२५६	६५५
९६ देवकली (बिशुनपुर)	२३७	७८९
९७ नगरीपार	६०२	९०१
९८ पउस	६६६	५४५
९९ पटनई (खुर्द)	६६०	१११
१०० बुजुर्ग	६५९	८४३
१०१ पटना	६५८	६४
१०२. परसरा (खुर्द)	६६८	१११
१०३ परसरा (बुजुर्ग)	६६७	८४३
१०४ पारा	६४३	९४७
१०५ पौनी	६६५	६०२
१०६ बनफा	५५	५९७
१०७ बारा	६५	६५१
१०८. बुढवेर	१३९	७२४
१०९ बेला (सुल्तातमपुर)	८६	८३७
११० भगवानपुर	९१	८०६

१११ मदसा (मानूपुर)	८६	८५७
११२. भरतिया (कादीपुर)	१०७	७०५
११३. भिखारीपुर	१२३	६४२
११४. मीरा	१२४	६३७
११५ मझवारी	५३२	८४६
११६ मौदीदुल्लाह	५२४	६१४
११७ मौरबोझ	५४३	६६८
११८. रह्सा	६६०	६८६
११९ रसडी	७००	६४०
१२० रोडा (भगवानपुर)	७१३	७१६
१२१ सारन (गुवा महादेवपुर)	७४३	६५५
१२२ हाजीपुर	३११	८४४
(३) नामकरण		
(क) जाति		
१. खत्रीपुर	४४०	४८२
२. पटकौली	६५७	११०
३. पाडेपार	६४१	२३५
४. मिसरौली	५६४	८६४
(ख) प्राणी		
५. भैंसा (खरग)	६३	८१२
(ग) सराय		
६ सराय गनेश	७३३	७३२
७. सराय बड़े सादी	७३६	८४५

९. नत्थूपुर पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१ दुवारी	२६२	७,७६६
२. बरहगावा (सुल्तानपुर)	७८८	४,५४३
३ धरमपुर (बिशुनपुर)	२४६	३,६३३
४ रामपुर (उर्फ रसलपुर आलमपुर)	७०४	२,५५०
५ मरियादपुर	५३७	२,४३७

६. लखनौर	४८५	२,०२६
७. कठघरा (नोकर)	४१८	१,६१०
८. चकमामू-दर्गाह	१६८	१,५१०
६. मदांव (फतेहपुर)	२७०	१,४६६
१० सिकरीकोल	७७४	१,४७३
११ सिपाह (बरहिमाबाद)	७७६	१,३७६
१२ गजियापुर	२८६	१,२८१
१३. सिसवा	७७७	१,२७४
१४. तराव (कठ-)	४१६	१,२६८
१५ मीरपुर (दरियाबाद)	५५५	१,२४६
१६. मूसाडोही	५६०	१,२१६
१७. निधियाव (बस्ती वारसी-)	८३	१,१७१
१८. ढिलई (फीरोजपुर)	२५३	१,१४५
१६ नेमडाड	६१४	१,११४
२० नरुल्लापुर	६२५	१,०८०
२१ परसिया (जैरामगिर)	६५१	१,०३३
२२. परसरामपुर	६५३	१,०२८

(ख) डिह

२३. ककराडिह	४२३	३१६
२४ तराईडिह	८०३	३४०
२५ बावनडिह	५२	३२१
२६. बैरियाडिह	४८	२०२

(ग) प्राचीन प्रत्यय

आव—

२७. पटराव (ढढवाल-)	२५६	६६६
२८. हरियाव	३२४	३२५

ऊर—

२६ नानूर	६२४	५६८

और—

३०. भेलौर	११७	२८३
३१. भेलौर (अम्मा)	२४	३५७

औली—

३२.	उपरौली (पट्टी)	६६४	०
३३	उफरौली	८२२	७०३
३४	कमरौली	३९४	२९४
३५	जजौली	३५९	८४१
३६	बेलौली (भोजपुर)	८७	७३८

(२) प्राचीन से बोलते—

३७.	अकोल्ही (मुबारकपुर)	१५	८६२
३८.	कुडा (शरीफपुर)	४६६	८०२
३९	कुअरपुर	४६७	६९०
४०	गुरम्हा	३०५	८४३
४१	गोपालपुर (नेवादा)	६१७	८१६
४२	छपरा (भगी)	२०५	३०८
४३	तिघरा	८१०	७१८
४४	दरौंदा (माधोपुर)	२२८	७३९
४५	नत्थूपुर	६११	५५८
४६	मटियार	१०९	८२९
४७	भिरकुर (सुल्तानपुर)	१२२	६४६
४८	मनियर (मूडाडोड-)	५८८	५१६
४९	महुई	५१०	७१७
५०	लौआ साठ	४९१	९७१
५१.	सिघा (अहिलासपुर)	७७०	९७१
५२	सुआह	७९२	६०४

(३) ४ नामकरण

(क) जाति—

१	अहरौली (खरवलपुर)	१२	२८७
२.	अहीरपुर	१३	५२३
३	मलकौली	५२१	३९३

(ख) वृक्ष—

४.	बनपोखरा	६३	७२४

५ फूलपुर तहसील

१०. कौड़िया पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१.	शभूपुर	६४१	१,६६२
२	टहर (किशुनदेवपुर)	६६२	१,६१४
३.	लदौरा	६१५	१,७४६
४	गहजी	३७६	१,३७०
५	वाजिदपुर	११३	१,३६७
६	मोखालिसपुर	७०१	१,३१४
७	कौड़िया	५३४	१,२२७
८	पीपर	८०२	१,२२४
९	फुसुम्हरा	५६२	१,१६२
१०	लहरपार	५६८	१,१७०
(ख)	**डिह**		
११	बिकरमडिह	१८५	२३८
(ग)	**प्राचीन प्रत्यय—**		
१२	गगउर	३८६	१११
आंव			
१३	अराव (गुलजार)	३८	६४७
१४	बेराव	१२८	२८६
औली			
१५.	धरौली	३३४	२८८
१६	भरौली	१४७	७२१
हटा			
१७.	देवहटा	३२१	४३८
(२)	**प्राचीन से बीसले**		
१८	अलउआ	२०	६१८
१९	उसर कुढवा	१,०२०	९१२
२०.	ककरही	४९७	८९५
२१	कल्यानपुर	५०२	७३४

२२. छितौना	२८०	५१६
२३. डिंगरपुर	३४६	६५१
२४. डिंगरपुर (करेमा-)	५१६	८८१
२५ टोडरी	१,०११	६१६
२६. देवरिया	३२४	६७५
२७. नरफोरा	७२८	६६३
२८. पासीपुर (उर्फ रसूलपुर)	८७०	८७७
२९. बुरहानपुर	२०१	७५३
३०. बेलारी (लखनपुर)	१२०	७०७
३१. भदेवरा	१३१	५७६
३२. मठगोविंद	६७३	५८०
३३. समेदी	९०४	८३०
३४. हुँसेपुर (रामजीवन)	४३९	७७९

११. अतरौलिया पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१. अतरौलिया	५८	२,५०८
२. लोहरा	६१८	२,५०१
३. अतरैठ	५५	१,८७७
४. भरौली	१४८	१,८६४
५. नरियाव	७२६	१,७३३
६. गौरा (हरदो)	३९१	१,४६०
७. भीलमपुर (छपरा)	१७०	१,४४९
८. सरया (रतनवे)	९१८	१,२७४
९. फतेहपुर	३६४	१,१८१
१०. पछारी (जमीन)	७४९	१,१७५
११. भेदौरा (गजधर पट्टी)	३७९	१,१६६
१२. पकरडीहा	७५८	१,१२७
१३. जलालपुर	४७२	१,१२७
१४. अभैपुर	२	१,०९१
१५. सिरवा	९३०	१,०८७
१६. बढ़या	१०१	१,०८२

१७ रतुआपार	८७५	१,०७६
१८. ईसरपुरपवनी	४५४	१,०५६
१६ अमदी	२६	१,०१४
(ख) डिह		
२० खीरूडीहा	५६३	५१७
२१. डेहुला (सरकार)	३१६	२३७
२२ निबुआ डिह	७३६	४०१
२३. पखऊडीह	७६०	१५६
२४ पखऊडीह (उर्फ नदना)	७६१	१६१
२५ बेमनडिह (गोसाई)	१२४	२६७
२६ बेमनडिह (किशुनदेवपट्टी)	१२५	३८३
२७ लाखनडीह	६०१	६१२
२८ सहना डिह	४३२	४११
(ग) प्राचीन प्रत्यय		
आंव		
२६ दसांव	३०७	३६६
३० दसांव (डटौरा-)	४४६	२८६
३१ दसांव (जमीन)	१,०३२	७४७
३२ अहरौला	११	६६
३३ भटौली	१५६	३३७
३४ अतरौलिया	५७	५१६
३५. सेखौलिया	६४७	१८५
दहा		
३६. नगदहा	७१८	२६३
सरा		
३७. करसरा	५२०	७३६
सरी		
३८. बेलसरी	१२१	१२३
(२) प्राचीन से दीखते		
३६. अनतपुर	३३	३२७
४० अमारी	२४	८४६
४१ कोतवालीपुर	५८२	६४६

४२.	खजुरी (धिरंजपट्टी)	५४५	७६०
४३.	गुरथनी	४१०	५३५
४४	गौरी	३६२	८७४
४५.	बासगाव (उपटपार-)	१,०१६	६८८
४६.	बिशुनपुर	१६६	६८७
४७.	वैसपुर	१,०२१	७०८
४८.	भगतपुर	१३५	८८६
४९.	हिशामुद्दीन पुर	४३८	८२४

(३) नामकरण

(क) जाति

५०	जोगीपुर (बहेगवा-)	६६	
५१	बरईपुर	६७	७७८
५२.	बहेलियापुर	६८	२३४
५३	सेखपूरा	६५१	२७४

(ख) वृक्ष

५४	पकडी	७६३	६८४
५५	बहेरा (कोठी)	७३	४२६
५६	बहेरा (खुर्द)	७२	०
५७	बहेरा (बुजुर्ग)	७१	३७२
५८	बेलारी (गजेधर पट्टी)	११६	६२१

१२ माहुल पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गाव

१	फूलपुर	७६७	२,८३२
२.	भादो	१३३	२,०६७
३	सुरहन	६८८	२,४८८
४.	लसरा (कला)	६१३	२,२०६
५.	लसरा (खुर्द)	६१४	५५६
६	चितरा (महमूदपुर)	२८६	२,१६८
७.	कोहँडा	५७२	२,०६२
८.	माहुल	६३६	१,६७५
९.	मलूजा (नेवादा)	६३७	१,६६४

१०.	मिसूपुर	६८८	१,८६९
११.	कौरा गजनी	५३५	१,८४९
१२.	सुभाडिह	९८६	१,८४१
१३	पूक	२०७	१,७६५
१४.	बखरा	७९	१,७०९
१५	बागवहार	६४	१,६५३
१६	करुई	५२१	१,६४२
१७	कनेरी	५११	१,५०७
१८	नरवे	७३०	१,४९९
१९	खानेजहापुर	५५६	१,४७४
२०	पलथी	७६९	१,४६५
२१	जगदीशपुर	४६४	१,३५२
२२	बनगांव	८८	१,३२९
२३	शमशाबाद	९४२	१,२९०
२४	बेलवाना	१२२	१,२४१
२५	नोनारी	७४४	१,२१२
२६	खैरुद्दीनपुर (अली अजीम)	५४१	१,१८४
२७	पवाइ (खास)	७८८	१,१८०
२८	बर्रा	२०४	१,१५८
२९	राजापुर	८४४	१,१४६
३०	रसवां	८६४	१,१३०
३१	पारा	७७५	१,११८
३२	बरौली (सदरपुर)	८८८	१,१०९
३३.	खेमीपुर	५६०	१,१०५
३४.	रगडिह	८६१	१,०९१
३५.	सोहौली	९६९	१,८९०
३६.	दुबवा	३५२	१,०७०
३७	फतेहपुर (कस्बा)	८३३	१,०५५
३८	मऊ (मोर-)	१७७	१,०४५
३९.	फलेश	७९४	१,०३५
४०	खुरासों	५६६	१,०३३
(ख)	डिह		
४१.	अतरडीहा	५६	२१३

४२	खासडिह्	५५९	७८३
४३.	डिह् (कैथौली)	३४३	८००
४४.	डिह्पुर	५६०	५६०
४५.	नोनियाडिह्	७४६	५०७
४६.	बरी डीहा	३०१	१६३
४७.	बैरागडिह्	७५	४३७
४८.	बैसाडिह्	७७	४२७
४९.	रगडिह्	८६१	१,०९१

(ग) प्राचीन प्रत्यय

आवां			
५०	कुरियावा	५८८	९६३
५१.	जलावा	४७१	१९१
५२.	सरावां	९१२	८७६
इया			
५३.	दिघिया	३४२	३३९
और			
५४	अजौर	१३	४२४
५५.	सिकरौर (सहुबरी)	९६२	८७२
औरा			
५६	खडौरा	५५५	६१४
औल			
५७.	पकरौल	७६२	५१७
औला			
५८	अखौला	४४	६१४
५९.	पिरौला	८०१	७८३
६०	सोहौली	९६९	१,०८९
गांव			
६१.	आमगाव	२८	९८१
६२.	कुशलगाव	५९१	६५१
६३	मालगाव	६५५	५२०
गांवां			
६४.	दखिनगावा	२९	७८४

यू (वस्तु)			
६५.	अमरयू	२३	८६४
वह			
६६	रायदह	८३८	७४०
वारा			
६७.	सिलवारा	६६८	६२२
सर			
६८	नदेसर	७१७	६०५
हर			
६९	विडहर	१८९	६९७
हरी			
७०	जेठहरी	४८०	६१८

(२) प्राचीन से दीखते

७१	अजन शहीद	१२	१९४
७२	अदिका	३६	५८३
७३	अधीपुर	३५	७४३
७४	अबारी	२५	६२२
७५	ऊदपुर	१,०१३	६६०
७६	कछरा	४९१	७२४
७७	कटरा	५२४	७०६
७८	करौज	५१५	६१४
७९	कलाफतपुर	४९८	८१४
८०	कुरथुआ	५२९	७६
८१	कुसवा	५९३	९०२
८२	कोदहरा	५७१	६२७
८३	कोर्रा घाटमपुर	५०८	६७९
८४	खरसहा (कला)	५५७	९९८
८५	खरसहां (खुर्द)	५५८	८००
८६	गुअई	४०८	८२०
८३	गोधना	४०१	९३९
८४	जल्दीपुर	४७५	७३२
८५	तेवखर	१,००१	४७६

८६. तेवंगा	१,००२	७१३
८७. निजामपुर	७४३	६६५
८८. नेवादा	७३७	८०६
८९. नौहरा	७३३	७४०
९०. परतापपुर	७८२	७६१
९१. पुरदरपुर	८३१	९२६
९२. बरौना	१००	८१२
९३. बलईपुर	८२	९२९
९४. बसही अशरफपुर	१०३	७४३
९५. बस्ती (चकगुलरा)	१०८	७६०
९६. बस्तकपूरी	१०९	७९२
९७. बीबीगज	१८२	८६५
९८. बेलहरी (हसनपुर)	११६	१०८
९९. इमामअली	११७	५९०
१०० बेहटा	११४	६२२
१०१ मऊ (आदम)	६	५३१
१०२. मऊ (बिलर-)	१८६	८२०
१०३. मकसूदिया	६५१	९२८
१०४ यूसुफपुर	१,०२७	९९९
१०५ लग्गूपुर	५९५	७७०
१०६ सजई	८९७	७९८
१०७ सजनी	८९८	७२४
१०८ सुघरपुर	९७५	८०५
१०९ सुलेमानपुर	९८१	८७०
११० सुल्तानपुर	९८२	८४०
१११ सैदपुर	८९६	७४४
११२ हडिया	४२३	९७३

(३) नामकरण

(क) जाति

११३ कथकां (जाफरपुर)	४६२	३९३
११४ कैथौली	४९४	२७५
११५. कोहरौली	५७३	७५१

११६. पंडितां (जाफरपुर-)	४६३	१०६
११७. बरईपुर	६८	२१०
११८ भरचकिया	१४६	७६२
११६ मिसरौलिया	६८७	२१०
(ख) वृक्ष		
१२० इमली-महुआ	४४५	५१६
१२१ तर्कुलहा	६६८	१३४
१२२ पिपरी (शेखपुर)	६५४	७०३
१२३ बेलवई	१२३	७२६
(ग) सराय		
१२४ सरायपुल	६१०	७२६

६ लालगज तहसील

१३ देवगांव पर्गना

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१	लालगज (कटघर)	४४	३,२१०
२	तरवा	८१३	२,६५८
३	लहुआ (कला)	५०६	२,६६०
४	लहुआँ (खुर्द)	५१०	१,२५६
५	मेहनाजपुर	५६३	२,०४२
६	सिधौना	७८०	१,६६१
७	चिरकिहिट	२२६	१,८५२
८	पकरी (कला)	६३०	१,६४८
६	पकरी (खुर्द)	६३१	२२५
१०	बनगाव	८४	१,५७०
११	नौरसिया	६१३	१,७३३
१२	दोभाव (हैबतपुर-)	३२६	१,५१५
१३	ज्योली	४०३	१,४७६
१४	गोपालपुर	३१५	१,४५६
१५	सरवा	७५२	१,४५५
१६	बरहद (चौकी)	२१४	१,३८०

१७.	बहादुरपुर	५८	१,३६०
१८	असवनिया	४७	१,३५५
१९	कंजिहिट	४२७	१,३४५
२०.	बैरीडिह	६९	१,३४३
२१	रामपुर (बेहना)	४९८	१,३४९
२२	मूसेपुर	५९१	१,३३६
२३	लनैरा	४५७	१,३००
२३	रामपुर (कटहरवा)	७०१	१,२६०
२४	देवगांव	६७०	१,२३४
२५	बरदह	८९	१,२१३
२६	सिंहपुर	७८५	१,२०८
२७	लोनीपुर	६२०	१,१८२
२८	भरतपुर (इस्माईलपुर)	३७०	१,१६७
२९	चवेर (पच्छिम)	२२५	१,१६३
३०	चवेर (पूरब)	२२६	४३८
३१	बकेस	७१	१,११७
३२	रेटवा (चदरभानपुर)	७१६	१,००२
३३.	महुआपुर	५३४	१,०६०
३४.	कलिचाबाद	६६८	१,०५९
३५.	मऊ (लाल)	५१४	१,०५८
३६	गोडहरा	३१८	१,०५०
३७	डडवल	२३३	१,०२७
३८.	भूलनडिह	१४३	१,०२१
३४	छुतहरा	२३१	१,०१३
३५	खुरासो (खास)	४७८	१,००७
(ख)	डिह		
३६	जामडिह	३९५	५८५
३७.	भूलनडिह	१,०२१	१,०२१
३८.	सहनूडिह	७३१	३२४
(ग)	प्राचीन प्रत्यय		
आंव			
३९.	उडियावाँ	८३९	८०१
४०.	कुजराव	४९५	७३९

४१.	परसांव (मऊ-)	५६०	७२२
औरा			
४२	गिरौर	३०२	६१७
औली			
४३.	गडौली	२७९	९२६
४४.	बछौली (शेखपुर)	४८	५५७
गांव			
४५	बडागाव	८७	९५६
दह			
४६.	औदह (खास)	४५	९८६
४७	बरदह (चौकी)	२१४	१,३८०
वल			
४८.	गगवल	२८५	२७७
४९	डडवल	२३३	१,०२७
५०	धजवल	२५१	१९२
वां			
५१.	बरसवा	५५	६३४
सो			
५२	खुरासो	४७८	१,००७
हता			
५३	अगेहता	५	७११
५३	बरेहता	९०	३६७

(२) प्राचीन से बोलते

५४	असौसा	३६	७०८
५५	औनी	४६	८८७
५६	कहुतरा	४१७	८५७
५७	कहा (खास)	४९३	९२६
५८	कोटा (खुर्द किशुनपुर)	४९१	५२६
५९	कोटा (बुजुर्ग)	४९०	८६३
६०	खम्भादेवरी	४५६	२६१
६१	गनीपुर (डण्गरहर)	२९१	९३३
६२	चानदेउरा	२१०	७७५

६३.	जमुकहा	३९६	७१६
६४	जमुनी	३९८	७०९
६५	जियापुर	४०८	७३२
६६	तियरा	८२३	९०९
६७.	देवलपुर	२४८	१९८
६८	पारा	६३६	८०२
६९	बरगहन	९३	९८७
७०	बरवा	९७	७२७
७१	बसही (इकबालपुर)	१०१	५९५
७२	बहादुरपुर	५८	१,३६०
७३	बेला	१०८	६४६
७४	बनगाँव	१०९	४६६
७५	बेवहर	११६	६२५
७६	भवरपुर (नूरपुर)	६२३	७३०
७७	भुरकी	१४४	८०३
७८	मऊ (सकरा)	७३६	५०९
७९	मालपुर	५४६	७८२
८०.	मिर्जापुर	५७०	७०४
८१	मुवक्कलपुर	५८३	७९१
८२	शफीपुर	७९५	८९९
८३	श्रीकण्ठपुर	७९३	७६८
८४	सलेमपुर	७३९	७९२
८५	सारङ्गपुर	७५१	६२५
८६.	सिसरेंडी	७८९	७०४
८७	हदसे (दयालपुर)	३२३	७१०

(३) नामकरण

(क) जाति—

८८	कैंथी (शाकरपुर)	४१९	९४६

(ख) वृक्ष—

८९	महुआपुर	५३४	१,०६०

१४. बेला दौलताबाद

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१	मोहन सराय	७४६	२,१५०
२	बछवल	५०	१,६२७
३	गौरा	२६०	१,८३३
४	देवइत	२४७	१,७६३
५.	उबरपुर	८३६	१,७५३
६	धरतीपुर (रानीपुर)	२५७	१,५९९
७	गोपालपुर	३१६	१,५७४
८	गोमाडिह	३११	१,५५२
९	मुडहर	५९७	१,४६२
१०	महुआरी (करोदा)	५३६	१,४४७
११	पसका	६४८	१,४४४
१२	नई	५९७	१,३३६
१३	खजुरी	५४५	१,२२८
१४	भैसपुर	१२८	१,२१५
१५	बिलॉव	१५२	१,१८५
१६	लौदहीमदपुर	५१७	१,१८४
१७	दरियापुर (बसही)	२३५	१,७७७
१८	चकवारा	२०६	१,१७५
१९	भडसरी	११९	१,१६२
२०	गञ्जोर	२८६	१,१४३
२१	जमुआवाँ	४०१	१,१२९
२२	पलट् सराय	७४७	१,११६
२३	खरगपुर (मई)	५३८	१,०७३
२४	बीरभानपुर	१५५	१,०६२
२५	कमौली	४५५	१,०३८
२६	जमुकी	३९७	१,००४

(२) प्राचीन गांव

(ख) डिह

२७	घोडहियाडह	३००	०

२८. गौहा	२६२	६६४
२९. तारकद्रिह	८१२	२६५
३०. बालदिह	७५	३८२

(ग) प्राचीन प्रत्यय—

और—

३१. पिठौरपुर	६६१	८८७

औरी—

३२ हथौरी	३४२	४२५

औली—

३३. बिजौली	१४६	८३७

दह—

३४. पन्दहा	६३४	८८८

बल

३५. हदवल	३६३	३४५

वाँ

३६. सिरवाँ	७८८	६२७

हर

३७. सपहर (रुद्रपुर)	७४१	६७२

(२) प्राचीन से बोलते

३८. हरनी	३६७	७१४
३९ करनेवुआँ	४३३	६३८
४०. गोहनी	३१०	६०१
४१. टेकमाँ	८२१	६४३
४२. दामा	२३२	८३६
४३. बरवा	९७	६०२
४४ बरवा (सागर)	९९	८९२
४५. बाबूपार	१०५	६६३
४६. बासूपुर	१०४	७५५
४७. बीकापुर	१५१	७८४
४८. बेनूपुर	११५	७४६
४९ बेला (खास)	११०	८२१
५०. भीरा	१३४	८३८

५१.	मेंहनगर	५३१	३,६१६
५२	रसूलपुर	७०६	७६२
५३.	हरई (रामपुर)	३३३	८०४
५४.	हरचन्दपुर	३३५	७८८

(३) नामकरण

(क) जाति

५५	शेखुपुर	७७४	६५३

(ख) वृक्ष

५६	महुआरी	५३५	७१५

१५. बेलहरवांस

(१) प्राचीन गांव

(क) हजारी गांव

१	उचहुवाँ	८४४	१,८८२
२	कम्हरिया	४२४	१,५११
३.	बीबीपुर	१४५	१,३०३
४	खसापुर	४५६	१,२०१
५	टण्डवाखास	८०८	१,११३
६	रसतीपुर	७०८	१,१०६
७.	बाँसगाँव	८५	१,०८७
८	मानपुर	५५०	१,०५२

(ख) डिह

९	तानडिह	८१०	१३६
१०	बेलहाडिह	११२	९९८
११.	बैरीडिह	७०	१५३

(ग) प्राचीन प्रत्यय

औरा

१२	हरौरा	३३४	४७५

वां

१३.	उचहुवां	८४४	१,८८२

हता

१४	धुरेहता	३१९	९४१

(२) प्राचीन से बोलते

१५	अमारी	२४	७४८
१६	ऐरा (खुर्द)	१५	७५९
१७	ऐरा (बुजुर्ग)	१४	८०३
१८	कटहन	४३८	५१२
१९	खुटहन	४८०	३२९
२०	घिनहा	२९९	९१५
२१	टोडरपुर	८३३	४९९
२२	तितरा	८३२	९४३
२३	देवकली	२४०	६५६
२४	परासन (उर्फ बिसुनपुर)	६३७	८०४
२५	बुढानपुर	१६४	७५८
२६	सिसवाँ	७९१	७२९

(३) ४ नामकरण—

(क) सराय—

२७	तिलोचन सराय	७५०	८२६
२८	बिन्दावन सराय	७४३	६८८
२९	भादी सराय	७४२	५२१

५ अधिक ग्रामों के नामान्त

ग्राम नामों के साथ अराजी, चक, जमीन, दियरा, पट्टी, सराय आदि नाम अधिक मिलते हैं, जिनमें पहिले चार पीछे के मालूम होते हैं—

	पर्गना	अराजी	चक	जमीन	दियरा	पट्टी	सराय	विशेष
	१ आजमगढ़ तहसील							
१	निजामाबाद	०	७१	९	०	२५	६	रामपुर १०
	२ महमदाबाद तहसील							
२	महमदाबाद	०	३३	६	०	११	३	
३.	चिरैयाकोट	०	२३	९	०	१०	२	
४.	करियात मित्तू	०	११	०	०	०	०	
५	मऊ	०	९	०	०	२	०	

		३. सगड़ी तहसील						
६	सगडी	७	३२	२०	०	३१	२	
७.	गोपालपुर	३२	१०	०	०	२	०	
		४ घोसी तहसील						
८.	घोसी	१	३५	७	०	३	७	
९	नत्थूपुर	१	१८	८	०	६	३	छपरा ३
		५ फूलपुर तहसील						
१०	कौडिया	१	०	०	०	१४	२	
११	अतरौलिया	०	१३	६	०	२९	०	
१२	माहुल	०	४८	०	०	३	१	पूरा २१
		६ लालगञ्ज तहसील						
१३	देवगाँव	०	२१	८	०	१	३	रामपुर १०
१४	बेला दौलताबाद	१	२५	१	०	३	१	
१५	बेलहाबाँस	२	२	०	०	३	४	

ऐतिहासिक सामग्री की रक्षा और संग्रह

हर एक सस्कृत और जागृत जाति का अपने इतिहास और तत्सम्बन्धी सामग्री से स्नेह होता है। यदि अपने पूर्वजो और भूमि के प्रति जिज्ञासा नही, और जिज्ञासा की पूर्ति करनेवाली सामग्री की रक्षा का ख्याल नही है, तो समझना चाहिए, उस जाति या व्यक्ति में अभी वास्तविक सस्कृति का अभाव है। उत्तर-प्रदेश के और जिलो की तरह आजमगढ का जिला बहुत प्राचीन काल मे धन और सस्कृति से समृद्ध गाँवो, निगमो और नगरो की भूमि रहा है। इसका इतिहास अधिकतर अन्धकाराच्छन्न है। पर, कण-कण करके उसे मूर्तिमान् बनाया जा सकता है। इतिहास की मूल सामग्री धरती के भीतर छिपी हुई है, जो जब-तब निकल आती है, पर, ध्यान न देने के कारण बुरी तौर से विनष्ट हो जाती है। सिसवा (बेलहाबाँस ७९१, जनसख्या ७२९) का डिह (ध्वसावशेष) मीलो तक चला गया है। आज भी वहाँ कनिष्क के सिक्के आसानी से मिल जाते हैं, और धरती के नीचे तो दो हजार वर्ष से भी पुराने काल के अवशेष मौजूद हैं। इसी तरह वहाँ की मॅगई नदी के किनारे भुडकुडा (जिला गाजीपुर) में हाल में चाँदी के सिक्कों के दो घडे मिले, जिनको लोगों ने सोनारो के यहाँ गला कर जेवर बनवा लिया या बेच डाला। वहाँ के हाई स्कूल का यह लाभ जरूर हुआ है कि उसके एक अध्यापक श्री श्यामनारायण पाण्डेय ने बडे यत्न से दस-पाँच सिक्को को इकट्ठा करके हिन्दू विश्वविद्यालय के कला-भवन मे दे दिया। सिक्के निश्चितकाल को बतलाते हैं।

कुषाण (ईसवी प्रथम शताब्दी) और उसके बाद के सिक्कों से सन् तक का पता लग सकता है। उसके पहले के चौकोर सिक्के अपनी शताब्दी बतलाते हैं। ईंटें भी अपने काल का परिचय देती हैं। और जितना ही पुराना काल है, उतनी ही वह अधिक बड़ी और उतनी ही आज के तलसे अधिक नीचे मिलती है। मौर्यकालीन ईंटे १७ से २१ इञ्च तक लम्बी होती है और मौर्यकालीन भूतल आज से दस-ग्यारह फुट नीचे है। शिक्षा और संस्कृति के प्रसार के साथ हमारे यहाँ ऐतिहासिक जिज्ञासा बढ़ेगी। नयी इमारतो, नयी नहरो और जलाशयों की खुदाई के समय अनायास पुरानी सामग्री निकल आ सकती है, जिसके सग्रह और रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। सौभाग्य से हाई स्कूल और उच्चतर हाई स्कूलो की सख्या बढ रही है। वह देहात के बडे-बडे गाँवो में भी स्थापित हो रहे हैं। यदि वहां के इतिहास के अध्यापक अपने आसपास मिलनेवाली ऐसी सामग्री को स्कूल की एक कोठरी मे जमा करते जायँ, तो धीरे-धीरे वह एक महत्त्वपूर्ण सग्रह बन सकता है। सग्रह की मूल्यवान् सामग्री से जिले मे एक अच्छा सग्रहालय तैयार हो सकता है।

आजमगढ जिले के बारे मे ग्राम-नामो का जिस तरह विश्लेषण यहाँ किया गया है, वैसे ही हरेक जिले के करने की आवश्यकता है। हमारे जिलो के जो नये गजेटियर तैयार किये जा रहे हैं, उनमें यदि ऐसे विश्लेषण शामिल कर दिये जायँ, तो आनेवाले गवेषको को बडी सहायता मिल सकती है।

पुस्तक-परिचय

बौद्ध धर्म दर्शन—लेखक आचार्य नरेन्द्रदेव, प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना ३, प्रथम संस्करण वि० स० २०१३, आकार सुपर रायल आठपेजी, पृष्ठ सख्या ७६४, छपाई सफाई अत्युत्तम, मूल्य १५) रु०, सजिल्द १७) रु०।

बौद्धधर्म ससार के सुप्रसिद्ध धर्मों मे अन्यतम है। एक समय था, जब भारतभूमि में जन्म लेकर इसने भूमण्डल के अनेक देशो को अपनी निर्मल और शक्तिदायिनी आभा से जगमगा दिया था और आज विज्ञान के इस युग मे भी वह अपने करोडों अनुयायियो के स्वर मे आधुनिक भौतिक सभ्यता को चुनौती दे रहा है। यद्यपि अनेक कारणो से अपनी जन्मभूमि भारत में उसकी गति कुण्ठित हो गई और आज वह वहाँ के निवासियो के लिए अपरिचित-सा प्रतीत हो रहा है तथापि एशिया महाद्वीप के अधिकाश भागो मे उसका समादर है। और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्तर हमारे देश मे भी उसे सम्मानित करने की भावना प्रबल होती जा रही है। बौद्धधर्म का दार्शनिक पहलू अत्यन्त जटिल तथा सर्वसामान्य के लिए दुर्बोध है। इसके मूल दार्शनिक ग्रन्थो की वर्णन-शैली ही नही कठिन है प्रत्युत जिन भाषाओ मे वे है, उनका भी प्रचार-प्रसार बहुत कम है। ये दार्शनिक ग्रन्थ सख्या में भी अधिक है। अनेक वर्षों तक इस विषय के अनेक ग्रन्थो का गहन अध्ययन करके स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने हिन्दी भाषियो के हाथो मे इस ग्रन्थ के रूप मे जो सामग्री दी है, वह अभूतपूर्व है और उन्ही जैसे बहु-विश्रुत विद्वान् की अदम्य शक्ति से ही वह साध्य भी थी।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र, उनकी शिक्षा, उसका विस्तार, उसके विभिन्न निकायो की उत्पत्ति तथा विकास, महायान की उत्पत्ति तथा उसकी साधना, स्थविरवाद का समाधिमार्ग तथा प्रज्ञामार्ग, कर्मवाद, निर्वाण, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद, क्षणभगवाद, बौद्ध साहित्य के विविध दार्शनिक पहलू (जैसे सर्वास्तिवाद, सौत्रान्तिकवाद, विज्ञानवाद तथा माध्यमिक) एव बौद्ध न्याय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ग्रन्थ की रचना मे यथासम्भव आचार्यजी ने मौलिक ग्रन्थो का ही आश्रय लिया है और जो भी बातें लिखी है, वे 'मल्लिनाथ' की इस प्रतिज्ञा का 'नामूल लिख्यते किचित नानपेक्षितमुच्यते' का अक्षरश पालन करती है। प्रत्येक दर्शन के सन्दर्भ मे उनके लिए सुप्रसिद्ध ग्रन्थो का सक्षेप देकर उनका मूल सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। प्रामाणिकता की रक्षा के अनुरोध से मूल ग्रन्थो की छाया सर्वत्र विद्यमान है। यही नही पाठको को बौद्धधर्म और दर्शन की मूल भावनाओ एव वातावरण से परिचित एव अभ्यस्त बनाये रखने के लिए बौद्धो के शब्दो तथा शैली का भी प्रयोग किया गया है।

जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है बौद्धधर्म दर्शन मे आचार्यजी ने बौद्धधर्म एवं बौद्धदर्शन दोनो से सम्बन्ध रखने वाली प्रचुर पाठ्य सामग्री इसमे दी है। ग्रन्थ ५ खण्डो तथा २० अध्यायो में विभक्त है। पहले खण्ड के ५ अध्यायो मे बौद्धधर्म का उद्भव तथा स्थविरो की साधना का वर्णन किया गया है। प्रथम अध्याय मे भारतीय सस्कृति की दो धाराएँ भगवान् बुद्ध का प्रादुर्भाव, उनके समसामयिक आचार्य, देश के कोने-कोने मे धर्म का प्रसार, भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण आदि विषय वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय मे भगवान् बुद्ध की शिक्षा की सार्वभौमिकता, उनका मध्यममार्ग, शिक्षात्रय, पचशील, अष्टागिक मार्ग आदि प्रदर्शित है। तृतीय अध्याय में बुद्ध देशना की भाषा तथा उसका विस्तार, त्रिपिटक तथा अनुपिटको का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। चतुर्थ अध्याय मे निकायो का विकास, तथा पाँचवे मे स्थविरवाद की साधना अर्थात् सुमधियो का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। द्वितीय खण्ड के पाँच अध्यायों में महायान धर्म और उसके दार्शनिक सिद्धान्तो की उत्पत्ति तथा विकास, उसका साहित्य और साधना है। सक्षेप में छठे अध्याय में महायानधर्म की उत्पत्ति और उसका त्रिकायवाद वर्णित है। सातवे अध्याय मे बौद्ध सस्कृत साहित्य का और बौद्ध सकर-सस्कृत का परिचय देकर सम्पूर्ण महायान सूत्रो का विषय-परिचय कराया गया है। आठवे अध्याय मे महायान दर्शन की उत्पत्ति तथा उसके महान् आचार्यों की कृतियो का परिचय कराया गया है। नवे अध्याय मे तत्सम्बन्धी स्तोत्र, धारणी तथा तन्त्रो का परिचय दिया गया है। दसवे अध्याय मे महायान की बोधिचर्या और पारमिताओ की साधना का सविस्तर वर्णन किया गया है।

तृतीय खण्ड मे बौद्ध दर्शन के सामान्य सिद्धान्तो का परिचय दिया गया है। इसमें ४ अध्याय है। ग्यारहवे अध्याय मे बौद्ध दर्शन के सामान्य ज्ञान के लिए एक सुन्दर भूमिका है। बारहवे अध्याय मे प्रतीत्य समुत्पाद, क्षणभगवाद, अनीश्वरवाद तथा अनात्मवाद का तर्कपूर्ण परिचय दिया गया है। तेरहवे अध्याय मे बौद्धो के कर्मफलो का सिद्धान्त वर्णित है और चौदहवे अध्याय मे निर्वाण का पर्यालोचन किया गया है।

चतुर्थ खण्ड मे ५ अध्याय है। इस खण्ड मे बौद्ध दर्शन के चारो प्रस्थानो का विशिष्ट ग्रन्थो के आधार पर विषय परिचय और अन्य दर्शनो से उसकी तुलना दी गई है। अर्थात् पन्द्रहवे अध्याय मे वैभाषिक नय, सोलहवे में सौत्रान्तिक नय, सत्रहवे मे असग का विज्ञानवाद, अठारहवे मे आचार्य वसुबन्धु का विज्ञानवाद तथा उन्नीसवे अध्याय मे शून्यवाद का प्रामाणिक वर्णन किया गया है।

पाँचवें खण्ड में केवल एक अध्याय है, जिसमे बौद्धन्याय का स्पष्ट परिचय दिया गया है। इसमे आकाशवाद और कालवाद पर महत्त्वपूर्ण विचार करके न्याय के प्रत्यक्ष, स्वार्थानुमान और परार्थानुमान का विस्तृत विवेचन किया गया है। यही पाँच खण्डो मे वर्णित इस ग्रन्थ रत्न की सक्षिप्त सूची है, जिसे देखकर ही इसकी गम्भीरता तथा उपादेयता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। आचार्यजी हमारे देश की एक उज्ज्वल प्रतिभा थे। राजनीति, समाजनीति, भारतीय सस्कृति एव इतिहास के क्षेत्र मे उनका ज्ञान अगम्य था। उनमे जैसी गहन अध्ययनशीलता तथा

सूक्ष्म प्रतिभा थी, वैसी ही अपूर्व उनकी कल्पनाशक्ति तथा अटूट निष्ठा भी थी। उनकी जैसी बहुमुखी प्रतिभा करोडो में एक को मिलती है। यद्यपि जीवन भर वे अपने स्वास्थ्य से जूझते रहे और कोई दिन ऐसा नही था, जब उन्हें असाध्य रोग की चेतावनी न मिलती रही हो तथापि अपने अध्ययन एव अन्य लोकोपकारी कार्यों की गति मे उन्होने कभी बाधा नही पडने दी। इसी का परिणाम था कि वे हमारे देश मे एव विदेशो मे भी—किसी शासन के पद पर न रहकर भी सबके आदरणीय थे। उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य एव प्रगल्भ वैदुष्य हमारे देश का गौरव था। प्रस्तुत पुस्तक आचार्यजी की विद्वत्ता एवं उनकी गहन अध्ययनशीलता की एक स्मरणीय चिन्हौटी है। अपने जीवन की अन्तिम बेला में इसमे उन्होने जो अगाध परिश्रम किया है, जो प्रतिभा प्रदर्शित की है, वह महा-महोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के शब्दो मे इस प्रकार है—

'यह कहना ही चाहिए कि ऐसा ग्रन्थ हिन्दी भाषा मे तो नही है, किसी भारतीय भाषा मे भी नही है। मै समझता हूँ, किसी विदेशी भाषा में भी ऐसा ग्रन्थ नही है।'

हिन्दी का यह सौभाग्य है कि आचार्यजी की अलौकिक प्रतिभा का यह प्रसाद उसे उस समय प्राप्त हुआ, जब उसकी हमारे देश मे अत्यधिक आवश्यकता थी। आज हमारे देश के जीवन मे बौद्धधर्म के प्रति लोगो की उत्कण्ठा पुन जाग्रत हो रही है और विश्व के अन्य देश भी आकृष्ट हो रहे है। इस एक ही ग्रन्थ के द्वारा बौद्धधर्म एव उसके दुरूह दार्शनिक सिद्धान्तो के कठिन दरवाजे पार किये जा सकते है और एक सामान्य पाठक भी सच्ची निष्ठा और धैर्य से उसका सम्यक् अध्ययन एव परिशीलन कर सकता है। बौद्ध मत का गहन अध्ययन करने वाला विद्यार्थी इस ग्रन्थ से यथेष्ट लाभ उठा सकता है। हिन्दी के गौरव को बढाने वाली इस अनवद्य रचना की प्रत्येक पुस्त-कालय तथा अध्ययन कक्ष मे आवश्यकता है। पुस्तक के आरम्भ मे महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज जी की एक सुविस्तृत भूमिका है, जिसमे वर्ण्य विषय का सम्यक् पर्यालोचन किया गया है। स्व० आचार्यजी की सक्षिप्त आत्मकथा भी इसके आरम्भ मे दे दी गई है। इस प्रकार पुस्तक जहाँ तक हो सका है, सभी दृष्टियो से उपयोगी बनाई गयी है।

हिन्दी अलंकार साहित्य—लेखक डा० ओमप्रकाश, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, हसराज कालेज दिल्ली, प्रकाशक—भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, आकार डिमाई, पृष्ठ सख्या लगभग २७५, छपाई सफाई उत्तम, मूल्य ६) रुपये।

प्रस्तुत ग्रन्थ डा० ओमप्रकाश के उस शोध प्रबन्ध का परिमार्जित किन्तु आशिक रूप है, जिस पर उन्हे आगरा विश्वविद्यालय ने कुछ वर्ष पूर्व पी० एच० डी० की उपाधि प्रदान की थी। इसमे हिन्दी के आचार्य केशवदास से लेकर रामदहिन मिश्र तक हिन्दी के समृद्ध अलकार साहित्य का शृखलाबद्ध पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दृष्टिकोण विवेचनात्मक है, ऐतिहासिक नही। हिन्दी के माध्यम से विभिन्न विवेचको एव आचार्यों ने अलंकार विषय का जो प्रतिपादन किया है, वह कहाँ तक सफल हुआ है, उनकी रुचि तथा प्रतिभा का उनके विवेचन पर कहाँ तक प्रभाव पडा है और आचार्यत्व की दृष्टि से उनकी कृतियो का

क्या मूल्य है—इन्ही सब बातो पर प्रस्तुत ग्रन्थ मे गवेषणा की गयी है। इसमें अलकारशास्त्र के सैद्धान्तिक विवेचन पर ही ध्यान रखा गया है। साथ ही हिन्दी अलकारशास्त्र की परम्परा का व्यवस्थित निरूपण भी है।

पुस्तक मे चार अध्याय (यद्यपि अध्याय नाम नही दिया गया है) है। प्रथम है, सस्कृत अलकार साहित्य। द्वितीय है, हिन्दी अलकार साहित्य। तृतीय है, मध्ययुगीन अलकार साहित्य तथा चतुर्थ है गद्ययुगीन अलकार साहित्य। तदनन्तर उपसहार और परिशिष्ट भी है। इन अ यायो के शीर्षक पुस्तक के वर्ण्य विषयो का भलीभाँति परिचय देते है। हिन्दी का अलकार साहित्य सस्कृत के अलकार साहित्य की छाया पर ही चले है, बहुत कम स्थलो पर उनमे अन्तर है। अतएव प्रस्तुत पुस्तक मे सस्कृत के अलकार साहित्य और सस्कृत के आचार्यों के मतो का विश्लेषण एव विवेचन करना आवश्यक था। इस अध्याय मे लेखक ने आचार्य भरत के पूर्व से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक के मतो का सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया है। और स्थल स्थल पर उसकी तर्कसगत विवेचनाएँ भी दी है। इसी प्रकार हिन्दी मे भी सभी आचार्यों के मतो पर विवेचनाएँ प्रस्तुत की गई है।

काव्यदर्पण के रचयिता रामदहिन मिश्र के सम्बन्ध मे लेखक ने अपने ग्रन्थ मे जो कुछ कहा है, उसमे पण्डितम्मन्यता का अह अधिक मुखरित हुआ है। उनके सम्बन्ध मे एक स्थल पर यह कह दिया है कि "७०० पृष्ठ की पुस्तक मे यदि आधा लेखक का अपना है तो आधा दूसरे लोगो का है।' निश्चय ही विद्वान् लेखक ने बडा परिश्रम किया है, पढकर, समझकर और ठीक स्थान पर रखकर और उसके इस परिश्रम से २० पुस्तके न पढ़कर १० विद्वानो के विचार रटकर हम जैसे लोग भी अपने पाण्डित्य मे झूम सकते हैं, परन्तु । इसके आगे मिश्रजी ने जिन विद्वानो के मतो का उद्धरण दिया है, उनकी नामावली प्रस्तुत करते हुए प्रतिपाद्य विषय और तुलनार्थ (?) विषय का क्या अनुपात होना चाहिए—यह भी स्वतन्त्र रूप से विचारणीय है, आदि आदि। किन्तु ये वाक्य लेखक को अपनी रचना के सम्बन्ध मे क्यो नही सुझाई पड़े, जब कि उनकी २७५ पृष्ठो की पुस्तक में तीन चौथाई से अधिक अन्य लोगो का है और शेष ही अपना है। दर्जनो आचार्यों एव समीक्षको के मतो को उद्धृत करके हर एक के साथ २७४ पक्ति की अपनी टिप्पणी जोड़ देना कोई बडा काम नही है। स्व० रामदहिन मिश्र का काव्यदर्पण इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ से तो बहुत ही ऊँचा है किन्तु 'परगुण परमाणून पर्वती कृत्य नित्य' के अनुसार उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने वाले कितने लोग है ?

फिर भी प्रस्तुत ग्रन्थ अलकार साहित्य का अध्ययन करने वालो के लिए उपयोगी है। क्योंकि इसमे प्राचीन एव नवीन आलकारिको के मतो का सक्षेप मे सुन्दर परिचय मिल जाता है और साथ ही उनके मूल्याकन की एक नवीन दृष्टि भी प्राप्त हो जाती है। लेखक ने बड़े श्रम और सूझबूझ से इस ग्रन्थ को प्रस्तुत किया है। उनका यह दावा है कि "हिन्दी अलकार साहित्य का यह प्रथम अन्तरग अध्ययन है।" हम उनके इस दावे को झुठलाना तो नही चाहते किन्तु इतना निवेदन अवश्य करना चाहते हैं कि डा० रामशकर शुक्ल 'रसाल', डा० भगीरथ

मिश्र आदि के अलंकार सम्बन्धी अध्ययन भी अन्तरग ही माने जाने चाहिए। पुस्तक उपयोगी है और उसका सर्वत्र अभिनन्दन होना चाहिए।

विचार और निष्कर्ष—लेखक श्री वासुदेव एम० ए०, प्रकाशक—भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, आकार डिमाई, पृष्ठ सख्या लगभग ३५०, प्रथम सस्करण सन् १९५६। मूल्य ७॥) रु०। छपाई सफाई और कागज उत्तम ।

प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक के समय-समय पर लिखे गये निबन्धो का सग्रह है जो सन् '४५ से '५५ के बीच लिखे गये है। निबन्ध भी विविध विषयो पर हैं, किन्तु हैं सभी साहित्यिक। पुस्तक के आठ खण्ड है। प्रथम खण्ड में सामान्य समीक्षा के अन्तर्गत 'शून्य का साहित्यिक महत्त्व' से लेकर 'महादेवी का बचपन और उनकी कविता' शीर्षक निबन्ध भी दिये गये हैं। इसी प्रकार कुछ कवियो तथा कथाकारो की किसी एक रचना अथवा रचनामात्र पर विचार व्यक्त किये गये है। दूसरा खण्ड है युग प्रवर्तक गद्यकारो के सम्बन्ध मे। इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी तक हिन्दी के गद्य-साहित्य के विकास पर सामान्य विवेचन प्रस्तुत किया गया है और तत्तद् लेखको की शैली एव रचनाओ की सामान्य समीक्षा भी है। तृतीय खण्ड में युगान्तरकारी कहानीकारो के अन्तर्गत प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद, जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय तथा यशपाल की रचनाओ पर विवेचना प्रस्तुत की गई है। चौथे खण्ड मे हिन्दी की "आधुनिक अमर कृतियाँ" शीर्षक से सत्य हरिश्चन्द्र नाटक से आरम्भ कर गोदान और 'उन्मुक्त' प्रभृति १३ रचनाओ के सम्बन्ध मे लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। पाँचवे खण्ड में तुलनात्मक समीक्षा है, जिसमे केवल दो निबन्ध है। एक मे तुलनात्मक अध्ययन के सिद्धान्त हैं और दूसरे मे सूरदास और तुलसीदास की भक्ति भावना की पारस्परिक तुलना है। छठे खण्ड मे 'समस्या' है, जिसमें तीन निबन्ध है, किन्तु समस्या केवल एक निबन्ध मे है। सातवें खण्ड में प्रान्तीय साहित्य शीर्षक के अन्तर्गत 'बिहार के कहानीकारो' पर एक निबन्ध है। आठवें खण्ड मे नवोदित हिन्दी कलाकार के अन्तर्गत दो नये साहित्यकारो का मूल्याकन किया गया है। यह तो है पुस्तक का बहिरग परिचय।

पुस्तक के सभी निबन्ध सुन्दर, सुस्पष्ट और विचारोत्तेजक है और उनमें सहानुभूति के सग विवेचना के तत्त्व भी मिश्रित हैं। शैली प्रवाहपूर्ण है और उनमे छात्रो की उपयोगिता का विशेष ध्यान दिया गया है। यह स्वाभाविक ही है कि निबन्धो मे व्यक्त किये गये मत कही-कही विवादास्पद और पुराने भी हैं तथा उनमें विचारो की एक सुदृढ शृखला अथवा अन्विति का अभाव है। निष्कर्षों की सगति भी सर्वत्र नही है। और लेखक के ही शब्दों मे वह इन निबन्धो की अवधि मे बहुत कुछ बदला भी है। यही नही पुस्तक के जिन आठो खण्डों के शीर्षक ऊपर दिये गये हैं वे निबन्धों के अनुरोध पर ही हैं, उनसे सामान्य धारणा बना लेना उचित नही है।

निबन्धो में कही-कही व्यक्तिगत धारणाओं की छाया अधिक है, यदि लेखक ने पुस्तकाकार देते समय उन्हें सुधार दिया होता तो अच्छा होता। इसी प्रकार यत्र तत्र गम्भीर विवेचना के बीच कुछ हलकी-फुलकी बातें, असगत तर्क और अनियन्त्रित विचार भी आ गये है। ऐसी बातें सामयिक

पत्र-पत्रिकाओ के निबन्धो में तो ग्राह्य हो जाती हैं किन्तु पुस्तक साहित्य में इनके कारण आलोचना का मानदण्ड नीचे झुकता है। विद्वान् लेखक ने यदि ये बातें सुधार दी होती तो पुस्तक की उपयोगिता निस्सन्देह बहुत बढ जाती।

फिर भी सभी निबन्ध उच्च कक्षाओ के छात्रो के लिए उपयोगी है और उनके पढ़ने से सामान्य जिज्ञासु पाठक को भी नूतन दृष्टि और समन्वयात्मक भावना की पुष्टि मिलेगी। पुस्तक का मूल्य भी कुछ कम होना चाहिए।

शैवमत—लेखक डा० यदुवशी, केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रणालय, दिल्ली, प्रकाशक, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, आकार रायल। पृष्ठ सख्या लगभग ३५०। प्रथम सस्करण सन् १९५५। मूल्य ७) रु०, सजिल्द ८) रु०।

प्रस्तुत पुस्तक डा० यदुवशी के अग्रेजी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद है। इस निबन्ध पर लन्दन विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की है। अनुवादक स्वय डा० यदुवशी ही हैं।

शैवमत हमारे देश में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है। किन्तु उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अब तक अन्धकारपूर्ण थी। कब यह आरम्भ हुआ, कैसे इसका विकास और प्रसार हुआ, कब-कब इसमे परिवर्तन और परिवर्धन हुए, इसके मान्य सिद्धान्तो का कैसे-कैसे सस्कार होता गया—ये सब बाते ऐसी है, जिन पर प्रकाश डालना सुगम नही है। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार इसकी ऐतिहासिक खोज अब तक नही हुई थी। विद्वान् लेखक ने बडे परिश्रम और अध्यवसाय से इन सभी तथ्यो की ऐतिहासिक खोज की है। और इस कार्य मे उन्होने प्राच्य और पाश्चात्य प्रमाणो का विश्लेषण एव तुलनात्मक अध्ययन बडी गहराई और निष्ठा से किया है। शैवमत के सम्बन्ध मे उनका यह निबन्ध प्रथम है। अत स्वाभाविक है कि उन्हे इस दिशा में बडी गम्भीरता और तत्परता से कार्य करना पडा है।

शिव हमारे देश के सर्वप्रिय देवता हैं। आदिम काल मे इनकी उपासना का जो भी रूप और प्रकार रहा हो किन्तु आज वे सार्वजनिक देवता बन चुके है और कोई जागरूक मस्तिष्क भी उनके सम्बन्ध मे अब कुछ अन्यथा सोचने की आवश्यकता नही समझता। सर्वसामान्य जनता के ऐसे देवता पर लिखे गए निबन्ध में जनता का दृष्टिकोण रखना आवश्यक था। विद्वान् लेखक ने इस ओर सतर्क दृष्टि रखी है और कोरे वैज्ञानिक की दृष्टि से भी यथास्थल विचार प्रकट किया है। अतएव मतभेदो के उत्थापन की गुजाइश काफी है, फिर भी लेखक का कार्य जिस ढंग का था, उसे देखते हुए इसके सिवा कोई अन्य मार्ग था भी नही।

शैवमत का आधुनिक स्वरूप अनेक मार्गों से चलकर यहाँ पहुँचा है। कापालिको के गर्हित कर्मकलापो से लेकर शैवो के गूढ किन्तु उदात्त विचारो तक की अन्विति उसमें हुई है। यद्यपि दोनो में आकाश पाताल का अन्तर है। आशुतोष शकर के शिव स्वरूप से लेकर सहारकारी रुद्र के स्वरूप तक भी यही दूरी है, किन्तु शिव मे तथा शैवमत मे दोनो का समन्वय हुआ है। हमारे

देश के एवं पाश्चात्य विद्वानो ने भी इन सब के स्रोतो को वैदिक धर्म में ही ढूंढ़कर निकालने का यत्न किया है। प्रस्तुत निबन्धकार ने शैवमत में समाविष्ट इन विभिन्न स्रोतो का वैज्ञानिक विवेचन एव तर्कसगत समीक्षा प्रस्तुत की है और यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि—"शैवमत जिस रूप में आज हमारे सामने है, उसमें अनेकानेक ऐसे अश समाविष्ट है जिनकी उत्पत्ति विविध स्रोतों से हुई है। स्वय भगवान् शिव की जिन विभिन्न रूपो में उपासना की जाती है उनका एक ऐसी देवी के साथ सगम हुआ है, जिसके रूपो की विभिन्नता और भी अधिक है तथा जिसकी समस्त कल्पना अवैदिक और आर्येतर है और इससे भी बढ़कर यह कि शैवमत में जो लिंग पूजा का समावेश हुआ है, उसका कोई चिन्ह या सकेत शिव के आदि रूप माने जाने वाले वैदिक रुद्र की उपासना मे नही मिलता।"

लेखक का मत है कि आधुनिक शैवमत केवल वैदिकरुद्र की उपासना का विकास मात्र नही है, प्रत्युत उसमे अनेक स्वतन्त्र मतो का मिश्रण हुआ है। यह स्वतन्त्र मत उन विविध जातियो के थे जिनकी स्थिति एव सस्कृति की जानकारी आज दुर्गम है। किन्तु पुरातात्त्विक साधनो से उन पर कुछ-न-कुछ प्रकाश अवश्य पडता है। लेखक ने यह सिद्ध करने का यत्न भी किया है कि वैदिक रुद्र से आरम्भ होकर शैवमत के प्रमुख अगो की उत्पत्ति और विकास समय-समय पर किस प्रकार हुआ है। इस यत्न में लेखक ने वैदिक उपनिषद् एव ब्राह्मणकालीन तथा पुराणकालीन साहित्य का गम्भीर एव प्राजल अध्ययन प्रस्तुत किया है। वैदिक रुद्र की उपासना में आर्येतर जातियो की धार्मिक मान्यताओ के सम्मिश्रण से जिस नये शैव धर्म का विकास हुआ है, उसको उपलब्ध सामग्री की सहायता से पल्लवित किया गया है। पुराणो में शिव के विविध स्वरूपो में जो प्रौढता आयी है, जो नूतन परिवर्तन हुए है, उनका तर्कसगत विवेचन किया गया है और १३वी शताब्दी के अन्त तक उनका इतिहास भी लिखा गया है। स्मरण रहे कि आज हम शिव के सम्बन्ध मे जो कुछ जानते-मानते या करते-धरते है वह सब तेरहवी शताब्दी मे ही स्थिर हो चुका था। ग्रन्थ के अन्त मे भारत से बाहर विशेषकर हिन्दचीन और पूर्वी द्वीप मण्डल में शैवमत के विकास एव प्रसार का सक्षिप्त विवरण भी दिया गया है। साथ ही मूल निबन्ध के आधारभूत साक्ष्यो का भी ग्रन्थकार ने एकत्र सकलन कर दिया है, जो बड़े काम का है। इस प्रकार जहाँ तक हो सका है लेखक ने शैवमत के सम्बन्ध मे जो सामग्री प्रस्तुत की है वह अपने ढग की अद्वितीय तथा उपादेय है और इसके द्वारा हिन्दी में हमारे देश के अन्य प्रचलित मतो—शाक्त, वैष्णव आदि के अध्ययन की भी प्रेरणा और दिशा मिलेगी।

ऐतिहासिक और वैज्ञानिक शोध की जब धार्मिक एव श्रद्धागत वस्तुओ से टक्कर होती है तो मतभेद स्वाभाविक है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे ऐसी सामग्री की कमी नही है जिस पर प्राचीन विचार धारा के लोग असहिष्णु न हो उठें, किन्तु विद्वान् लेखक ने बडी गम्भीरता और निष्ठा से यथास्थल जनता के दृष्टिकोण को भी समादृत किया है। अतएव ऐसे विवादपूर्ण प्रसगो मे श्रद्धा से कुछ कम किन्तु विवेक और तर्क से ही काम लेना उचित होगा। वेदो के दुर्गम शिखरो से उद्गत होकर उपनिषद्, ब्राह्मण एव पुराण काल की विविध घाटियो से प्रवहमान आज के लोकमानस की समतल

भूमि पर विराजमान शैवमत की गगा को स्पष्ट रूप से अवगाहन योग्य बनाने का यह कठिन कार्य डा० यदुवशी ने जिस श्रम और नीर क्षीर विवेकिनी प्रतिभा से प्रस्तुत किया है वह सब प्रकार से समादरणीय है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के एक बडे अभाव की उन्होंने पूर्ति की है। हमें आशा है विश्वविद्यालयो की गवेषणा के क्षेत्र में उनके इस श्रम का आदर्श सुप्रतिष्ठित होगा।

शिवपूजन रचनावली (प्रथम खण्ड)—लेखक श्री शिवपूजन सहाय, प्रकाशक—बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, आकार रायल। पृष्ठ सख्या लगभग ४२५। नवीन सस्करण सन् १९५६। छपाई सफाई तथा कागज उत्तम। मूल्य ७॥) रु० सजिल्द ८॥)।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के यशस्वी लेखक श्री शिवपूजन सहाय जी की रचनाओ का प्रथम सग्रह है जो बिहार की राज्य-संस्था बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के तत्वावधान में प्रकाशित हुई है। कुछ दिनो पूर्व शिवपूजन बाबू बहुत ही अस्वस्थ हो गये थे। उनकी लम्बी बीमारी मे चिकित्सा के निमित्त बिहार सरकार ने बडी आर्थिक सहायता प्रदान की थी और उसी प्रसग में यह भी आदेश दिया था कि उनकी समस्त रचनाओ को बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित करके उसके पुरस्कार की धनराशि उन्हे पेशगी के रूप मे दे दी जाय। बिहार सरकार के इसी उदार निर्णय के फलस्वरूप बाबू शिवपूजन सहाय की समस्त रचनाओ का प्रकाशन अब उक्त परिषद् द्वारा हो रहा है।

इस प्रथम खण्ड मे तीन पुस्तके सम्मिलित है, जो पहले प्रकाशित हो चुकी हैं। (१) बिहार का बिहार, (२) विभूति तथा (३) देहाती दुनिया। प्रथम पुस्तक बिहार एव उडीसा प्रान्त का प्रामाणिक ऐतिहासिक, प्राकृतिक तथा भौगोलिक परिचय है। उसमे उक्त दोनो राज्यो की सभी प्रकार की प्रवृत्तियो का परिचय दिया गया है, और इस नये सस्करण मे, जब कि उडीसा एक अलग राज्य बन गया है, बिहार राज्य के नूतन उपलब्ध आँकडे भी दे दिये गये है जो बिहार की सब प्रकार की आधुनिक जानकारी से पूर्ण है। जिन प्रसगो मे आधुनिक परिवर्तन हुए है, उनका उल्लेख पादटिप्पणियो मे कर दिया गया है। आरम्भ मे एक उपयोगी भूमिका भी दी गई है। द्वितीय पुस्तक विभूति मे सोलह ललित कथाओ का सग्रह है। ये सभी कथाएँ अत्यन्त रोचक, भावपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यो एव रसो के परिपाक से समृद्ध है। भाषा और शैली इतनी प्राजल तथा कलापूर्ण है कि उनकी तुलना मे आज के अधिकाश सुप्रसिद्ध कथाकारो की कहानियो में नीरसता दिखाई पडने लगती है। इन सभी कहानियो मे हमारे देश के सभी वर्गों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है और इनकी समस्याएँ आज की समस्याएँ है किन्तु अन्तर यही है कि इनमें विविध समस्याओ के बीच भी कथा का रस अविच्छिन्न और प्रगाढ है। उदात्त भावनाओ की मधुरिमा पदे-पदे प्रवहमान है। अतीत के अनेक धुँधले किन्तु उपादेय ऐतिहासिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक चित्रो को, लेखक ने अपनी रससिद्ध लेखनी से जो अभिनव सौन्दर्य प्रदान किया है, वह उन्हें शाश्वत और चिरजीवी बना देता है। उनके भीतर हमारे इस गौरवशाली देश की उज्ज्वल परम्पराओ की सुरक्षा भी है और भविष्य की पीढ़ियो को शिक्षा प्राप्त करने की गूढ प्रेरणा भी है। क्या सवाद,

कथा वस्तुचित्र विशद प्रेम की मनोरम झाँकी सर्वत्र सुलभ है। एक-एक वाक्य उच्च भावनाओं और मार्मिक अनुभूतियो के मधुर भार से बोझिल है। और रेखाचित्र की तो उसमें विपुल सामग्री है। सोलहों कथाएँ सचमुच हिन्दी साहित्य की विभूति हैं। उनको रसास्वादन करके नीरस हृदय भी परितृप्ति का बोध कर सकते हैं।

तृतीय पुस्तक 'देहाती दुनिया' ठेठ देहात का एक औपन्यासिक चित्र है। बाबू शिवपूजन सहाय का यह उपन्यास उत्तर भारत के ग्रामो का एक सजीव और जाग्रत चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें ग्राम्य जीवन की मोहक झाँकियाँ बडी मार्मिकता तथा सहानुभूति से सजाई गई हैं। मानव मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियो से लेकर सामाजिक समस्याओ तक का विश्लेषण इसमें बडी निपुणता से किया गया है। इधर कुछ दिन हुए बिहार के ही एक लेखक फणीश्वरनाथ रेणु का एक आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' प्रकाशित हुआ है। हिन्दी पाठको में इस रचना ने बडा कुतूहल पैदा किया है। इसमे भी बिहार के एक अचल का समष्टिगत चित्रण है। मैं यहाँ किसी तुलना की दृष्टि से कुछ कहना अप्रासगिक समझता हूँ। किन्तु इतना कह देना अनुचित न होगा कि उक्त उपन्यास मे यदि ग्राम्य अचलो की गदगी का वीभत्स चित्र अकित करने का प्रयास किया गया है तो 'देहाती दुनिया' में हमारे गाँवो की उज्ज्वल वृत्तियो का मनोमोहक चित्रण है। सीधे सादे, भावुक ग्रामीणा की भावनाओ एवं तरगो का उन्ही के योग्य सीधी सादी अलकार एव कृत्रिमता से विहीन सरल भाषा में प्रस्तुत यह 'देहाती दुनिया' सहृदयो के लिए भी पढने की चीज है। इतना अवश्य है कि इसमे मैला आचल जैसी औपन्यासिक कला का प्रस्फुटन नही हुआ है। देहात की अज्ञानता और दरिद्रता का यह जीवन वर्णन इतना सवेग तथा अनुभूतिपूर्ण है कि अनेक बार आँखो का सजल हो जाना स्वाभाविक है।

इन तीनो अनवद्य रचनाओ का यह सग्रह बडे काम का है, और इसमे रस तथा आकर्षण इतना है कि एक बार पुस्तक को आरम्भ करके समाप्त करना ही पडता है। बाबू शिवपूजन सहाय की इन मूल्यवान कृतियो का यह सर्वांग सुन्दर प्रकाशन करके बिहार राज्य सरकार ने जो आदर्श उपस्थित किया है वह अन्य राज्य सरकारो के लिए भी अनुकरणीय है। हमें आशा है, शिवपूजन बाबू की अन्य रचनाओ के सग्रह भी इसी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत शीघ्र ही हिन्दी-पाठको के लिए उपलब्ध हो सकेंगे।

—रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

फूल बच्चा और जिन्दगी—लेखक देवेन्द्र इस्सर, प्रकाशक—साहित्य सगम, क्लाक टावर, लुधियाना, पृष्ठ संख्या १६८, कागज छपाई साधारण, मूल्य ३) रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक मे कुल सोलह कहानियाँ सगृहीत है, वैसे लेखक ने 'अपनी बात' मे इस सम्बन्ध में लिखा है कि "इस सग्रह मे मेरी दस कहानियाँ सम्मिलित हैं," लेखक की 'अपनी बात' है, कहानियाँ भी अपनी हैं, और यह सग्रह भी अपना है। वह इन सोलह कहानियों में, किन दस कहानियों को कहानी मानता है और किन शेष कहानियो को कहानी नही मानता, यह पाठक

की बुद्धि से बाहर की बात है। इस पुस्तक की सग्रहीत रचनाओ को यदि कहानी मानना ही है तो सभी रचनाएँ कहानी कही जाएँगी, अन्यथा कहानी कला का समुचित विकास इस सग्रह की कतिपय कहानियो में से ही हो पाया है।

अधिकाश कहानियाँ प्राय अभाव की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं। सामयिक समस्याओ पर प्रकाश डालती है। जिस प्रकार आज हम अपनी बाह्य स्थिति की ओट मे आन्तरिक स्थिति को गोपनीय बनाने का निष्फल प्रयत्न करते हुए अभावो की दुनिया में घुटते चले आ रहे है, वैसे ही लेखक ने कहानियो के शीर्षक की ओट मे कथावस्तु को छिपाने का प्रयत्न किया है, अर्थात् शीर्षक की राख के नीचे जो आग छिपी है, उसका परिचय कहानियो के मनन से जाना जा सकता है। अपने देश की विचारणीय समस्याएँ तो बहुत-सी है। आज के कथाकार का कर्तव्य यही पर समाप्त नही हो जाना चाहिए कि वह इन समस्याओ का परिचय रगीन भाषा में, कथा की शैली से व्यक्त कर दे। उमे थोडा और आगे बढकर उसका समाधान भी प्रस्तुत करना है। श्री इस्सर की इस सग्रह की अधिकाश कहानियाँ विषय स्थापना की दृष्टि से उच्चकोटि की होते हुए भी कोई ठोस समाधान नही प्रस्तुत कर सकी है। निष्कर्ष के अभाव मे कई कहानियाँ जो विषय प्रवेश एव विषय स्थापना मे चुटीली होती हुई भी स्थायी प्रभाव नही छोड सकी है।

आज के मनुष्य के सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ है, आज का समाज कहाँ भटक रहा है, इसका इतना सूक्ष्म ज्ञान लेखक को है, यह उसकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है। 'बाजाब्ता कार्रवाई' के नाम पर पुलिस कहाँ जा रही है, 'मकान की तलाश' मे एक किरायेदार की क्या स्थिति है, 'चनार का पेड' की आड में किसी अभावग्रस्त बेकार युवक की क्या स्थिति है, 'रोने की आवाज' में बेकारी की कितनी घनीभूत पीडा छिपी हुई है, और हम जिन्हे 'जेब कतरे' समझ रहे हैं वह भी कभी कितने सहृदय हो सकते है, वह इन शीर्षको से लिखी गयी कहानियो मे पठनीय है।

अपनी इन कहानियो के लिए लेखक ने जिस भावभूमि का अवलम्बन किया है वह यत्र तत्र सर्वत्र दिखाई दे रही हैं। देखने के लिए मात्र सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है। यह प्रसन्नता की बात है कि श्री इस्सर जी को इस पर्यवेक्षण मे पर्याप्त सफलता मिली है। नपी तुली भाषा मे कथानक की वास्तविक सृष्टि कर एक कुरुचिपूर्ण वातावरण को भी सुरुचिपूर्ण बनाने का उनका प्रयास प्रशसनीय है। स्थायी प्रभाव के लिए इन कहानियो का निष्कर्ष और भी सवेदनात्मक होना चाहिए था, फिर भी उक्त सग्रह पठनीय है और पाठक का समय व्यर्थ नही होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। पुस्तक का कलेवर सुन्दर है किन्तु छपाई और कागज को देखते हुए मूल्य अधिक है।

लोकमान्य तिलक—लेखक पाण्डुरग गणेश देशपाण्डे, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रस्तावना लेखक, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, पृष्ठ सख्या २२२, छपाई, कागज सुन्दर। मूल्य २॥)।

लोकमान्य तिलक के नाम से हम भारतवासी अपरिचित नही हैं। भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के इस आदिम सेनानी का नाम युग युगो तक अमर रहेगा। पराधीनता की बेड़ी को छिन्न-

भिन्न करने के लिए, अपने कोटि-कोटि भाइयों को स्वतन्त्र कराने के लिए, 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' तथा 'ये यथामा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहं' के आधार पर प्रति सहयोग की, दीक्षा देने के लिए लोकमान्य को किन-किन विषम परिस्थितियो का सामना करना पडा था, उन्हें मृत्युपर्यन्त कितनी भीषण यन्त्रणाएँ सहनी पडी थीं, इसका वास्तविक विवेचन स्यात् एक स्थान पर अभी तक नही हो सका था। यह हमारे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जायगा ? लोकमान्य की गत शतवर्षीय जयन्ती पर सस्ता साहित्य मण्डल ने उनकी यह प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित कर एक स्तुत्य प्रयास किया है, और उसने उस कमी की पूर्ति की है जिसकी पूर्ति बहुत पहले हो जानी चाहिए थी।

प्रस्तुत जीवनी से जहाँ एक ओर लोकमान्य के परिवार के साथ-साथ उनके जीवन के प्रमुख क्षणो का परिचय मिलता है, वहाँ प्रोफेसर कर्वे, प्रोफेसर छत्रे, महामना रानडे एवं कठिन अध्यवसाय तथा अभावो की चक्की में पिसते हुए भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले और मौज की जिन्दगी का त्याग कर लोक सेवा करने वाले श्री आगरकर जैसे प्रख्यात महापुरुषो का भी परिचय मिल जाता है। निश्चय ही इससे जिज्ञासु जनो एव छात्रो को एक प्रेरणा मिलेगी। उक्त जीवनी जहाँ एक ओर भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम का एक प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत कर रही है, वही शिक्षा एव सामाजिक सुधार की एक रूपरेखा भी प्रस्तुत कर रही है। महामना तिलक स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए राजनैतिक उन्नयन के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते थे। सौभाग्य की बात है कि उन्हें इस क्षेत्र मे आगरकर, श्री विष्णु स्वामी चिपलूणकर जैसे महान् त्यागियो का सहयोग मिल गया था। उनके मित्र आगरकर का तो यह स्पष्ट विचार था कि 'मुझे तो शिक्षक ही बनना है, और वह सिर्फ दक्षिणा लेने के लिए नही बल्कि इसलिए कि मैं ऐसी शिक्षा दे सकू, जिसमे लोगो मे स्वतन्त्रता से विचार करने की शक्ति पैदा हो और वे अपनी उन्नति का मार्ग देखने लगें।' उन्होने एम० ए० करने के बाद अपनी माँ को पत्र लिखा था कि 'मैंने तो निर्वाह के लायक वेतन लेकर अपने अज्ञानी देशबन्धुओ को ज्ञान देने का कार्य शुरू करने का सकल्प किया है।' प्रस्तुत जीवनी से ऐसी प्रेरणादायक बहुत-सी सूक्तियो का चयन किया जा सकता है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यदि पुस्तक एक जीवनी मात्र नही है प्रत्युत ऐसी-ऐसी प्रेरणाओ का स्रोत है जिसका अवलम्बन कर हम अपनी जीवन यात्रा सफल बना सकते हैं।

जीवनी लिखने के लिए जिस निष्पक्षता एव जानकारी की अपेक्षा होती है, उसका परिचय प्रस्तुत पुस्तक मे सर्वत्र मिलता है। लेखक ने लोकमान्य के सम्बन्ध की छोटी-छोटी घटनाओ का भी चयन बडी सजगता से किया है। सामान्यत जीवन कथा अपने नायक का ही वर्णन करती है, किन्तु लोकमान्य की यह जीवनी उनके साथ-साथ उस युग के अधिकांश महापुरुषों का भी समयानुसार सूक्ष्म परिचय उपस्थित करती है, यह इसकी विशेषता है। लिखने का ढग इतना सुन्दर है कि एक ही अवतरण बार-बार पढ़ने पर भी मन के ऊपर भार नहीं पडता। लोकमान्य की नीतियो के एक-एक सूत्र पर अब तक भाष्य

बन जाना चाहिए था, यह जीवनी उस भाष्य की भूमिका होगी और आगे के लिए उसका मार्ग प्रशस्त करेगी।

गान्धीजी की संक्षिप्त आत्मकथा—सक्षेपकार—मथुरादास त्रिकम जी, अनुवादक—काशीनाथ त्रिवेदी, प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृष्ठ सख्या २६०, मूल्य केवल बारह आने मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक आत्मकथा का सक्षिप्त सस्करण है। आत्मकथा के रूप में महात्माजी ने अपने उन प्रयोगो का वर्णन किया है, जिनका उपयोग अपने गत जीवन मे स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानी के रूप मे किया था। उनकी यह मान्यता थी कि 'मैने सत्य के जो अनेक प्रयोग किये है, उन मेरे सभी प्रयोगो का समुदाय जनता के पास हो।' वह मानते थे कि 'जो एक के लिए शक्य है, वह सब के लिए शक्य है'। इस कारण मेरे प्रयोग खानगी नही हुए, नही रहे। उनकी यह इच्छा थी कि मेरे द्वारा प्रयुक्त किये गये सत्य के प्रयोगो को लोग समझे, उसके तथ्यातथ्य का विवेचन कर उसे अमल मे लाने योग्य समझे तो तदनुकूल अपनाएँ। उनकी इस इच्छा की पूर्ति प्रस्तुत सस्करण भलीभाँति करेगा।

नाममात्र के साधारण परिवर्तनो के साथ इस सक्षिप्त आत्मकथा का रूप वही है जो आत्मकथा का है, अर्थात् यत्र तत्र केवल अध्यायो का नामकरण या सन्दर्भ जोडने के अतिरिक्त सम्पूर्ण शब्दावली आत्मकथा की ही है। इस सक्षिप्तीकरण का उद्देश्य यही है कि सुलभ मूल्य मे यह पुस्तक प्रत्येक शिक्षित के हाथो में पहुँचायी जा सके। आज के समस्त मानव समाज की प्रेरणा के लिए इसकी आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति नि सन्देह इस सस्करण मे हो जायगी।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर ने समयानुसार यह कदम उठाकर देश का अत्यधिक उपकार किया है, दो सौ पृष्ठो की पुस्तक का मूल्य बारह आना अत्यल्प है। हमारा अनुरोध है कि गान्धी-वादी विचारधारा के विरोधी भी एक बार इसे देखे, नवयुवको एव ऐसे व्यक्तियो के लिए जो आज किकर्तव्य विमूढ हो रहे है, इस पुस्तक से सात्त्विक प्रेरणा मिलेगी। इतने सुलभ मूल्य पर आत्मकथा का प्रकाशन कर प्रकाशक ने प्रशसनीय कार्य किया है।

परिवार नियोजन—लेखक अत्रिदेव विद्यालकार, प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी। आकार रायल साइज, पृष्ठ सख्या ११२, कागज, छपाई सुन्दर, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) रुपया।

परिवार नियोजन की समस्या आज देश के सामने ही नही अपितु ससार के सामने एक विभीषिका के रूप मे खडी है। जिस द्रुतगति से जनसख्या की वृद्धि हो रही है, उसके भरण पोषण की व्यवस्था इस मशीन के युग मे कैसे सम्भव हो सकेगी? इससे सभी विचारक सत्रस्त हैं। दुनिया के प्राय अधिकाश वैज्ञानिको का ध्यान इस ओर खिच गया है और परिणामस्वरूप उन्होंने परिवार नियोजन के लिए अनेक उपायो का सर्जन किया है। अपने देश के लिए तो यह समस्या

और भी भयावह होती जा रही है। आज प्राय सभी राज्यो मे इसे अपने हाथ मे ले रखा है। स्थान-स्थान पर इसके लिए शोधशालाएँ खुल रही हैं। प्रचार पुस्तिकाएँ वितरित की जा रही हैं और नि शुल्क सलाह देने की व्यवस्था की गयी है। किन्तु यह छिपा नही है कि इन सभी आयोजनो में पाश्चात्य प्रणाली की ही प्रमुखता है, जो सन्देहास्पद नही है, ऐसा नही कहा जा सकता। आचार्य अत्रिदेव ने उक्त पुस्तक के माध्यम से पाश्चात्य एव पौर्वात्य प्रणालियो का तुलनात्मक विवेचन कर एक सन्देह रहित समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, जो बहुत कुछ हमारी रुचि एव प्रकृति के अनुरूप है।

प्रस्तुत पुस्तक मे परिवार नियोजन के ऊपर कब, क्यो और कैसे इन विचार सरणियो के माध्यम से विचार किया गया है। विद्वान् लेखक ने प्रारम्भ मे सन्तानोत्पत्ति की महत्ता के विषय मे, अपने धार्मिक ग्रन्थो, उपनिषदो एव सस्कृत साहित्य के अन्यान्य काव्य ग्रन्थो की विचार सूक्तियो के आधार पर अपना मत व्यक्त किया है, पश्चात् सन्तति-निरोध के इच्छुक व्यक्ति की जानकारी के लिए जननेन्द्रिय अवयवो का सचित्र वर्णन किया है। बाद के पाच अध्यायो में सन्तति निरोध के आधुनिक उपाय, अपूर्ण सम्भोग जैसे कुछ स्वय के उपाय तथा इनसे होनेवाली हानियो की व्याख्या की गयी है। अन्तिम दो अध्यायो मे सन्तति नियमन के घरेलू उपचार तथा उपायो की समीक्षा के ऊपर विचार किया गया है। सम्पूर्ण पुस्तक भारतीय विचारधारा से ओत-प्रोत है और इस विषय मे आयुर्वेद विज्ञान का क्या विचार है यह सरस एव सरल शैली में व्यक्त किया गया है।

आयुर्वेद विज्ञान की जो दुरवस्था आज है उसका एक कारण हमारी अज्ञानता भी है, आयुर्वेद के साथ-साथ अन्यान्य औषधि प्रणालियो का भी ज्ञान रखने वाले कितने लोग है? आयुर्वेद का ही समुचित ज्ञान रखने वाले बहुत कम लोग है, और जो हैं वह इसे सम्भवत अपने तक ही रखना चाहते है या नवीनतम् शोधो की ओर उनकी रुचि नही है अत वह प्रचार क्षेत्र मे आते ही नही। यह प्रसन्नता की बात है कि अत्रिदेव विद्यालकार को जैसी बहुमुखी प्रतिभा मिली है तदनुसार उनका अध्यवसाय भी जागरूक है, सस्कृत साहित्य के अनेकानेक प्रचलित अप्रचलित ग्रन्थो का दोहन कर हिन्दी भाषा मे आयुर्वेद विज्ञान सम्बन्धी उनके कई ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके है। प्रस्तुत पुस्तक उसी पुष्पस्तवक की एक कणिका है। प्रश्नोत्तर की शैली मे सामान्य प्रश्न को निरन्तर विकचशील बनाते रहने की पद्धति लेखक की अपनी निजी विशेषता है। सन्तति नियोजन के साथ-साथ पाठक को इस पुस्तक से और भी कितनी ऐसी बातो की जानकारी हो जावेगी, जिन पर हमारे ऋषि मुनियों की मनीषा निरन्तर विचार करती रही है। हमारा विश्वास है कि इसकी मनोमोहक लेखन शैली से प्रभावित होकर पाठक, एक बार प्रारम्भ कर अन्त तक पढ़ेगे और यह अनुभव करेगे कि आयुर्वेद विज्ञान एक उत्तम विज्ञान है जिसका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

—रामकीर्ति द्विवेदी

पावन प्रकाश (नाटक)—रचयिता श्री रामाश्रय दीक्षित, प्रकाशक—अखिल भारत सर्व-सेवा संघ, वर्धा, पृष्ठ संख्या ५३, कागज बढिया, छपाई सुन्दर। मूल्य चार आना।

'पावन प्रकाश' आचार्य विनोबा भावे के भूदान यज्ञ तथा सर्वोदय के सिद्धान्तो को लेकर लिखा हुआ एकाकी नाटक है। इसमें छह दृश्य है। रचना में नाटकीय विधान की कुशलता की ओर अधिक ध्यान नही दिया गया है, केवल भूदान यज्ञ के रहस्य को जनता के सामने स्पष्ट करने का सीधा प्रयत्न है। साधारण बोलचाल की भाषा और स्थल-स्थल पर सरल छन्दो के प्रयोग के कारण नाटक जनता के लिए आकर्षक है। पात्रो का चरित्रचित्रण मनोवैज्ञानिक स्तर पर न करके रचयिता ने उन्हें उद्देश्य के अनुसार जैसा चाहा है, नाटक मे स्थापित कर लिया है।

नाटक का नायक सरोज पढा लिखा नवयुवक और एक धनीमानी सेठ का लडका है। वह स्वय पहले अपने पिता को अपने चमार हलवाहे को अपनाने के लिए बाध्य करता है। पुन गाँव के अनाचारी रईस, डाकू, गिरहकट और चोर भी उसकी प्रेरणा से सन्त विनोबा के सर्वोदय मार्ग पर आ जाते है। इस प्रकार यह नाटक शिक्षित नवयुवको के लिए पठनीय तथा आचरणीय है।

विदुलोपाख्यान (खण्डकाव्य)—लेखक श्री भगवतशरण चतुर्वेदी, प्रकाशक—रामप्रसाद एन्ड सन्स, अस्पताल रोड, आगरा। पृष्ठ सख्या १०८, कागज बढिया, छपाई बहुत सुन्दर, रगीन आवरण। मूल्य एक रुपया।

प्रस्तुत काव्य महाभारत की एक प्रसिद्ध कथा को लेकर लिखा गया है, जिसमे सिधु-राज से पराजित होकर लौटे हुए क्षत्रियकुमार सजय को उसकी माता विदुला ने बहुत लज्जित किया है और युद्ध से विमुख होकर भाग आने की भर्त्सना करते हुए उसने पुत्र के हृदय मे जागृति तथा साहस का सचार किया है। माता के उद्बोधन मे सजय पुन युद्धभूमि मे गया और शत्रु को विजय करके लौटा। कथानक का तथ्य तो वैसे ही माताओ और पुत्रो के लिए अनुकरणीय है पुन लेखक ने इसे हिन्दी मे काव्य का रूप देकर और भी आकर्पक तथा सुरुचिपूर्ण बना दिया है। काव्य मे स्थान-स्थान पर राष्ट्रीयता के अनुकूल नये भाव और विचार भी अभिव्यजित हुए है।

कवि ने काव्य को कुल सोलह छोटे-छोटे प्रकरणो मे विभक्त किया है। प्राय सोलह मात्राओ के एक ही छद का आदि से अन्त तक प्रयोग हुआ है। भाषा सरल और सुबोध है। शैली साधारण तथा छन्द का गठन कही-कही शिथिल है। कही केवल चरणपूर्ति की विवशता में ही शब्द विशेष का प्रयोग हुआ है। फिर भी सब मिला कर कथानक को काव्यरूप देने मे लेखक का प्रयास सफल है और यह कृति साधारण जनता की रुचि तथा ज्ञान के पूर्णतया अनुकूल है।

बुद्धि के ठेकेदार (हास्य और व्यग्य निबन्धो का सग्रह)—लेखक—श्री वासुदेव गोस्वामी, प्रका-शक—गोस्वामी पुस्तक सदन, जानकी पार्क रोड, रीवा। पृष्ठ सख्या ८१, कागज अच्छा। मूल्य एक रुपया चार आना।

प्रस्तुत निबन्ध सग्रह हास्यरस का साहित्य है, हिन्दी मे इस साहित्य रचना की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। यदि ध्यान दिया भी गया तो कुछ इने गिने लेखको को छोड़कर शेष ने हास्य के नाम पर केवल अश्लीलता, कुरुचि तथा विडम्बना का ही प्रश्रय लिया है, उनमे परिष्कृत हास्य के छीटे बहुत कम मिलते है। गोस्वामी जी के हास्यरस के ये निबन्ध इस दृष्टि से बहुत ही सराहनीय है, उन्होने अपने साहित्य की कमी को पूरा किया है। इन निबन्धो में सुरुचि-पूर्ण तथा परिष्कृत हास्य मिलता है, साथ ही इनमे जीवन के किसी न किसी सत्य की ओर हम इगित भी पाते है। लेखक ने अपने निबन्धो को पृष्ठभूमि के लिए लोकजीवन समाज के दुर्व्यसन, नैतिकता का ढोग, साहित्यचर्चा, रूढियो और आडम्बरों के प्रदर्शन आदि आधार ढूंढ निकाले है।

भाषा का प्रवाह स्वाभाविक है। वह व्यर्थ के आडम्बर से मुक्त है। सस्कृत और अग्रेजी के शब्दो को लेकर लेखक ने व्यग्य और हास्य का अच्छा निर्वाह किया है। वाक्य प्राय छोटे-छोट ही है। शैली सुबोध और परिमार्जित है। जिससे एक ओर तो हास्य रस के छीटे बिखर उठने है और दूसरी ओर हृदय अर्थ की गहराई का भी अनुभव करता चलता है।

पुस्तक मे कुल चौदह निबन्ध सगृहीत है और प्रारम्भ मे पुस्तक के विषय के अनुकूल 'टेडर नोटिस' नाम से श्री विद्यानिवास मिश्र का एक प्राक्कथन भी है। 'क्या करूँ', 'सदेश और साहित्य पूर्ण' तथा 'यशोजीवी चम्पूकार सघ' निबन्धो में अनधिकारी साहित्यकारो के ऊपर लेखक ने अच्छा व्यग्य किया है। 'स्वागताध्यक्ष का भाषण' तथा 'मर्यादा वीर' निबन्धो मे नैतिक ढोगो का उद्घाटन बडी बारीकी से बन पडा है। प्राय प्रत्येक निबन्ध हास्यरस के सृजन के साथ अपनी एक अलग विशेषता भी रखता है। इस पुस्तक के द्वारा हिन्दी का हास्य साहित्य समृद्ध हुआ है, इसमे कोई सन्देह नही। हास्य के उच्चकोटि के साहित्य के साथ इस रचना की भी गिनती की जायगी।

किन्तु पुस्तक की छपाई ठीक नही है। छपाई मे न तो सुस्पष्टता है और न शुद्धता। प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियाँ तो बहुत सी है। आशा है इसका दूसरा सस्करण इन दोषो से मुक्त होगा।

बालवीर कृष्ण (नाटक)—लेखक—श्री रघुवीर शरण 'मित्र', प्रकाशक—भारतीय साहित्य-प्रकाशन, २३२, स्वराज्य पथ, सदर मेरठ। पृष्ठसख्या ७६, दफ्ती का और रगीन आवरण, बढ़िया कागज तथा १६ प्वाइट की सुन्दर छपाई। मूल्य १)

प्रस्तुत नाटक 'मित्र' जी ने बाल साहित्य के उद्देश्य से लिखा है। अत इन्होने इसको रोचक तथा उपदेशक बनाने का प्रयत्न किया है। नाटकीय विधानो का उतना पालन नही है, जितना होना चाहिए, रगमच पर ही युद्ध तथा वध आदि दिखाये गये हैं। साथ ही सवादो मे विषय की पौराणिकता का ध्यान नही रखा गया है। नाटक तीन अको मे विभाजित है, इसमें कृष्ण के गोपाल जीवन से लेकर मथुरा मे कस के वध तक की कथा ली गयी है।

नाटक मे, गाय पालने, कृष्ण के माखन चुराने, प्रलम्ब, शखचूड आदि के दमन-सम्बन्धी कृष्ण के बाल जीवन की अनेक कथाओ को जो राष्ट्रीय रूप दिया गया है निस्संदेह वह बहुत प्रशस-

नीय है। कृष्ण माखन इसलिए चुराते हैं कि माखन और दही गोकुल से ढो ढोकर मथुरा के अधिपति कस के लिए चला जाता है, इस प्रकार कम गोकुल की इस सम्पत्ति का शोषण कर रहा है। अत जो दही-मक्खन उसके लिए भेजा जाता है कृष्ण अपने साथियो के साथ उसे लूट लेते हैं और कस को यह शोषण बन्द कर देने की चुनौती देते है। कस अपने वीरो को कृष्ण का दमन करने के लिए भेजता है, कृष्ण उन्हे पराजित करते है। अन्त मे मथुरा जाकर कस का भी वध कर लोक-जीवन को निर्भय कर देते है। कृष्ण की जनहित भावना, गाय पालने का आदर्श तथा उनका साहस और विक्रम बालको के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

गीलेगीत (गीतसग्रह)—रचयिता—श्री रघुवीरशरण 'मित्र', प्रकाशक—भारतीय साहित्य प्रकाशन, २३२, स्वराज्य पथ, सदर मेरठ। पृष्ठसख्या ११२, कागज और छपाई अत्युत्तम, सजिल्द, कलात्मक चित्रपूर्ण मुखपृष्ठ। मूल्य २॥)

'मित्र' जी बराबर कुछ न कुछ हिन्दी-साहित्य को देते रहते हैं। 'गीले गीत' इनका नया गीत सग्रह है किन्तु लेखक ने उन्ही पुरानी भाव-पद्धतियो को अपने शब्दो मे बाँधने का प्रयत्न किया है, जो इधर तीस वर्षों से अनेको गीतकारो द्वारा हिन्दी-साहित्य मे व्यक्त होती रही है। विशेषता यह है कि प्रस्तुत गीतकार शब्द वैचित्र्य और तुकबन्दियो की ओर अधिक सजग रहा है। अत ये गीत महफिल में वाद्यध्वनियो के साथ गाये जाने पर लोगो के कठ से वाह-वाह तो जरूर कहला सकते हैं। किन्तु किसी काव्य-रसिक सहृदय को अपने मे तल्लीन करने का कोई तत्त्व इन गीतो में नही है। गीतो मे लेखक की व्यक्तिगत कल्पनाओ की उडान है, मानवहृदय के सामञ्जस्य की अभिव्यञ्जना नही। सग्रह मे कुल ५१ गीत है । प्रसिद्ध कवि हरिवशराय 'बच्चन' की प्रारम्भ मे एक भूमिका है।

इस प्रकार के भावना रगे गीत, जो हमारे साहित्य मे सस्कृत एव हिन्दी के समर्थ कवियो द्वारा लिखे गये है, प्रकृति-सौदर्य, देश-प्रेम अथवा आध्यात्मिक जगत् को किसी न किसी रूप से आलम्बन लेकर आये है और उस आलम्बन की सश्लिष्टता ने गीतो को गम्भीर, सरस तथा प्राणवान् बनाया है। जिन कवियो ने इस मार्ग को अपनाया है उनके गीत जनमानस के अन्तराल को रमाते आ रहे है। पर 'मित्र' जी के गीतो मे हमे इस परम्परा का आभास नही मिलता।

'मित्र' जी कही तो रीतिकालीन भाव-पद्धति का विकृत अनुकरण करते दिखायी देते है (चाहे यह भूल से ही हो) और कही शब्दो के आडम्बर मे शब्दो का गीत लिखते है, भावो का नही। तेरहवे गीत में—

चाँद गया फिर तारे क्यो है ?
अम्बर में अगारे क्यो है ?
टूट चुके नक्षत्र चाँद तू भी जा;

इस पद के लिखने का तुकबन्दी के अतिरिक्त दूसरा अभिप्राय समझ में नही आता।

कही भाव अभिधा शक्ति मे ही सिमटकर रह गये है, वे अभिव्यंजित होने की शक्ति नही प्राप्त कर पाते—

मुखर हो जाओ गगन के मौन तारो!
भेद अम्बर के हृदय का खोल भी दो!
रूप के अपलक पुजारी! बोल भी दो!
प्यार के दो बोल पृथ्वी पर उतारो।

इन पदो मे रूप के अपलक पुजारी के आराध्य की व्यजना वहाँ उलझ जाती है जहाँ शीघ्र ही पृथ्वी पर प्यार के दो बोल उतारने की बात कही जाती है। इतना निश्चित है कि तारो का वह आराध्य अम्बर मे है, पृथ्वी पर नही, तभी तो पृथ्वी पर प्यार के दो बोल उतारने की बात कही जा रही है। परन्तु केवल रूप के अपलक पुजारी कह देने मे न तो आराध्य के किसी अप्रतिम रूप की भावना हृदय मे आती है और न पृथ्वी पर प्यार के बोल की मूल्यवान होने की बात हृदय के तर्क मे बैठती है। इसी प्रकार कही-कही दार्शनिकता के अल्हड प्रयोग से भी गीत भ्रमात्मक रह गये है। फिर भी 'अनुकूलो से दूर हुआ मान, प्रतिकूलो से प्यार हो गया' और 'तुमने गाया गीत कही से मेरी नौका पार आ गई' जैसे कुछ गीत अच्छे भी बन पडे है। यदि 'मित्र' जी शब्द और तुक के वैचित्र्य मे न पडे होते तो गीतो की रचना अधिक सफल होती।

चक्रव्यूह—लेखक—श्री कुवर नारायण, प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई। पृष्ठसख्या डिमाई साइज १२८, कागज और छपाई अत्युत्तम, सजिल्द। मूल्य तीन रुपये आठ आने।

'चक्रव्यूह' श्री कुवरनारायण की लिखी हुई ७१ कविताओ का सग्रह है। वस्तुत इन्हे कविता न कहकर ऐसी पहेलियाँ कहे तो ज्यादा अच्छा होगा, जिन्हे लेखक के व्यक्तिगत असन्तोष तथा विविध अभिलाषाओ ने अपने नाम पर समाज तथा साहित्य क्षेत्र में क्रान्ति लाने के लिए अपनी कल्पना मे उतारा है। इन कविताओ के मूल्याकन के लिए कविता का और हमारे कविता-विषयक दृष्टिकोण का नया मापदण्ड चाहिए। क्योकि सग्रह की कविताएँ अबतक की कविता की परम्परा में नही आती। न केवल शैली और विषय ही नये अनगढ गढे हुए है वरञ्च भावना की अभिव्यक्ति भी सहृदयजनो की अबतक की भावपरम्परा से मेल नही खाती। लेखक ने प्रारम्भ मे अपनी कविता के विषय मे 'माध्यम' नाम से एक प्राक्कथन भी दिया है, उसका कुछ मुख्य अश यह है—

'चाँद और सूनी रातो का बूढा ककाल,
कुछ मुर्दा लकीरे,
कुछ गिनी चुनी तसवीरें,
जो मै तुम्हें देता हू

पुरानी चौहद्दी की सीमा रेखायें है,
मै ससार को नगा ही नही करता,
बल्कि इस अस्तित्व को दूसरे अर्थों मे भी प्रकाशित करता हूँ'

इन पक्तियो से कवि के दृष्टिकोण का भली भाति पता चल जाता है। कविताएँ प्राय ऐसी ही हैं जिनमे लय और प्रवाह का ध्यान नही है। अथवा यदि कही तुकान्त किवा मात्रिक छन्द लिखे गये है तो उनमे यतिभग की परवाह नही है। पूरा सग्रह पढने के बाद लेखक के भावना-दारिद्रय के साथ शब्द की दरिद्रता का भी अच्छा-सा सार्टिफिकेट सामने आता है। जहाँ कविता अबतक हृदय में आनन्द का सृजन और लोक मे मगल विधान का कार्य करती आयी है, वहाँ इस सग्रह का कवि एक ओर बूढा ककाल और मुर्दा लकीरे उपस्थित करता है तो दूसरी ओर ससार को नगा करने मे अपने अस्तित्व की अभिव्यक्ति समझता है।

प्रस्तुत पदो मे बूढा, मुर्दा और नगा शब्द जिन भावनाओ से प्रयुक्त किये गये है, उस भावना का बोध इन शब्दो द्वारा कराना अभिव्यक्ति को बीभत्स करना है। न ककाल बूढा होता है, न लकीरे मुर्दा और न ससार को कोई नगा कर सकता है, इतना जानने के बाद किस शब्दशक्ति द्वारा इसका ठीक अर्थ निकलेगा नही कहा जा सकता। आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है कि व्यग्य-व्यजक शब्दो के सुष्ठु प्रयोग का अच्छा परिज्ञान ही कवि के कवि की कसौटी है और इसीलिए आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'तावद् हि वह्निर्भवनेत्र जन्मा भस्मावशेष मदन चकार' कालिदास के इस पद मे 'भव' शब्द के प्रयोग को अनौचित्य घोषित किया है तथा आचार्य मम्मट ने शिव के पर्यायवाची कपाली और पिनाकी शब्दो के प्रयोग का विवेक निर्धारण किया है। यह भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा है। 'चक्रव्यूह' के रचयिता ने शब्दो के प्रयोग की परम्परा कहाँ से अपनायी है अथवा स्वय क्या मापदड रक्खा है इसका कुछ पता नही चलता, पर इसी कारण उनकी कविताओ का समस्त अर्थ अस्तव्यस्त है। यहाँ तक ये लिखते हैं कि इनके शब्द असन्तुष्ट है—

मेरे असन्तुष्ट शब्दो को लो
और कला के इस विदीर्ण पूर्वग्रह मात्र को
सौन्दर्य का कोई नया कलेवर दो,
(क्योकि यही एक माध्यम है जो सदा अक्षुण्ण है)

शब्दो के असन्तुष्ट होने के कारण से कवि उनका ठीक प्रयोग नही कर पा रहा है। पर जो अभी मुर्दा लकीरें थी, उन्हे वह अक्षुण्ण भी कहता है, (क्योकि कला प्राचीन या नवीन कोई भी हो, उसमें सौन्दर्य है और सौन्दर्य अक्षुण्ण है)। इस विरोधाभास से हम कवि की प्रतिभा का पौरुष समझ सकते हैं।

पुरानी चौहद्दी की सीमा रेखा पर खडे होकर कवि ने जहाँ ढलती मिट्टी, मुर्दा, बटोरा, कटोरा, गदोलियाँ जैसे नयी चौहद्दी के शब्दो का प्रयोग किया है वहाँ उसे स्मृतिमणि, कारक, पूर्वग्रह, अक्षुण्ण जैसे अन्य कितने 'उपक्रम और व्यतिक्रम' मे भी उलझे रहना पडा है। भाषा

और व्याकरण की दृष्टि से बहुत से अशुद्ध प्रयोग भी किये गये हैं। मृत्यु उपरि के लिए 'मृत्योपरि' शब्द बडा हास्यपद है, मर्त्योपरि होता तो कोई बात नही थी। इसी प्रकार 'कैसी चेतना का', 'जो कि तुमसे जागनी है', 'मृग ने हताश आकाशो मे जीवन त्यागा' आदि बहुत से प्रयोग भाषा की दृष्टि से उलझनें पैदा करते है। कही तो तुकबन्दी का त्याग और कही तुकबन्दी के लिए उहुँक और चिहुँक का प्रयोग, 'सीली-सी आर्द्रता' कहकर आर्द्रता का 'तपती-सी' एक दूसरा भी भेद करना, आदि जैसी बाते कविता के अन्तर्गत नही, पहेली के अन्तर्गत ही आती है।

'टपकती बूदें' जैसी कुछ कविताएँ 'निराला' जी की शैली का अनुकरण मात्र है। 'मिट्टी के गर्भ', 'अक्षर' जैसी कविताएँ कोरा प्रलाप है एव 'मै था । न था ?' दो शब्दो के चरणोवाली कविता प्रेतकाव्य के आचार्य तथा छन्दशास्त्र के पडित कवि केशवदास की पुरानी चौहद्दी की ही है। क्रिया पदो से शून्य केवल कारक पदो से अर्थ का इगित करने वाली 'एक दिन' नाम की नविता उस प्राचीन युग की भाषा मे कविता करने का प्रयोग है जब पदस्फोट का विकास नही हुआ था, भाषा वाक्यात्मक थी। अथवा हजार वर्ष आगे के युग की भाषा मे लिखी गयी कविता है, जब विज्ञान का पुतला मनुष्य अधिक न बोलकर एक शब्द से ही वाक्य का काम चलायेगा। यदि कारक पदो का प्रयोग न करके केवल क्रियापदो का ही प्रयोग किया गया होता तो यह शका न पैदा होती।

हाँ, पूरा सग्रह पढने के बाद कवि की प्रतिभा मे सन्देह नही रह जाता, उसका उपयोग वह चाहे जैसे करे। अत 'ओस न्हाई रात', 'गिद्धो की बस्ती में', 'अभिवादन' तथा 'चक्रव्यूह' जैसी आठ-दस कविताएँ निस्सदेह सुन्दर बन पडी है। पर 'चक्रव्यूह' का रूपक कवि की प्रतिभा के अनुकूल न होकर पुरानी चौहद्दी की जीवित लकीरो पर है तथा उसी को लेकर सग्रह का नामकरण लेखक के शब्द की गरीबी तथा विचार की भ्रान्ति प्रकट करता है। हम कवि की प्रतिभा का शतश आदर करते है तथा उससे यह आग्रह रखते है कि वह देश की परम्परा मे तथा जनता की भाषा एव भाव की सीमा के भीतर अपनी कवि प्रतिभा का उपयोग करे तो साहित्य का बडा हित होगा।

—जयशङ्कर त्रिपाठी

विनोबा-साहित्य

क्रान्ति की ओर—लेखक—श्री कुसुम देशपाडे, प्रकाशक—अखिल भारत सर्वसेवा-सघ प्रकाशन, राजघाट, काशी। पृष्ठसख्या—१८०, सचित्र, मूल्य—एक रुपया।

क्रान्ति की राह पर—लेखिका—श्री निर्मला देशपाडे; प्रकाशक—वही, पृष्ठसंख्या—१७६। मूल्य—एक रुपया।

सत्संग—लेखक—श्री सुरेशराम भाई, प्रकाशक—वही; पृष्ठसंख्या—१२०; मूल्य आठ आने।

भारतीय ऋषि-शृंखला मे विनोबा आधुनिक कडी जैसे है। उपनिषद् के ऋषि की वाग्धारा उनमें फूटकर बहती है। आत्मस्थ, समाधिस्थ की भाति वह बोलते है। गाधीजी के सर्वोदय-दर्शन को उन्होने भारतीय वाङ्मय एव चिन्तन के गम्भीर अध्ययन और मनन से प्रकाशित ही नही किया है वरन् नित्य-नूतन प्रयोगो से उसे जीवन्त और शक्तिमान भी बनाया है। एक दुबला पतला, कैसर का रोगी जिसमे ज्ञान भक्ति की वाणी में बोलता है और जिसमे भक्ति कर्म की शोधशाला मे नित्य परिष्कृत और चेतन होती रहती है, ऐसा है विनोबा, जो गांधी के बाद ससार को एक नया जीवन-दर्शन, जो मानवता का गौरव है, दे रहा है।

'क्रान्ति की ओर' मे विनोबा की वगभूमि-यात्रा के तथा 'क्रान्ति की राह पर' में उत्कल-यात्रा के पावन-प्रसंगो का वर्णन है। देशपाडे भगिनियो की शैली अत्यन्त सरस तथा हृदयग्राहिणी है। दोनो ने कवि-हृदय पाया है और विविध प्रसगो का मनोरम चित्र खीचने मे सफल हुई है। सुरेशराम भाई मँजे हुए लेखक—विशेषत 'क्रानिकलर'—है। उनकी छोटी पुस्तक में चुने हुए बारह प्रसगो का चित्राकन है।

ये पुस्तकें जीवन को दृष्टिदान देने वाली है और विनोबा के भूमिदान को ठीक-ठीक समझने के लिए इनका अध्ययन आवश्यक है।

गांधी-साहित्य

१ **बुनियादी शिक्षा**—ले०—गाधी जी; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृष्ठसख्या—१८०। मूल्य—डेढ रुपया।

२ **वर्ण व्यवस्था**—ले०—गाधीजी, प्रकाशक—वही—पृष्ठसख्या—१८४ मूल्य—डेढ रुपया।

गाधीवाद अथवा सर्वोदय एक विशेष जीवन-दृष्टि है। शिक्षा, समाज, राजनीति, धर्म प्रत्येक क्षेत्र में गाधीजी की अपनी एक देन है। जीवन के हर पहलू को उन्होने स्पर्श किया है। शिक्षा के क्षेत्र मे उनकी नवीन धारणाओ ने एक क्रानिकारी विचार को जन्म दिया और शिक्षा, जो जीवन से दूर पड गयी थी उसे जीवन के बीच से प्रस्फुटित होने का अवसर दिया। आप उससे सहमत हो या असहमत पर उसकी देन से कोई इन्कार नही कर सकता। नवीन सन्तति की शिक्षा की कोई राष्ट्रीय योजना बनाते समय गाधीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचारो पर ध्यान देना ही पडेगा। जो लोग गाधी तत्त्वज्ञान की सर्वग्राही पकड को समझना चाहते है या जो शिक्षा-क्षेत्रो मे नवीन प्रकाश पाने और लाने को विकल है उनके लिए इस पुस्तक का अध्ययन अनिवार्य है।

दूसरी पुस्तक मे गाधीजी के वर्णाश्रम सम्बन्धी लेखो और विचारो का सकलन किया गया है। गांधीजी कहा करते थे कि वर्णाश्रम विश्व-सभ्यता को हिन्दूधर्म की विशिष्ट देन है। यह आर्य-

ज्ञान का अद्भुत आविष्कार है पर कालान्तर में विकृतियाँ आ जाने के कारण मूल अनुबन्ध शिथिल हो गया और आज तो, न वर्ण है, न आश्रम है, केवल उसका मुरदा हम ढो रहे हैं। इस पुस्तक से ज्ञात होगा कि ऋषियो की उदात्त कल्पनाओ के सबध में गांधीजी कितने श्रद्धावान् थे, पर केवल छाया के पीछे दौडना उन्हें कभी अभीष्ट नही रहा। इसीलिए उन्होंनेजहाँ मूलभावना का मडन किया तहाँ उसके नाम पर प्रचलित अनुदार परम्पराओ का खडन करने से भी वह न चूके। इस पुस्तक से उनके महत्त्वपूर्ण विचारो का अच्छा परिचय मिलता है।

बापू—मेरी मा—लेखिका—मनुगाधी, प्रकाशक—वही, पृष्ठसख्या—६४। मूल्य—दस आने।

साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि बुझाने के लिए जब बापू बंगाल मे भ्रमण कर रहे थे, तब के अत्यन्त प्रेरणाप्रद रेखाचित्र मनुबहन ने गुजराती मे लिखे थे। इसमे बापू के सर्वग्राही प्रेम और वात्सल्य की झाकी सजीव हो उठी है। श्री कुरगी बहन ने मनु के गुजराती लेखो का हिन्दी मे उल्था करके हमे बापू के जीवन के सपर्क मे लाने का पुण्य कार्य किया है। भाषा सरम तथा सरल है।

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

दिवा-स्वप्न—लेखक—श्री प्रेमनारायण टडन, एम० ए०, प्रकाशक—विद्यामदिर, रानी कटरा, लखनऊ, पृष्ठसख्या—१५२, प्रथम सस्करण, सजिल्द, मूल्य—दो रुपया।

दिवा-स्वप्न मे श्री प्रेमनारायण टडन-कृत चार एकाकी सगृहीत है। यह उनका चौथा और आधुनिकतम एकाकी सग्रह है। इसमे 'कृष्ण-जन्म' तथा 'दिवा-स्वप्न' पौराणिक और 'उपहार' तथा 'श्रमदान' सामयिक हैं। 'उपहार' में एक सामयिक समस्या उठायी गयी है—एक विद्यालय मे आचार्य की नियुक्ति की। दिवाकर उस विद्यालय के उप-आचार्य है और आचार्य-पद के लिए प्रार्थी है। उनके अधिकाश सहयोगी उन्ही को आचार्य बनाने के पक्ष में है। वह सिद्धान्तवादी है। प्रबन्ध-समिति के सदस्यो से मिलना-जुलना और उन्हे अपने पक्ष मे प्रभावित करना न तो वह अपने लिए शुभ समझते है और न विद्यालय के लिए। उनके प्रतिद्वद्वी है उनके सहपाठी और मित्र निशिकान्त, जो साहित्यकार है। निशिकान्त को जब वस्तुस्थिति का पता लगता है तब वह अपना प्रार्थना-पत्र लौटा लेते है। इससे निर्णय दिवाकर के पक्ष में हो जाता है। सक्षेप मे कथानक इतना ही है, पर इसे राजीव, प्रवीण, सतीश और दिवाकर की पत्नी रेखा आदि के समावेश से उभारा और सामयिक बनाया गया है। इन गौण पात्रो में राजीव आधुनिक युग की मनोवृत्ति का प्रतीक है। उचित-अनुचित—सब मे उसका विश्वास है। वह दिवाकर का मित्र और पडोसी है, पर दिवाकर उसके प्रभाव से दूर है। यही दोनो के चरित्र की विशेषता है। नाटक का आरभ एक ऐसे पत्र से होता है, जिसे निशिकान्त ने दिवाकर के पास प्रस्तुत घटना से दस वर्ष पूर्व लिखा था और दिवाकर को उप-प्रधान नियुक्त होने पर बधाई देने के साथ-साथ

उनके आचार्य होने की शुभकामना प्रकट की थी। उस अवसर पर दिवाकर ने अपने मित्र को एक बढ़िया लेखनी उपहार रूप में दी थी, परन्तु इस बार प्रस्तुत एकाकी ही सर्वोत्तम भेंट है। अपने इस एकाकी में लेखक ने जो समस्या उठायी है वह दिवाकर और निशिकान्त की आदर्श-वादिता के कारण बहुत कुछ दब गयी है। इसलिए इसमे अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष का अभाव-सा है। सघर्ष के अभाव में ही दिवाकर के चरित्र को उभार का अवसर नही मिल सका है। इस त्रुटि के होते हुए मित्रता का आदर्श प्रतिष्ठापित करने मे यह एकाकी अवश्य समर्थ है।

'श्रमदान' प्रस्तुत सग्रह का दूसरा एकाकी है। यह भी सामयिक है और हमारे विद्यार्थियो एव अध्यापको द्वारा विद्यालयो मे तथा राजकीय कर्मचारियो-द्वारा सार्वजनिक क्षेत्रो में जिस प्रकार श्रमदान होता है उस पर यह कटु व्यग है। इसमे रामू ने ग्रामीण समाज का, मजिस्ट्रेट ने राजकीय कर्मचारियो का, राकेश ने विद्यार्थीवर्ग का और नेताजी ने बनावटी काग्रेस-नेताओ का सफल प्रतिनिधित्व किया है। शकुतला और प्रियवदा का चरित्र उनके वातावरण के अनुकूल है। राकेश के अध्यापक कैलाशनाथ गभीर और चिन्तनशील है। वह श्रम का महत्त्व समझते है। अपना काम अपने हाथ से करना ही वह वास्तविक श्रमदान समझते है। यह सार्वजनिक रूप से श्रमदान किये जाने की पहली शर्त है अन्यथा श्रमदान-आन्दोलन प्रदर्शनमात्र है। लेखक ने इस आदर्श की स्थापना सवादशैली मे की है। इससे क्रियाशीलता का आभास-मात्र मिलता है। सवाद-शैली की दृष्टि से एकाकी सफल है, अभिनेय भी है।

तीसरा एकाकी 'कृष्ण-जन्म' है। इसका कथानक पौराणिक और शैली रेडियो-एकाकी है। इसमे कृष्ण जन्म से सबधित सारी सूचनाएँ देवकी के पिता देवक द्वारा प्रसारित होती है। वही इस एकाकी के प्रमुख पात्र है। लेखक ने उनकी व्यग्रता, उनकी सजगता और उनके अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण किया है। क्रियाशीलता भी है जो श्रोताओ को अन्त तक आगे का समाचार जानने के लिए उत्सुक बनाये रहती है। वसुदेव, देवकी और नवजात शिशु की रक्षा के लिए देवक का प्रत्येक आयोजन सफल और उनकी दूरदर्शिता और अनुभवशीलता का परिचायक है। इस दृष्टि से यह एकाकी अपने मे पूर्ण और सफल है।

'दिवा-स्वप्न' इस सग्रह का चौथा और अतिम एकाकी है। इसका कथानक कच और देवयानी की प्रसिद्ध पौराणिक प्रणय-कथा पर आधारित है, परन्तु लेखक ने उसे ज्यो का त्यो न अपना कर अपनी प्रतिभा और कवि-कल्पना-चातुरी से नवीन रूप मे प्रस्तुत किया है। शैली गीतात्मक छाया-एकाकी है। इस दृष्टि से हिन्दी एकाकी कला मे यह एक सर्वथा मौलिक प्रयास है। कच-देवयानी पर महाकवि कालिदास से निराला तक अनेक कवियो ने अपनी कवित्व शक्ति का चमत्कार दिखाया है। टडन की यह रचना भी उसी श्रेणी मे आती है, पर कुछ नवीनता लिये हुए। देवयानी का स्वप्न उसके अन्तर्द्वन्द्व का वास्तविक चित्र और इस एकाकी का प्राण है। यही टडन जी की नवीनता और मौलिकता का सफल प्रतीक है। टडन जी नाटककार ही नही कवि भी है और यदि यह कहा जाय कि वह नाटककार की अपेक्षा एक सफल कवि अधिक हैं तो अतिरंजना न होगी।

भाषा की दृष्टि से चारों एकाकी सफल है। छपाई कुछ और अच्छी होती तो अच्छा होता। प्रूफ की यथास्थान अशुद्धियाँ बहुत खटकती हैं।

नवप्रभात—लेखक—श्री विष्णु प्रभाकर, प्रकाशक—सस्ता साहित्य-मडल, नयी दिल्ली, पृष्ठसंख्या—११२, द्वितीय सस्करण, मूल्य—एक रुपया।

श्री विष्णु प्रभाकर की प्रतिभा बहुमुखी है। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबध—सब ओर उनकी दृष्टि गयी है और गद्य की प्रत्येक शैली में उन्हें प्रशसनीय सफलता मिली है। प्रस्तुत नाटक भी उनकी एक सफल रचना है। यह ऐतिहासिक है और सम्राट् अशोक (२७३–२३९ ई० पू०) के कलिग विजय (२६१ ई० पू०) से संबधित है। अशोक चन्द्रगुप्त मौर्य (३२२–२९८ ई० पू०) का पौत्र और बिन्दुसार (२९८–२७३ ई० पू०) का कनिष्ठ पुत्र था। वह बिन्दुसार के सभी पुत्रो मे योग्य था। इसलिए बिन्दुसार ने उसी को युवराज बनाया था। उसके सौतेले बडे भाई का नाम सुशर्मा अथवा सुमन था। सुमन मे अशोक की-सी कार्य-क्षमता नही थी। इसलिए बिन्दुसार की मृत्यु (२७३ ई० पू०) के पश्चात् अशोक ही सम्राट् हुआ। अशोक का राज्याभिषेक तीन-चार वर्ष पश्चात् २६९ ई० पू० में हुआ। इससे स्पष्ट है कि कुछ घरेलू झगडे अवश्य रहे होगे। जो भी हो अशोक ने शासन की बागडोर अपने हाथो मे लेते ही दिग्विजय की कामना की। इस कामना ने उसकी साम्राज्यवादी हिंसात्मक प्रवृत्ति को उकसाया। फलत उसने अपने राज्याभिषेक के आठवे वर्ष (२६१ ई० पू०) कलिंग पर चढाई की। कलिंग उसकी आखो मे आरम्भ से ही खटक रहा था। नदवश के राज्यकाल (३४६–३२४ ई० पू०) में यह राज्य मगध-साम्राज्य के अन्तर्गत था। परन्तु कालान्तर में इसने अपनी शक्ति बढा ली और नद वश के अन्त के साथ इसने अपना स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया। अशोक के समय में यह और भी अधिक शक्तिशाली हो गया। अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त और पिता बिन्दुसार ने इस जनपद को अपने साम्राज्य मे मिलाने की चेष्टा की थी, पर वे सफल नही हो सके थे। इसकी हस्ति और जल-सेनाएँ इतनी शक्तिशाली थी कि इसकी तीन ओर की सीमाएँ मौर्य-साम्राज्य और उसके मित्र-राज्यों की सीमाओ से घिरी होने पर भी यह निर्भीक बना रहा। ऐसे शक्तिशाली साम्राज्य को अपनी सीमा पर देखना अशोक के लिए असह्य था। इसलिए काश्मीर पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसने कलिंग को ही अपना निशाना बनाया और २६१ ई० पू० उस पर चढाई कर दी। कलिंग विजय के पश्चात् अशोक की आक्रमण-योजना में दूसरा स्थान था सिंहल का, परन्तु उस पर आक्रमण करने की नौबत ही नही आयी। कलिंग युद्ध में इतना नर-सहार हुआ, रक्त की ऐसी तीव्र धारा प्रवाहित हुई कि उसी के साथ अशोक का आसुरी हृदय बह गया और उसके स्थान पर एक धर्म-भीरु हृदय ने जन्म लिया। हृदय-परिवर्तन की यह घटना एक ऐसा ऐतिहासिक सत्य है, जिसकी उपेक्षा किसी भी आने वाले युग में नही की जा सकती। आज जब चारो ओर भावी युद्ध की सर्वनाशिनी कल्पना ने अपना आतंक फैला दिया है तब इस सत्य की उपयोगिता हमारे लिए और भी कल्याणकर सिद्ध हो सकती है। अशोक के हृदय-परि-

वर्तन-जैसी घटना भारतीय इतिहास में ही नहीं, विश्व के इतिहास में अद्वितीय है। इसलिए आज विश्व के सामने अशोक का उदाहरण एक जीवित उदाहरण है। यही कारण है कि विश्व के प्राय सभी साहित्यकारो एव इतिहास-प्रेमियो ने मानवता के उपासको मे अशोक को प्रथम स्थान दिया है।

श्री विष्णु प्रभाकर ने अपने 'नवप्रभात' नाटक मे उन परिस्थितियो का सकलन एव चित्रण किया है, जो अशोक के हृदय-परिवर्तन मे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहायक है। ऐसी परिस्थितियाँ दो प्रकार की है—(१) ऐतिहासिक और (२) काल्पनिक। ऐतिहासिक परिस्थितियो को सबल, सशक्त और प्रभावशाली बनाने के लिए ही काल्पनिक परिस्थितियो की सृष्टि की गयी है। इतिहास का आधार लेकर साहित्यिक रचना करने मे इस प्रकार की स्वतत्रता दोष नही, गुण मानी जाती है। इतिहास मे प्राय कार्य-कारण सबध मौन रहता है। साहित्यकार को अपनी प्रतिभा और कला के स्पर्श से इस सबध को अपनी रचना मे उभारना पडता है। ऐसी दशा मे कल्पना ही उसकी सहायता करती है। जिस साहित्यकार की जैसी कल्पना-शक्ति होती है उसी के अनुसार वह कार्य-कारण सबध मे रोचकता, मार्मिकता और प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करता है। प्रभाकर जी अपनी इस कला मे प्रवीण जान पडते है। उन्होने उन्ही परिस्थितियो को अपनाया है, जो अशोक के हृदय-परिवर्तन मे पूरा योग देकर नाटक को गतिशील बनाती है। अशोक इस नाटक का गतिशील पात्र है। उसके दो परस्पर विरोधी व्यक्तित्व है—एक तो कलिग-युद्ध मे होनेवाले रक्तपात के पूर्व का जो साम्राज्य-लिप्सा, हिसा, निरकुशता, क्रोध, प्रतिशोधन आदि दुर्भावनाओ से अभिभूत है और दूसरा कलिग-युवराज के बन्दी होने के पश्चात् का जो क्षमा, करुणा, अहिसा और मानव-प्रियता से अभिषिक्त है। अशोक के इस द्वितीय व्यक्तित्व का विकास ही नाटक की मूल प्रेरणा है और इसके लिए ही रेवा, राधिका, कलिग की राजकुमारी भिक्षुणी, कलिग के राजकुमार कुमार तथा अशोक भाई-बहन के रूप मे महेन्द्र और सघमित्रा की कल्पना की गयी है।

नाटक मे तीन अक है, जिनके सबध मे प्रभाकर जी ने अपने 'आमुख' मे विस्तृत विवेचना की है। पहला अक प्रभाकर जी का वह रेडियो-रूपक है जो दिल्ली-स्टेशन से 'मै भी मानव हूँ' के अन्तर्गत प्रसारित हो चुका है। दूसरे अक का कथानक उस रेडियो-रूपक से लिया गया है जो पहले रेडियो-रूपक के पश्चात् उसी स्टेशन मे 'इतिहास का एक पृष्ठ' के अन्तर्गत प्रसारित हुआ था। तीसरे अक की कहानी उनकी कहानी 'जीवन-दीप' का रूपान्तर है। इस प्रकार इस नाटक के कथानक की सामग्री तीन स्वतत्र रचनाओ की सामग्री पर आधारित होती हुई भी पूर्ण और कलात्मक है। अन्तर्द्वन्द्व का आरम्भ, उसका विकास और उसकी चरम—यही तीनो अको की पृथक्-पृथक् विशेषताएँ है। इन विशेषताओ के साथ ही नाटक के कथानक मे सकलन-त्रय—स्थान-सकलन, काल-सकलन और कार्य-सकलन—का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। सारी घटना एक ही स्थान, कलिग की राजधानी तोसरी, आधुनिक पुरी के अन्तर्गत धौली नामक ग्राम के आस-पास घटती है, समय भी सीमित है और कार्य-व्यापार का सफल निर्वाह भी है। रसो मे

शृगार, वीर, रौद्र, शान्त और करुणरस स्थान पा सके है। प्रत्येक पात्र को आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक—अभिनय के इन चारो प्रकारो के प्रयोग का पूर्ण अवसर मिलता है, इसलिए यह अभिनेय भी है। इसकी भाषा सरल एव सुबोध, कथनोपकथन चुटीले, मार्मिक परन्तु साथ ही गम्भीर और उद्देश्य सामयिक है।

पद्मावत का ऐतिहासिक आधार—लेखक—श्रीइन्द्रचन्द्र नारग, प्रकाशक—हिन्दी-भवन, जालधर और इलाहाबाद, पृष्ठसख्या—६४, प्रथम सस्करण, मूल्य—एक रुपया।

मलिक मुहम्मद जायसी (१५५१–१५९९) का 'पद्मावत' (स० १५९७) हिन्दी का अत्यन्त प्रसिद्ध महाकाव्य है। इधर कुछ दिनो से जायसी और उनकी इस रचना के सबध मे अच्छी छानबीन हुई है। प० रामचन्द्र शुक्ल के पश्चात्, डा० माताप्रसाद गुप्त तथा डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस दिशा मे विशेष प्रयत्न किया है। इसी प्रकार के प्रयत्न की शृखला मे यह एक नवीन कडी है। इसमे नारगजी ने 'पद्मावत' के ऐतिहासिक आधार पर एक गवेषणापूर्ण निबध प्रस्तुत किया है। उन्होने आरम्भ मे 'पद्मावत' का कथानक दिया है, इसके पश्चात् आचार्य शुक्ल जी की तत्सबधी व्याख्या देकर ऐतिहासिक खोजो के आधार पर उसकी छानबीन की है। इसके साथ ही आचार्य गौरीशकर हीराचन्द ओझा की समीक्षा भी है। उक्त दोनो विद्वानो की व्याख्या और समीक्षा पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुए नारग जी ने अपने निष्कर्ष निकाले है। उनके अनुसार ९०० हिजरी अर्थात् सन् १४९३ के लगभग जायसी का जन्म हुआ, ९३० हिजरी अर्थात् सन् १५२३ ई० से उन्होने कविता करना आरम्भ किया और ९३६ हिजरी (१५२९ ई०) मे, 'आखिरी कलाम' तथा ९४१ हिजरी (१५४० ई०) मे 'पद्मावत' की रचना की। सन् १५४२ ई० मे जायसी की मृत्यु हुई। जायसी के जन्म तथा मृत्यु की तिथियो के सम्बन्ध मे अभी सब एकमत नही है। आलोचको के अपने-अपने तर्क है। फिर अधिकांश आलोचक उक्त तिथियो का ही समर्थन करते है। जहाँ तक 'पद्मावत' के कथानक का प्रश्न है, यह तो निर्विवाद है कि जायसी ने कही की 'ईट' और कही का 'रोडा' लेकर 'भानमती के पिटारे' का निर्माण किया है। उसकी रचना मे पुराण, इतिहास, अनुश्रुति, जनश्रुति, कल्पना आदि सबका सहारा लिया गया है। नारगजी ने अपने प्रस्तुत निबन्ध मे उक्त कथानक के उत्तरार्द्ध पर ही मुख्यत विचार किया है, और ओझाजी कृत राजपूताने का इतिहास, दूसरा खण्ड तथा जयचन्द्र विद्यालकार जी कृत 'इतिहास-प्रवेश' एव 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' पर ही अपने निष्कर्षों को आधारित किया है। ओझाजी और विद्यालकारजी दोनो भारतीय इतिहास के पण्डित है और उनकी खोजो पर सहसा अविश्वास नही किया जा सकता। इसलिए जब तक 'पद्मावत' के कथानक की और अधिक छानबीन न हो तब तक नारगजी के निष्कर्ष हमारे लिए विशेष महत्व के हैं।

जायसी सूफी थे और सूफी भारत में इसलाम के शान्त प्रचारक। इसलाम का प्रचार जायसी का भी उद्देश्य था। 'चितउर' या 'इसलाम' कह कर जायसी ने अपने धर्म का ही प्रचार

किया है। इसलिए जायसी के कथानक पर विचार करते समय हमें उनके इस दृष्टिकोण को भी सामने रखना चाहिए। अपने इस दृष्टिकोण को चरितार्थ करने के लिए जायसी ने इतिहास और जनश्रुति से प्राप्त कथाओ में बहुत नमक मिर्च मिलाया है। साथ ही हमें यह भी न भूलना चाहिए कि जायसी बहुश्रुत थे, अध्ययनशील नही थे। यदि अध्ययनशील होते, तो 'नारद' को शैतान न बनाते और हिन्दुओं के आचार-विचार और उनकी पौराणिक कथाओं का शुद्ध चित्रण करते। जायसी और उनकी रचनाएँ हमारी खोज के विषय हैं।

—राजेन्द्रसिंह गौड, एम० ए०

माटी की मुस्कान—रचयिता—श्री रूपनारायण त्रिपाठी, प्रकाशक—विकास प्रकाशन, जौनपुर, प्राप्तिस्थान हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, पृष्ठ सख्या ८०, आकार डिमाई। मूल्य १॥) रु०।

श्री त्रिपाठीजी ने अपने अचल के लोक स्वर को बडी ही निश्छलता से बिना उसे प्रयोग नालिकाओ मे घुमाए उपस्थित करने का प्रयास किया है। वे समान विश्वास से एक साथ स्वरचित और प्रचलित लोकगीत प्रस्तुत कर सकते है और कही-कही ऐसा होता है कि उनमे यह निर्णय करना कि कौन गीत लोकगीत है, मुश्किल हो जाता है। १९५० से १९५६ तक घोर प्रयोगवादी युग में यह बडे साहस का कार्य है। श्री रूपनारायण हिन्दी के कुछ इसी तरह के साहसिक है। उन्ही के शब्दो मे कहूँ तो उनकी ये कविताएँ बडी बहनो के इस वात्याचक्र मे अपनी राह बनाती छोटी बहने है—

बडी बहन जब चली ऊँट
हाथी घोड़ो से सजकर,
ऊजड होते गये खेत जब
सेना चली उमड कर
लेकिन छोटी बहन अकेली
चली जिधर जिस थल से
दाने गिरते गये बराबर
फटे हुए आचल से,
गई जिधर से बडी बहन
हरियाली बनी अभागिन
छोटी गई जिधर से परती
होती गई सुहागिन
बजर होता गया बडी के
पथ का कोना कोना

छोटी के आंचल का कोदव
बना धूल में सोना।

गवई गाँव के गीतों की छाँह जिन कविताओं में उतर गयी है वे बड़ी प्यारी लगती हैं।

डगमग डोल रही नइया रे
धीरे बहो नदिया, धीरे बहो,
अबडूबी तबडूबी नाव नीर सातसी।
डोल रही लहरों पर पीपल के पातसी।
भरती हिलोर पुरवैया रे,
धीरे बहो नदिया, धीरे बहो।

जहाँ दूरी तक यह छाँह नही है वहाँ गाँवो के वातावरण से उठाये मुहाविरे और उपमान हैं। उनमे लेखक का विश्वास ध्वनित होता है। ये उपमाएँ सब कही बिखरी हुई मिलती है। "तुम्हारे प्यार सी मेहदी महकती है", "खोल रहे हो पखुडियाँ अनार के फूल", "धुमहला गाँव", "हालर देता है विहगो का गाता हुआ बसेरा" आदि कितने ही सजीव वाक्य पूरे गीत सग्रह मे आपको मिलेंगे।

इन कविताओ का स्वर कही भी व्यक्तिवादी नही है। यह दूसरी बडी विशेषता है कि त्रिपाठी की रचनाओं को अत्यधिक जीवन्त बना देती है। वे अपना सारा उद्वेग समाज से पाते है इसीलिए समाज के लिए लिखने में उन्हे कोई हिचक नही होती।

रूपनारायण जी मे रुबाइयो के प्रति बढता मोह हो सकता है कि उन्हे जौनपुर की शहरी जिन्दगी की लालसा मे डुबो दे या इनसे स्लोगन जैसी कविता लिखवाये, किन्तु इनको अपनी अभि-व्यक्ति की गवई गाँव की निश्छल योजना का ख्याल रखना होगा। उनको और उन जैसे लोगो की मुक्ति भी वही है। अभी तक जो कुछ उन्होने कहा है वह भविष्य की आशा के विश्वास के कारण ही हमे प्रिय है। चकाचौध मे घबडाकर जय-जयकार करने वाले हम नही है। हमे उनकी कविता मे उनके भविष्य के गीतो की हलकी गुनगुनाहट सुन पडती है।

—ठाकुरप्रसाद सिंह, एम० ए०

साहित्य-धारा—लेखक, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, काशी, पृष्ठ सख्या १८७; मूल्य ४॥) रु०, छपाई और गेटअप सुन्दर।

'साहित्य-धारा' में श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के उन्तीस लेख सगृहीत हैं। इनमे कुछ पुस्तको की आलोचनाएँ भी सम्मिलित हैं। ये आलोचनाएँ पुस्तको की 'रिव्यू' मात्र हैं। इन लेखो मे कुछ साहित्यकारो के व्यक्तित्व और सृजन से सम्बन्धित विचार प्रकट किये गये हैं तथा आरम्भ की कतिपय रचनाओ में कुछ आधारभूत सिद्धान्तो की ओर भी सकेत किये गये है। इन लेखो में कुछ पुराने और अधिकतर नये है। लेखक ने साहित्य के विभिन्न अगो का स्पर्श किया

है—कविता, कहानी और उपन्यास आदि पर लिखा है। ये लेख शृखलाबद्ध न होकर स्वतन्त्र और स्फुट है।

प्रकाशजी एक प्रगतिशील आलोचक हैं अत इन लेखो में उनकी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय मिलता है। प्राय सभी लेखो मे, 'साहित्य जनता के लिए' का स्वर सबल है और बार-बार दुहराया गया है। इसमें सदेह नही, कि लेखक ने अपने साहित्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण और मान्यताओ को अधिकाधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है, किन्तु स्वभावत वह उन पूर्व ग्रहो से मुक्त नही हैं जो 'प्रगतिशील दृष्टि' से सदैव लिपटे हुए चलते हैं और जो प्रगतिशील साहित्य के एकागीपन का परिचय देते है। प्रकाशजी अपने राजनीतिक मतवाद की कसौटी पर ही साहित्य को कसते दिखाई देते है—"'परिवर्तन' और 'बापू' के प्रति' लिखने वाले पन्त ने 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की सृष्टि की है जहाँ वह समाज की निम्नतम दलित श्रेणियो की मुक्ति चाहते है। नरेन्द्र शर्मा ने 'लाल निशान' शीर्षक कविताएँ लिख कर हिन्दी मे लोकगीतो की एक नयी परिपाटी को जन्म दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रगतिवादी कवि हमारे काव्य की राष्ट्रीय परम्परा को एक नयी दिशा सुझाते है और हिन्दी कविता का ससार की श्रेष्ठतम विचार-धारा समाजवाद से सीधा सम्बन्ध स्थापित करते हैं।" फिर भी सन्तोष की बात है कि प्रकाशजी में वह सकीर्णता नही मिलती, जो वर्ग-सघर्ष के कट्टर हिमायतियो मे व्यापक रूप से पायी जाती है। इतना ही नही, इनकी भावुकता और दृष्टिकोण की सामान्य उदारता भी इन्हे प्रगतिवादी अखाडे से कुछ दूर ही रखती है।

'साहित्य की मार्क्सवादी व्याख्या', 'साहित्य में सौन्दर्य-बोध' तथा 'कलाकार के बन्धन' आदि लेखो मे लेखक के अध्ययन और मनन की झलक मिलती है। विषय-प्रतिपादन का प्रयास भी प्रशसनीय ही कहा जा सकता है, किन्तु इन लेखो मे अस्पष्टता और परस्पर विरोध भी मिलता है। पहले लेख में, जैसे 'साहित्य की मार्क्सवादी व्याख्या' ही साहित्य-समीक्षा का सार्वभौम आधार है। अन्य आधार है और भ्रम मात्र भी है। इस महत्त्वपूर्ण विषय पर लेखक को कुछ और गहराई और उदार दृष्टि से सोचना चाहिए था, यद्यपि उसने लेख को व्यापक दृष्टि से सम्पन्न बनाने का प्रयास किया है। प्रकाशजी मानते है कि 'साहित्य मे युग विशेष के प्रतिभावान और अनुभूतिशील व्यक्तियो के विचार और उनकी भावनाएँ प्रकट होती है। इन मनीषियो के कोष मे अभिव्यक्ति का अनुपम अस्त्र होता है' किन्तु वे 'समाज' का नाम लेते समय 'व्यक्तियो' को भूल जाते है—व्यक्ति के सौन्दर्य-बोध को न मानकर समाज के 'सौन्दर्य-बोध' की कल्पना करते है। वे शायद यह सोचने का कष्ट नही करते कि समाज-निरपेक्ष व्यक्ति जितना भयानक है, उससे कम भयानक व्यक्ति-निरपेक्ष समाज नही है। ऐसा समाज साहित्य-सृजन के लिए और भयानक हो जाता है। मै समझता हूँ 'समाजवादी देशो' के कलाकारो और विचारको की विवशता की ओर सकेत करने की आवश्यकता नही है।

अपनी अनेक सीमाओ के बावजूद ये लेख साहित्य के विद्यार्थी के लिए उपयोगी है, क्योंकि ये अध्ययनशील और परिश्रमी व्यक्ति के द्वारा लिखे गये है और जो शिविर विशेष से सम्बद्ध होता हुआ भी बहुत कुछ उदार और भावुक है।

स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य—लेखक—डाक्टर रामविलास शर्मा, प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस; पृष्ठ संख्या १६६। मूल्य ४) रु०; छपाई और गेटअप सुन्दर।

'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' डाक्टर रामविलास शर्मा के सोलह निबन्धो का सग्रह है, जिसमें कीट्स के 'हाइपीरियन' और ग्राम कवि पढीस के काव्य सग्रह 'चकल्लस' की आलोचनाएँ भी सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ निबन्ध बिलकुल ताजे है और अधिकतर कुछ वर्ष पुराने हैं, किन्तु उनमे प्रतिपादित विषय अत्यधिक महत्त्व के हैं अत इन निबन्धो की प्राचीनता किन्ही अशो में भी नही खटकती, क्योंकि इनमे व्यक्त विचार बहुधा वही है जो आज के किसी विचारक के हो सकते है। लेखक ने महत्त्व के प्रश्नो को उठाया है जिनको लेकर हिन्दी जगत् मे पर्याप्त वाद-विवाद हुआ है और अनेक मत अपनी पूरी शक्ति और तर्कना के साथ टकराये हैं। अब भी इन प्रश्नो को लेकर बाते बहुत साफ नही हो पायी है, किन्तु विचारो के आदान-प्रदान और गहन चिन्तन से हिन्दी के साहित्यकारो का मत बहुत कुछ सामने आ गया है।

'सास्कृतिक स्वाधीनता और साहित्य' मे लेखक ने अपने प्रतिपाद्य को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखा है। लेखक मार्क्सवाद को व्यापक रूप मे देखता है और इसी व्यापकता के आधार पर वह 'मार्क्सवादी आधार' की एकमात्रता की घोषणा करता है। वह साहित्य को भौतिक परिस्थितियो से नियमित मानता है, लेकिन वह इतना अनुदार भी नही है कि साहित्य की अपनी सापेक्ष्य स्वाधीनता न माने। वह साहित्य के सभी तत्त्वो को समान रूप से परिवर्तनशील नहीं मानता। उसका कहना है—"इन्द्रिय बोध की अपेक्षा भाव और भावो की अपेक्षा विचार अधिक परिवर्तनशील है। युग बदलने पर जहाँ विचारो मे अधिक परिवर्तन होता है, वहाँ इन्द्रिय बोध और भाव-जगत् मे अपेक्षाकृत स्थायित्व रहता है। यही कारण है कि युग बदल जाने पर भी उसका साहित्य हमे अच्छा लगता है। यही कारण इस बात का भी है कि पुराने साहित्य की सभी बातें हमे समान रूप से अच्छी नही लगती। सबसे ज्यादा मतभेद खडा होता है विचारो को लेकर, उसके बाद भावो को और सबसे पीछे और सबसे कम इन्द्रिय बोध को लेकर। हमारी साहित्यिक रुचि स्थिर न होकर बिकासमान है, पुराना साहित्य अच्छा लगता है, लेकिन उसी तरह नही जैसे पुराने लोगो को अच्छा लगा था। इसीलिए मनुष्य अपनी नयी रुचि के अनुसार नये साहित्य का भी सृजन करता है।" लेखक ने सबसे अधिक मतभेद का जिक्र विचारो के सम्बन्ध में किया है और विचारो का सम्बन्ध समाज की भौतिक परिस्थितियों से जोडा है, जो बहुत सही और जिसे वह करीब-करीब बिलकुल सही मानता है। ऐसी मान्यता के साथ वह फिर राजनीति की ओर बढ जाता है और साहित्य की गाँठ उससे बाँध देता है। ऐसे स्थलो पर वह मत विशेष के पक्षपाती के रूप में सामने आता है।

हम लेखक से सहमत हो या न हो, किन्तु, इन लेखो को पढकर मान लेना पडेगा कि लेखक अपने निजी दृष्टिकोण को पूरी स्पष्टता और शक्ति से पकडे हुए है। इसीलिए जब वह कोई बात कहता है तब उसके शब्दो मे एक वेग और बल होता है और जब वह विपरीत मत पर आक्रमण

करता है तब उसके व्यग्य के बाण बडे पैने और मर्मभेदी होते है। वह संसार के सर्वहारावर्ग का कट्टर हिमायती है और श्रम की क्रान्ति का शक्तिशाली पोषक। अत वह समझौतो और समन्वयो में विश्वास नही करता—वर्ग-सघर्ष के परिणाम को सर्वहारावर्ग की विजय के रूप में देखता है। प्राय सभी निबन्धो में उसका जनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। वह प्रत्येक समस्या को वास्तविक जनहित की दृष्टि से देखता है। 'हिन्दी-उर्दू-समस्या पर जोर-जबर्दस्ती या समझौते की बातचीत' निबन्ध मे उसकी यही दृष्टि उभर कर आती है। 'सन्त साहित्य की ऐतिहासिक भूमिका' में भी उसके इसी दृष्टिबिन्दु की झलक है—"सन्त साहित्य की यह ऐतिहासिक भूमिका है कि उसने सामन्ती बन्धनो का विरोध करके महज मानवता की प्रतिष्ठा की। उसने जनता की जातीय और जनवादी चेतना को पुष्ट किया और उसके क्रोध, आशा और विजय-कामना को वाणी दी। सन्त साहित्य अग्रेज साम्राज्यवादियो का यह दावा झूठ साबित करता है कि जब वे भारत मे आये तब यह देश असस्कृत था। सन्त साहित्य हमे वह जनवादी आधार देता है जिस पर नयी जन-सस्कृति का प्रासाद बनाया जायगा, ऐसी सस्कृति का, जिसका उद्देश्य जन-कल्याण होगा।" लेखक ने ससार के बुद्धजीवियो के सामने जनवादी दृष्टिकोण रखकर उनसे पूर्ण समर्थन की माँग की है और क्रियात्मक सहयोग का तकाजा किया है। निराला, पढीस और कीट्स के साहित्य की आत्मा का एक साथ साक्षात्कार करने वाले आलोचक पर सकीणता का आरोप करने वाले को अपनी कमजोरी महसूस कर लेनी चाहिए। अवश्य ही इस सग्रह के लिए डाक्टर साहब बधाई के पात्र है और प्रकाशक को भी धन्यवाद मिलना ही चाहिए। पुस्तक की उपयोगिता के सम्बन्ध मे दो मत नही हो सकते।

—श्रीहरि, एम० ए०

कित्तूर की रानी—लेखक—अ० न० कृष्णराव, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली।

कन्नड भाषा के "रानी चेन्नम्मा" नामक प्रसिद्ध उपन्यास का यह पुस्तक हिन्दी रूपान्तर है। इसकी पृष्ठभूमि दक्षिण की है। कथानक ऐतिहासिक है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की तरह कित्तूर की रानी चेन्नम्मा भी एक वीरागना थी। लिगायत धर्म की अनुयायिनी रानी चेन्नम्मा की जीवन कथा, उनका बलिदान, आत्मोत्सर्ग, त्याग ही उपन्यास का सार है। रानी चेन्नम्मा के लिए स्वतन्त्रता का मूल्य प्राणो से भी बढकर था एव सर्वहित में काम आने वाला उनका एक आदर्श जीवन था। यह उपन्यास एक ओर इतिहास की घटनाओ को लेकर चलता है और दूसरी ओर कला-दृष्टि भी गौण नही है। ३८-४० चरित्रो को एक साथ उठाकर १२८ छोटे आकार के पृष्ठो में कैद करना, उन्हे सँभालना आसान नही, पर उपन्यास के हर चरित्र सप्राण है। कथोप-कथन छोटे किन्तु ओजपूर्ण एव स्वाभाविक है।

"नही माताजी, हमे तकदीर से लडना है। कर्तव्य का जुआ कन्धे पर रखकर मरना वीरो का काम है। दुख का शिकार बनकर तो कायर मरते है। .ऐसा ही था तो आपने अपना दूध पिलाकर हमे शूर क्यो बनाया। अमृत के बदले विषपान क्यो नही कराया

था। कित्तूर आज नही तो कल बलिवेदी बन जायगा। उस पर हमें अपनी सर्वोत्तम देन देनी है।"

इस तरह जाति और धर्म की भावनाओ से परे होकर, केवल राष्ट्र कल्याण का आदर्श बनाकर कित्तूर के स्वातन्त्र्य सग्राम और देशवासियो के त्याग वृत्ति का चित्रण बडी सफलता के साथ लेखक ने किया है। मूल से हिन्दी रूपान्तर कम सफल नही। पुस्तक सग्रहणीय है।

स्वर्ण-पादुका—लेखक—श्री परमानन्द एम० ए०; प्रकाशक—विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-सस्थान, होशियारपुर; मूल्य १।) रुपया।

स्वर्ण-पादुका पाँच अको का एक सामाजिक नाटक है। एक पारिवारिक जीवन में भ्रातृ-प्रेम का आदर्श राम और भरत के स्नेह की तरह स्थापित हो—यही इस नाटक का ध्येय है। भरत जी का आदर्श सभी को ज्ञात है, परन्तु जीवन मे वह आदर्श कैसे ढाला जाय, रगमच पर स्वर्णपादुका का अभिनय करके इसका हल निकाला जा सकता है। नाटक रगमच पर अभिनय के योग्य है। कही-कही वाक्यावली क्लिष्ट है। श्री परमानन्द जी एक कवि की तरह एक कुशल नाटककार भी है। पञ्जाब की धरती मे उत्पन्न श्री परमानन्द जी के लिए हिन्दी की यह कृति प्रशसनीय है। उनकी इस रचना का हम स्वागत करते है।

सिद्धार्थ बुद्ध—लेखक—श्री बनारसीदास 'करुणाकर', प्रकाशक—भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, मूल्य २) रुपया मात्र।

श्री बनारसीदास जी का 'सिद्धार्थ बुद्ध' सास्कृतिक नाटक भगवान् बुद्ध के साधना, तप एव त्यागमय जीवन पर प्रकाश डालता है। नाटक की भूमिका में श्री गुलाबराय जी का कथन कि 'नाटक बुद्ध महाराज के जीवन की करुणा के उद्घाटन में भली प्रकार समर्थ है' अक्षरश सत्य है। उनके जीवन की करुणा की पराकाष्ठा वहा दिखाई पडती है जब कुमार राहुल और कपिलवस्तु राज्य के दूसरे उत्तराधिकारी बौद्ध धर्म की दीक्षा ले लेते है। बुद्ध जी के जीवन की विशेष घटनाओ का समावेश नाटक मे कौशलपूर्वक हुआ है। नाटक छोटा है और अभिनय के योग्य है। सर्वत्र नाटक मे शान्त रस का प्रवाह है। भावनाओ की अधिकता से नाटक का घटनाचक्र कुण्ठित नही। भाषा मुहावरेदार है। सरस, सरल और सुबोध है। चार अको का यह नाटक शिक्षितवर्ग द्वारा ही अभिनय किया जा सकता है। ऐतिहासिक घटनाओ मे कुछ उलट-फेर अवश्य है, परन्तु वह नाटकीयता की दृष्टि से अनुचित नही।

—लालचन्द्र श्रीवास्तव, एम० ए०

ससार और संघर्ष—लेखक—कि० घ० मशरूवाला, प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; मूल्य २॥) रुपया।

प्रसिद्ध गान्धीवादी विचारक किशोरलाल मशरूवाला गम्भीर अध्ययन, प्रौढ चिन्तन और उदार दृष्टिकोण के पुरुष थे। उनके आध्यात्मिक लेखो और भाषणो का यह सग्रह सामाजिक कार्यकर्ताओ की दृष्टि को गम्भीर और परिष्कृत बनाने वाला ग्रन्थ है। इसके कुछ जीवनोपयोगी शीर्षकों को पढकर पूरी पोथी पढने के लिए हृदय फडक उठता है। 'जीवन का अर्थ', 'ससार मे रस', 'मृत्यु पर जीत', 'सकल्प सिद्धि', 'जग मे जीना दो दिन का', 'गलत भावुकता' आदि शीर्षको को स्फूर्तिदायक समीक्षा पढकर चित्त प्रसन्न हो उठता है। छोटी-सी पुस्तक में ३३ उपयोगी गम्भीर विषयो पर स्फूर्तिदायक विचार प्रकट किये गये हैं। गम्भीर स्तर से जीवन-यात्रा करने वालो के उत्साहवर्द्धक और शका समाधान के लिए पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। 'स्वकर्मयोग' अध्याय मे गीता के श्लोको मे थोडा परिवर्तन कर और कुछ नये श्लोक जोड कर नित्य के पारायण की अच्छी सामग्री दी गयी है। ऐसी पुस्तको का मूल्य कम होना चाहिए, जिससे उन्हे अधिक से अधिक लोग पढ सके।

शिक्षा में विवेक—लेखक—कि० घ० मशरूवाला, प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, मूल्य १॥) रुपया।

इस युग मे जब प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति शिक्षा पद्धति मे परिवर्तन का अनुभव कर रहा है तत्ववेत्ता विचारक की यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। विशेषकर आचार्यों और शिक्षको के दृष्टिकोण को अपरिच्छिन्न बनाने मे इसका उपयोग किया जा सकता है। पाश्चात्य शिक्षा की धूल धूसरित दृष्टि को अपरिच्छिन्न बनाने वाली यह पुस्तक हमे राष्ट्रीय और सास्कृतिक दृष्टिकोण मे जागरूक होकर ससार के ज्ञान भण्डार का उपयोग करने और अपनी स्वाधीनता का सवर्द्धन करने की प्रेरणा दे सकती है। इस पुस्तक मे विद्वान् लेखक के शिक्षा सम्बन्धी आदर्श और व्यवहार दोनो प्रकार के लेखो का सग्रह किया गया है। 'शिक्षा का दर्शन', 'उच्च शिक्षा', 'राष्ट्रीय शिक्षा', मनुष्यता की प्रतिष्ठा की, निर्वाह की शिक्षा, शिक्षा मे भावनाओ का विकास, तारतम्य बुद्धि, बुद्धि किस प्रकार विकसित हो आदि शीर्षको मे शिक्षा के दर्शन का स्फूर्तिदायक विवेचन किया गया है। साथ ही स्कूलो के वार्षिक सम्मेलन, आदर्श आचार्य, बालको के नृत्य और नाटक, पगडडी की प्रस्तावना आदि शीर्षको मे उसके व्यावहारिक पहलू पर प्रकट किये गये लेखक के विचार और भी मनोरजक है। 'विविध प्रश्न' शीर्षक मे शिक्षा सबधी अनेक व्यावहारिक प्रश्नो के सुलझे हुए उत्तर दिये गये है। पुस्तक के कागज और कलेवर के हिसाब से मूल्य अधिक रखा गया है।

तुकाराम गाथा सार—सग्रहकर्ता—श्री नारायणप्रसाद जैन, प्रकाशक—सत्साहित्य प्रकाशन, सस्ता-साहित्य मडल, नयी दिल्ली, मूल्य १॥)

सत तुकाराम भारत विख्यात सत है। महाराष्ट्र मे तो उनकी बडी महिमा है। उनके अभग हर महाराष्ट्रीय की जबान पर थिरकते रहते है। सतप्रवर के कथनो को १० प्रमुख शीर्षको में

बाँटकर सरल हिन्दी में उनका अनुवाद उपस्थित किया गया है । मराठी कथनों के साथ-साथ उनका अनुवाद दिया गया होता तो पुस्तक अधिक मौलिक और उपयोगी बन जाती। संत तुका-राम के प्राणदायक विचारो के सबध में तो क्या कहना है, उनके स्पर्श मात्र से हृदय की जडता मिट जाती है। कागज और छपाई अच्छी है फिर भी सतो के साहित्य का मूल्य कम ही होना चाहिए, जिससे साधारण स्थिति के पाठक भी उससे लाभ उठा सकें।

कलकत्ते का चमत्कार—ले०—मनुबहन गाधी, प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद मूल्य १)।

मनुबहन की यह डायरी गाधीजी के जीवन के सबसे सघर्षमय दिनो की डायरी है। नोआखाली की अग्नि-परीक्षा से निकल कर बापू कश्मीर गये और वहाँ से फिर नोआखाली के लिये रवाना हुए। बीच मे कलकत्ते के भयंकर दगे के कारण उन्हें कलकत्ता में रुक जाना पडा। इस बीच के बापू के दैनिक जीवन की इस डायरी मे सरल और रोचक ढंग से चर्चा की गयी है। इस बीच मनु बहन निरतर उनकी सेवा में रहती है। इस डायरी मे जगह-जगह उन्होने बापू की अन्तरात्मा के अच्छे चित्र दिये है। पुस्तक रोचक है। इसमें युग-पुरुष की आत्मा के उच्छ्वास भरे है। छपाई साफ है। ऐसी पुस्तको के मूल्य के सबध मे सर्वोदय प्रकाशन मंदिर, राजघाट, बनारस अच्छा आदर्श उपस्थित कर रहा है।

अन्नो की खेती—ले०—श्री नारायण दुलीचद व्यास, प्रका०—सस्ता साहित्य मडल, नयी दिल्ली, मू० २)।

श्री दुलीचद व्यास कृषिशास्त्र के सिद्धहस्त लेखक है। हिन्दी में उनकी पुस्तक खेती की रीति काफी प्रसिद्धि पा चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का एक खण्ड है। इस देश में पैदा होने वाले मुख्य-मुख्य अन्नो का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रत्येक अन्न को छोटे-छोटे शीर्षको मे बाँट कर उसकी बोआई, जोताई, खाद, बीज, रोग आदि पर काफी वैज्ञानिक ढग से प्रकाश डाला गया है। खेती करने वाले सुशिक्षित कृषको और कृषिशास्त्र के विद्यार्थियो दोनो के लिए पुस्तक उपयोगी है। यह पुस्तक पढ लेने के बाद अन्नो की खेती की अच्छी जानकारी प्राप्त हो जाती है। अन्नोत्पादन से सबधित प्राय सभी उपयोगी विषयो पर इस पुस्तक मे प्रकाश डाला गया है। कुछ अनाजो के ऐसे नाम दिये गये है, जो उत्तर भारत के पूर्वी जिलों में प्रचलित नही है। जैसे—कगनी को पूर्वी जिलो मे टाँगुन और मसवा को मँडुआ कहते है। पाठक उन्हे सुधार लेंगे। पुस्तक की छपाई-सफाई बहुत अच्छी है।

एकता की समस्या—ले०—स्वामी सत्यभक्त, प्रका०—सत्याश्रम वर्धा, मू० ॥)।

स्वामी सत्यभक्त अपने नाम के अनुसार ही सत्य के प्रचारक है । इस छोटी-सी पुस्तक के भीतर छोटे-छोटे रोचक प्रसगो में उन्होने हिन्दू-मुसलमानों की एकता के मूलभूत तत्त्वो पर

काफी सूक्ष्मता के साथ विचार किया है। हिन्दू-मुसलमानों की एकता में बाधक अंधविश्वासों की इसमें विचारात्मक ढग से खिल्ली उडायी गयी है। स्वामी जी की सवाद-शैली बडी ही मधुर और रोचक है। देश की राष्ट्रीयता को सुदृढ करने की दृष्टि से हिन्दू-मुसलमान दोनो में इस पुस्तक के प्रचार की आवश्यकता है।

मंदिर का चबूतरा—ले०—स्वामी सत्यभक्त, प्रका०—सत्याश्रम वर्धा, मूल्य २।)

यह छोटा-सा उपन्यास सत्यभक्त स्वामी की लेखनी का चमत्कार है। यह धर्म और समाज सबधी अनेक विषयो की तह तक ले जाता है। समाज की अनेक समस्याओं पर इसमें निर्मल आलोक फेंका गया है। लेखक का दृष्टिकोण बहुत व्यापक है। उनमें तर्क द्वारा विषय के सूक्ष्म तत्त्वो तक पहुचने की अद्भुत शक्ति है। भाषा और भाव मे लोकप्रियता के तत्त्व है। यद्यपि औपन्यासिक कला की अपेक्षा पुस्तक मे प्रचारक कला का सौन्दर्य ही अधिक है। पुस्तक समाजोपयोगी है।

गांधीजी के पावन प्रसंग—ले०—श्री लल्लूभाई मकन जी, प्रका०—नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद, मूल्य ।=)

इस छोटी-सी पुस्तक में युग पुरुष महात्मा गाधी के जीवन-सबधी १३ प्रसगो पर चर्चा की गयी है। इन प्रसगो के पढने से यह प्रकट होता है कि छोटी छोटी बातो मे भी महापुरुष कितने महान् होते है। इस पुस्तिका से साधारण पाठको को भी स्वस्थ मनोरजक खुराक मिल जाती है। छपाई-सफाई अच्छी है। प्रौढ-शिक्षा के लिए पुस्तक उपयोगी है।

सुसंवाद—सग्राहक—श्री नीलकठ ईश्वरदास मशरूवाला, प्रका०—नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद, मूल्य ॥-)

इस पुस्तक मे जीवन के आध्यात्मिक प्रसगो पर एक जिज्ञासु तरुण के समक्ष प्रकट किये गये मनीषी केदारनाथ जी के विचारो का सरल और रोचक ढग से सम्पादन किया गया है। पुस्तक तरुणो के दृष्टिकोण को परिष्कृत करनेवाली है। प्रसग बहुत ही उपयोगी है। छपाई अच्छी है।

यीशु खिस्त—ले०—कि० घ० मशरूवाला, प्रका०—नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद, मूल्य ॥=)

ईसा मसीह पर हिंदी में लिखी गयी यह बहुत ही प्रामाणिक और उपयोगी पुस्तक है। ईसा के जीवन चरित के साथ उनके क्रातिकारी विचारो को लपेट कर पुस्तक को सरस बना दिया गया है। साथ ही साथ इसके भीतर उनके बहुमूल्य उपदेशो का भी अच्छा संग्रह है। सुभाषितो का संग्रह, समालोचना आदि अध्यायो के दे देने से पुस्तक की उपयोगिता बढ गयी है। छपाई अच्छी है।

ईसा की सिखावन—ले०—महात्मा टाल्स्टाय; प्रका०—सस्ता साहित्य मडल, नयी दिल्ली, मूल्य १)

टाल्स्टाय दुनिया के महान् विचारक और सिद्धहस्त लेखक थे। उन्होने इस पुस्तक की रचना छोटे बालको की शिक्षा के लिए सरल और रोचक शैली में की थी। जीवन के विविध प्रसगो पर महात्मा ईसा के मुख से इसमें जो विचार प्रकट किये गये हैं, वे बालको के लिए अत्यत स्फूर्तिदायक हैं। उनके कोमल चरित्र पर इस पुस्तक के पढने का बहुत अच्छा प्रभाव पड सकता है। अनुवाद स्वच्छ और सुन्दर है।

विवाह पद्धति—ले०—स्वामी सत्यभक्त, प्रका०—सत्याश्रम वर्धा, मूल्य ।)

स्वामी सत्यभक्त ने हिन्दी मे विवाह करने की यह पद्धति लिखी है। समाज इसे कहाँ तक अपनायेगा कहा नही जा सकता। यह एक सुधारक का प्रयोग है।

चक्रव्यूह—ले०—पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्रका०—कौशाम्बी प्रकाशन, प्रयाग; मूल्य २।)

पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दी के प्रख्यात नाटककार है। प्रसाद युग के बाद हिन्दी नाटक की धारा को जीवन की वास्तविकता की ओर मोडने वाले नाटककारो में मिश्र जी प्रमुख हैं। इन्होंने समस्या और सस्कृतिमूलक दोनो प्रकार के नाटको की रचना की है। प्रस्तुत नाटक का कथानक महाभारत की प्रसिद्ध कथा अभिमन्युवध के आधार पर गढ़ा गया है। प्राचीन सनातनी सस्कृति के प्राण को भाषा-शैली का नवीन देह प्रदान करने मे मिश्र जी को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इनके नाटक बाह्याडम्बरो से रहित हैं। इस नाटक मे अर्जुन के षोडश वर्षीय पुत्र अभिमन्यु द्वारा चक्रव्यूह प्रवेश की कथा अत्यत सजीव ढग से मूर्तिमान है। वीरता के साथ उसके भीतर तत्कालीन दार्शनिक अभिरुचि का भी अच्छा समावेश हुआ है। अभिमन्यु की दार्शनिकता उसकी वीरता के आगे आगे उतराती चलती है। कथन उपकथन सरल और सजीव है। नाटक मे छपाई की अशुद्धता खटकती है। मूल्य भी अधिक रखा गया है।

—गुरुनारायण पाण्डेय

श्री सर्वेश कृत रामायण—लेखक—महात्मा श्री सर्वेश जी महाराज, प्रकाशक—श्री मैनेजर, श्री हनुमत प्रेस, श्री अयोध्या जी।

श्री सर्वेश जी महाराज ने गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की भांति वैसे ही चौपाई, दोहा, सोरठा और छन्द मे तथा सात कांडो मे इसकी रचना करके दो भागो में प्रकाशित करवाया है और सर्वाधिकार सुरक्षित रखा है। प्रथम भाग में केवल बालकांड है, वह ५५५ पृष्ठो में समाप्त हुआ है, शेष ६ कांड दूसरे भाग में हैं, जिसमें ६६२ पृष्ठ हैं। भूमिका में लिखा है—'आधुनिक विश्व सर्वत्र और सर्वतमोगुण से शासित हो रहा है, उसको समूल विनष्ट करने के लिए इस रामायण के आविर्भाव का हेतु है। आधुनिक विश्व तमोगुण मे इतना बढ गया है कि

कार्यों का इतिहास जो लुप्त तथा गुप्त सा हो गया है, उसी को प्रदर्शित कर तथा उसी के द्वा
विश्व को पुन मनुष्य बनाने के लिए ही इस रामायण का निर्माण हुआ है।' भूमिका के इन शब
से इसकी भाषा और इसकी शैली समझ लेने में भी आसानी हो सकती है। 'विश्व को मनु
बनाने' से सम्भवत लेखक महोदय का आशय आर्य संस्कृति के अनुसार मानव गुणो से यु
कर देने का है। प्राचीन आर्यों का वह इतिहास जो लेखक के शब्दो में लुप्त तथा गुप्त सा हो ग
है इसमें प्रदर्शित करने की बात कह कर उन्होंने पाठक को यह आशा दिलायी है कि भारत के उ
काल में जब आर्यों का दक्षिण भारत मे भी प्रसार हो रहा था, अगस्त आदि ऋषियो ने अपने अ
अड्डे वहा बना लिये थे और किसी ऐसे वीर नायक को वहा चाहते थे, जो समस्त भारत को ए
में मिला कर लका तक में उसका आधिपत्य जमा दे और बालि, खर, दूषन आदि और इनसे
बढ कर रावण तथा अहिरावण, के प्रभाव क्षेत्रो और आधिपत्य क्षेत्रो से उनके प्रभाव और आ
पत्य को नष्ट कर दे। तब केकय देश की वीरागना केकयी ने जो अपने पति अवधनरेश दशरथ से
क्षेत्र में उनकी सहायता करते समय दो मनचाहे वरदानो को प्राप्त करने का वचन प्रा
कर चुकी थी, यह अच्छी तरह जान और समझ कर कि वह वीर नायक जिनकी इतने समय
प्रतीक्षा की जा रही थी स्वय दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र हैं, किसी विशेष कौशल से न,
इसलिए नही कि उन्हे किसी प्रकार का सौतिया डाह था या वे राम को हटा कर भरत को अयोध
का राजा बनाना चाहती थी, वरन् इसलिए कि राम के अनुपम व्यक्तित्व मे ही उन गुणो का विका
हुआ था, जिनके द्वारा आर्यों की इस महत्त्वपूर्ण उच्च राष्ट्रीय अभिलाषा को साकार रूप मि
सकता था—राम को वन भिजवाया। यदि यह राष्ट्रीय इतिहास महात्मा सर्वेश जी महाराज
अपनी इस रचना में लिखा होता या अन्य कोई भी समर्थ कवि इस समय उचित रूप से लिख दे
वह अपने आध्यात्मिक, धार्मिक तथा सकल पवित्र कृत्यो मे उसको प्रमुख स्थान देता
नि.सदेह यह रचना बहुत ही महत्त्वपूर्ण और क्रान्तिकारिणी समझी जाती और समझी जायगी
किन्तु इस रचना मे ऐसी कोई बात नही है। गोस्वामी जी ने अपने ढंग की क्रान्तिकारिणी रचना
भक्ति दर्शन और प्रसाद गुण आदि रखने मे जो सफलता पाई वह वैसी नही है, फिर भी इस
लेखक महोदय ने देशभक्ति और राष्ट्र की कुछ बाते यत्र तत्र कही है और अपने ढग से राम
गुणगान किया है, यह कम सराहनीय नही है। अनेक भक्तो को इससे भी नि सदेह आनन्द प्रा
होगा। इस रचना से केवल चार चौपाइयाँ और दो दोहे नीचे उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे इस
ढग कुछ समझ मे आ सकता है—

छूटे बिनु पशुत्व मुनिराई, नही मनुषत्व पूर्ण कोउ पाई।
काम क्रोध मद लोभ अघाई, सोई पशुत्व श्रुति कह गोहराई।
सम्यग तेहि त्यागे बिनु कोई, पूर्ण मनुष्य होय नही होई।
पूरण बिनु न पूर्ण ससारा, अखिल अमगलि बोझलि भारा।
हरि दर्शन यहि योनि महँ, होय सकत मुनि राय।
ताते सर्वोत्तम कहत, नर योनि श्रुति गाय।

हरि बिरहित यह अधम अपि, कहत सोई श्रुति गाय।
सर्वोत्तम सब विधि अधम, उभय सिद्धि मुनि राय।

—विजय वर्मा

श्री सर्वेश पद्य रत्नावली—लेखक—महात्मा श्री सर्वेश जी महाराज। पुस्तक मिलने का पता प० रामजियावन द्विवेदी, मु० अशरफपुर, पो० इसौली, तहसील मुसाफिरखाना, जिला सुल्तानपुर। पुस्तक का आकार डबल क्राउन १६ पेजी। पृष्ठसख्या भूमिका आदि मिलाकर ३२२। सजिल्द आकर्षक पुस्तक केवल लोक-कल्याण के लिए।

उपर्युक्त पुस्तक के तपस्वी तथा मनस्वी लेखक लोकधन्य श्री १०८ महात्मा श्री सर्वेश जी महाराज ने आधुनिक युग मे मानवता के प्रत्येक अग को पतन की ओर गतिशील होते देखकर जिस अन्तर्मुखी वेदना का अनुभव किया है उसी की चोट का यह प्रभाव है कि मगलमयी भावना का दिव्य प्रकाश मानवमात्र को सुलभ कराने के लिए श्री सर्वेश पद्य रत्नावली का स्वरूप प्रकट हो गया। पुस्तक की भाषा मे सरलता तथा भाव-गभीरता के साथ-साथ रहस्यमयता भी है। योग-शास्त्र के उच्चतम सिद्धान्तो का भी वर्णन बडी योग्यता के साथ किया गया है। जनता-द्वारा पुस्तक का आशातीत स्वागत होने की आशा इस दृष्टिकोण से की जाती है कि जनता के हृदय को स्पर्श करने वाली बौद्धिक प्रेरणा इस पुस्तक मे सर्वत्र परिलक्षित है।

—बेनीप्रसाद बाजपेयी "मजुल"

नयी चेतना—लेखक—श्री महेन्द्र भटनागर, प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस (प्राइवेट) लि०, पटना-४, मूल्य—दो रुपये।

'नयी चेतना' महेन्द्र भटनागर की सन् १९५० से ५३ के बीच लिखी ४५ कविताओ का सग्रह है। छायावाद की परिधि से हटकर कवि ने सामान्य जन-जीवन से प्रेरणा ली है। उसके हृदय मे आज के उपेक्षित, शोषित, प्रताडित वर्ग के प्रति पूरी सहानुभूति है इसलिए कवि ने अपनी इन अधिकाश रचनाओ मे शोषितवर्ग का रोना रोया है। निस्सदेह, उसके मन में उत्साह है, साहस है, विश्वास है इसीलिए घोषणा की है कि हम—

'नए इसान के मासूम सपनो पर
कभी भी बिजलियाँ गिरने नही देंगे।'

किन्तु कविता की सफलता तो तब है जब पाठक के मन मे भी ऐसी ही घोषणा करने का उत्साह जन्म ले ले। कविताएँ राजनीतिक अधिक है, राजनीतिक होते हुए साहित्य की सीमा-रेखा उनसे काफी दूर है। कुछ कविताएँ तो जैसे किसी राजनीतिक पार्टी विशेष का 'प्रोपेगैण्डा' मात्र है। यदि इस प्रकार का साहित्य सत्-साहित्य माना जायगा तो एक दिन चुनाव के अवसर पर दिये जाने वाले भाषणो को भी साहित्य में जगह देनी पडेगी।

शैली के दृष्टिकोण से कवि ने खिचडी पकायी हैं। कुछ कविताएँ आज के युग का कवि कहलाने के लिए तोड भाजकर लिखी गयी है और कुछ गीतिरूप में हैं। पाठको को प्रभावित करने के लिए पुस्तक के अत मे विभिन्न विद्वानो की सम्मतियो का जमघट लगा दिया गया है, इससे पुस्तक के व्यापारिक पक्ष पर तो प्रभाव पडेगा ही, यदि साहित्यिक पक्ष सूना रहा तो क्या ! भाषा में लचरपन हैं फिर भी कवि का उत्साह, उसकी आशा, उसका विश्वास वस्तुत श्लाघ्य है।

आधुनिक साहित्य और कला—ले०—श्री महेन्द्र भटनागर, प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पो० बा० न० ७० ज्ञानवापी, बनारस, पृष्ठसख्या २१७, मूल्य दो रुपये आठ आने।

प्रस्तुत पुस्तक मे लेखक के कवि रूप को छोडकर उसके आलोचक रूप के दर्शन होते है। ये लेख, जैसा कि लेखक ने स्वय स्वीकार किया है, लगता है उसे अध्यापन कार्य मे अनुभूत आवश्यकता की पूर्ति के लिए लिखने पडे है जिन्हे अब पुस्तक का रूप दे दिया गया है। और सम्भवत इसीलिए लेख परीक्षा मे पूछे गये प्रश्नो के उत्तर सरीखे हो गये है। पुस्तक की प्रस्तावना मे ही आशा के साथ यह दम भरा गया है कि ये लेख आलोच्य साहित्यकारो और पुस्तको के अध्ययन मे सहायक होगे, किंतु पुस्तक मे ऐसा बहुत कम है जो पाठक को निष्पक्ष एव स्वस्थ विचारधारा प्रदान कर सके। आलोचना मे निष्पक्षता की भारी कमी के साथ आलोच्य विषयो के पाश्चात्य सिद्धातो की तुला पर रखकर तोल दिया गया है, भारतीय सिद्धान्त आलोचक को तनिक भी याद नही रह सके। 'आचार्य विनयमोहन शर्मा की आलोचना शैली' मे आलोचक ने शर्मा जी की आलोचना फ्रायड, काडवेल, मार्क्स आदि पाश्चात्य विद्वानो के सिद्धातो के आधार पर तो की किन्तु भारतीय साहित्य मनीषियो का ध्यान कदाचित् लेखक को नही आ सका। काश, कि उसे भारतीय सिद्धात और सिद्धात प्रतिपादक भी याद रह जाते। पुस्तक के पढने से लगता है कि लेखक जाने-अनजाने प्रगतिशील साहित्य से प्रभावित है।

'डा० रामकुमार वर्मा कृत कौमुदी महोत्सव' मे लेखक ने पता नही यह लिखने मे तनिक भी सकोच क्यो नही किया कि 'यह नाटक आल इडिया रेडियो के लिए लिखा गया था'। यह बात और होती है कि कोई रचना रेडियो से प्रसारित कर दी जाय, किन्तु यह लिखना कि अमुक रचना का निर्माण रेडियो के लिए ही हुआ था लेखक की प्रतिभा एव उसकी साहित्यिक प्रवृत्ति को व्यावसायिक बना देना मात्र है, जो कि रामकुमार जी जैसे सच्चे साहित्य सेवी के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। 'कौमुदी महोत्सव' की समीक्षा मे लेखक को ध्यान रखना चाहिए था कि वस्तु के साथ ही पात्र, सवाद, शैली, भाषा आदि भी महत्त्व के तत्त्व होते है। 'माखनलाल चतुर्वेदी का कवि व्यक्तित्व', 'निराला का युगान्तरकारी रोल', 'अज्ञेय की कविता' आदि लेख यह स्पष्ट बताते है कि आलोच्य कलाकारो की आधुनिकतम कृतियो से लेखक का परिचय या तो है ही नही और यदि है तो बहुत कम।

पुस्तक के शीर्षक से उसको पढने का मन बहुत होता है, किन्तु विषय सूची देखते ही मन निराश हो जाता है। लेखक की यह बात ठीक है कि समग्र आधुनिक साहित्य और कला के सबंध

में एक ही स्थान पर लिखा भी तो नही जा सकता, किन्तु पाठको को भ्रम से बचाने के लिए शीर्षक को कुछ और स्पष्ट किया जा सकता था। भाषा सबधी कुछ भूले चिन्त्य है। प्रूफ की स्पष्ट अशुद्धियाँ मन पर कुछ बहुत अच्छा प्रभाव नही डालती। विषय सूची से ही ज्ञात हो जाता है कि पुस्तक में 'ब' और 'व' के अन्तर पर ध्यान नही दिया गया। जैसे व्यक्तित्व, कबि, कबिता आदि।

अत के दो लेख कला के अन्य अगो को छूने भर को मिल जाते है, जिससे सतोष करना पडता है कि आधुनिक साहित्य के साथ-साथ लेखक ने कला पर भी ध्यान दे दिया है। लेखक मे हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ आशा है, किन्तु ऐमी बाजारू पुस्तके देकर लेखक उस आशा को निराशा मे परिणत करता जा रहा है।

—कन्हैयालाल नन्दन

सस्कृताध्र हिन्दी बोधिनी (प्रथम भाग)—लेखक—श्रीकर्ण वीरनागेश्वर राव, प्रकाशक–आध्र भारती प्रकाशन मदिर, वेटपालेम (गुटूर), प्रकाशन १९५६, पृष्ठ १६०, मूल्य–एक रुपया आठ आना, प्रथमावृत्ति।

शासन द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी घोषित हो जाने के बाद, उसके प्रचार-प्रसार के लिए आवश्यक हो जाता है कि ऐसी पुस्तको की रचना की जाय, जिनके माध्यम से जन-साधारण की उत्सुकता हिन्दी को जानने और बोलने की ओर बढे। प्रस्तुत पुस्तक 'सस्कृताध्र हिन्दी बोधिनी' के लेखक ने अहिन्दी भाषा-भाषियो के लिए सुगमता पूर्वक हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ बडे मौलिक ढग से दी हुई है, इस पुस्तक की अपनी विशेषता यह भी है कि कोई भी हिन्दी-भाषा-भाषी जन दक्षिण भारत की सपन्न भाषा तेलुगु का आरभिक ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। इस पुस्तक की दूसरी विशेषता यह है कि सस्कृत के आरभिक विद्यार्थी के लिए भी पुस्तक इतनी ही उपयोगी है, जितनी कि हिन्दी के या तेलगु के आरम्भिक विद्यार्थियो के लिए।

इस प्रकार तेलुगु के माध्यम से हिन्दी और सस्कृत, दोनो भाषाओ की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक बडी ही उपयोगी है। पुस्तक को लिखने में लेखक ने आद्योपान्त यह ध्यान रखा है कि उसमे उदाहरणस्वरूप ऐसे वाक्यो का समावेश रहे, जो भारतीय सस्कृति के परिचायक और साथ-साथ सर्वजन सुलभ भी हो।

पुस्तक के इक्कीस पाठो मे व्याकरण सबधी विधियो, अभ्यास के लिए प्रश्न और बीच-बीच में आवश्यक रचनाएँ दी गयी है। पुस्तक विद्यार्थियो, पुस्तकालयो के लिए उपयोगी तो है ही, उन लोगो के लिए भी वह उतनी ही लाभप्रद है, जो हिन्दी के माध्यम से सस्कृत और तेलगु दोनो भाषाओ का आरभिक ज्ञान प्राप्त करना चाहे।

प्रादेशिक भाषाओ के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिन्दी को सीखने के लिए इस प्रकार की सप्रति बड़ी आवश्यकता है।

संस्कृति का पाँचवाँ अध्याय—लेखक—श्री किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक—हिमालय एजेंसी, कनखल; प्रकाशन १९५६ ई०, पृ० ९६, मूल्य डेढ रुपया।

प० किशोरीदास जी वाजपेयी का नाम, हिन्दी साहित्य मे थोडी भी रुचि रखने वाले लोगो के लिये नया प्रतीत न होगा; साथ ही हिन्दी की अभिवृद्धि के लिए उनके द्वारा किये गये और किये जा रहे मौलिक कार्यों से भी हिन्दी जगत् अपरिचित न होगा।

वाजपेयी जी की यह पुस्तक 'सस्कृति का पाँचवाँ अध्याय', जब तक देखने में न आई थी, पत्र-पत्रिकाओ में उसका नाम ही पढने को मिला था, ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका सबध दिनकर जी की हाल ही में नकाशित पुस्तक 'सस्कृति के चार अध्याय' से है, किन्तु दिनकर जी की पुस्तक की सामग्री का सूत्ररूप मे समावेश तो प्रस्तुत पुस्तक मे एक नई दिशा का ही निर्देशन मिलता है।

पुस्तक की पाठ्य-सामग्री को पाच भागो या पाच अध्यायो मे बाटा गया है। पहिले मे सस्कृति का स्वरूप, दूसरे मे आदि युग आर्य-द्रविड सम्मिलन, तीसरे मे शक-हूण आदि, चौथे मे मुसलमानो के आक्रमण और पाचवें हिस्से मे अग्रेजी राज और स्वराज का सिलसिलेवार वर्णन किया गया है।

पुस्तक की भूमिका मे वाजपेयी जी ने जैसा सकेत किया है कि उसके प्रथम चार अध्यायो मे भारतीय सस्कृति के तत्वो का सामान्य दिग्दर्शन और अतिम पाचवे अध्याय मे उनका कर्तव्य-निरूपण किया गया है, पुस्तक को सारी पढ जाने के बाद ही, उसका यह निष्कर्ष समझ मे आता है। प्रथम चार अध्यायो की विषय-सामग्री का लक्ष्य अतिम पाचवे अध्याय के उद्देश्य मे जा कर फलित होता है।

राष्ट्रीय स्वतत्रता के बाद जो वर्गजन्य सकीर्णताएँ, साहित्यिक, सास्कृतिक तथा राजनीतिक क्षेत्रो मे जो असमानताएँ और हमारे व्यावहारिक जीवन मे जो अनुदारता आ गई, उनसे स्वतत्र भारत के सास्कृतिक निर्माण मे कितना अहित हो सकता है, इनके रहस्यो की कहानी जानने के लिए पुस्तक बडी उपयोगी है। कही-कही वाजपेयी जी ने जिन सार्वजनिक प्रश्नो का अपनी वैयक्तिक व्याख्या मे नवीनीकरण किया है, वे स्थल ऊपरी दृष्टि से अटपटे जरूर प्रतीत होते है, किन्तु वे अवास्तविक नही है। इतने बडे विषय को इस छोटी सी पुस्तक के थोडे से पृष्ठो मे समाविष्ट कर देने का ढग वाजपेयी जी की अपनी विशेषता है।

धूल-धूसरित मणियाँ—लेखिकाएँ—श्री सीता श्री दमयन्ती श्री लीला, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, प्रकाशन–दिसम्बर १९५६, आकार ९½×५, पृष्ठ ४१८ (भूमिका सहित), मूल्य पद्रह रुपये, छपाई, सफाई और गेटअप सुदर, श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी को समर्पित।

हिन्दी भाषा के लिए यह एक गौरव की बात है कि भारत के जन-जन की वाणी में बिखरे और विशेषत यहा की महिला समाज के कठ मे जीवित इस नवोन्मुख उपयोगी साहित्य को लिपि-

बद्ध करने का श्रेय इस पुस्तक की महिला लेखिकाओं ने प्राप्त किया है। इस सच्चाई से इन्कार नही किया जा सकता है कि लोक-साहित्य का सारा का सारा अस्तित्व दूर देहातो के एकान्त जीवन में ही सहस्राब्दियो से सुरक्षित रहता आया है, और साथ ही यह भी सत्य है कि लोक साहित्य की इस महती सपदा की एकमात्र अधिकारिणियाँ भी प्रधानतया महिलाएँ ही रही हैं, और इसलिए इस बात को न मानना भी एक भूल होगी, कि समग्र भारत के ओर-छोर तक बिखरी हुई धूल-धूसरित मणियो को जिस निपुणता से महिलायें सवार-सुधार तथा सजाकर प्रस्तुत कर सकती है उतना पुरुषवर्ग नही।

कुछ दिन पूर्व इन तीनो लेखिकाओ की एक पुस्तक जिसमें प्रकाशन सवत् का उल्लेख नही है, 'ग्राम्य-गीतो मे करुण-रस' के नाम से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक की पृष्ठसख्या १२४ और मूल्य दो रुपया है। पुस्तक की विषय-सामग्री अच्छी है, यद्यपि ग्राम्यगीतो में करुण रस की समाप्ति यही तक नही हो जाती है। लेखिकाओ की इस दूसरी पुस्तक में करुण रस सबधी अधिकाश गीत पूर्व प्रकाशित पुस्तक से आये है।

इस आलोच्य पुस्तक मे ३५० गीत सकलित है। ये गीत छ खडो मे विभाजित है। पहिले 'लोकगीतो मे भक्तिरस' नामक खड मे श्रीकृष्ण, राम-सीता और भगवद्भक्ति विषयक लेखो की रचना, दूसरे मे सोहर तथा विरह के गीत, तीसरे मे नृत्य, हास्य एव व्यग के गीत, चौथे मे सावन के गीत, पाचवें मे करुणरस के गीत और छठे मे विभिन्न विषयक गीत सकलित है। इनके अतिरिक्त भूमिका के २७ पृष्ठो मे लोकगीतो पर प्रकाश डाला गया है और परिशिष्ट के ११ पृष्ठो में कुछ लोक बोलियो के शब्दो का हिन्दी पर्याय दे दिया गया है।

पुस्तक की समग्र गीत-सामग्री प्राय उत्तर प्रदेश की है, उनमें पश्चिमी भाग के गीतो की प्रधानता है। कुछ गीत दिल्ली, पजाब और राजस्थान से भी सबधित है, किन्तु उन्हे उक्त प्रदेशो का प्रतिनिधि गीत नही कहा जा सकता है। अधिकाश लोकगीत ऐसे ही है जो अन्यान्य सपादको द्वारा सपादित और प्रकाशित किये जा चुके है।

पुस्तक में जिन दूसरे लेखको, कवियो, महापुरुषो के मतो और विचारो को उद्धृत किया गया है, वहा उनकी मौलिक रचनाओ का निर्देश नही किया गया है, पाठक की ज्ञान वृद्धि पुस्तक की उपयोगिता और प्रस्तुत विषय पर भविष्य मे कार्य करने वाले लोगो के लिए जिनका सही-सही हवाला देना नितान्त जरूरी था।

प्रस्तुत पुस्तक 'धूल-धूसरित मणियाँ' अपनी निर्मात्रियो के प्रति सरकार की विशेष कृपा दृष्टि का उज्ज्वल उदाहरण पेश करती है। सरकार का ध्यान आकर्षित करने और विशेष रूप से हिन्दी के पाठको, लेखको की जानकारी के लिए हम यहाँ लोक-साहित्य पर लिखी गई हिन्दी की कुछ प्रामाणिक पुस्तको की सूची उनके आवश्यक विवरणो सहित पेश करते हैं, और आग्रह करते है कि उनके साथ प्रस्तुत पुस्तक की तुलना करके सरकार, पाठक, और लेखक ही निर्णय करे कि प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य पद्रह रुपये रखने का उद्देश्य क्या है।

पुस्तको की सूची उनके मूल्य क्रम से इस प्रकार है —

लेखक	पुस्तक	प्रकाशन तिथि	मूल्य	पृष्ठ
श्री उमाशकर शुक्ल	बुदेलखड के लोकगीत	(२०१० वि०)	२)	१४८
श्री नरोत्तम स्वामी				
श्री सूर्यकरण पारीक				
ठा० रामसिह	राजस्थान के लोकगीत	(१९४८),	२॥),	२७६
श्री रामइकबाल सिह	मैथिली लोकगीत	(१९९९),	३),	४३२
श्री सत्यव्रत अवस्थी	लोक-रागिनी	(१९५६),	३),	१९३
श्री श्यामपरमार	भारतीय लोक साहित्य	(१९५४),	३॥),	२१९
श्री कृष्णदास	लोकगीतो की सास्कृतिक व्याख्या	(१९५६),	४),	२४९
श्री कृष्णदेव उपाध्याय	भोजपुरी ग्रामगीत	(२०००),	४॥),	३९८
श्री रामनरेश त्रिपाठी	ग्रामसाहित्य (३)	(१९५२),	६),	३३७
श्री देवेद्र सत्यार्थी	धीरे बहो गगा	(१९४८),	६),	१७५
श्री रामनरेश त्रिपाठी	कविता कौमुदी (३)	(१९५५),	८),	८८७
श्री देवेद्र सत्यार्थी	बाजत आवे ढोल	(१९५२),	९),	१६०
,,	बेला फूले आधीरात	(१९४८),	१०),	४१४
,,	धरती गाती है	(१९४८),	१०),	१४९१

इस सूची मे सत्यार्थी जी की अधिकाश पुस्तको का मूल्य मेरी दृष्टि मे आपत्तिजनक है, किन्तु आलोच्य पुस्तक का मूल्य तो इस आधार पर बहुत अधिक, मेरी समझ से दुगना है। यह भूल या प्रलोभन लेखिकाओ से सबधित है अथवा प्रकाशक उसका उत्तरदायी है, इस रहस्य को वही जाने।

—वाचस्पति शर्मा, गौरेला

हमारे सहयोगी

प्रभात (पाक्षिक) सम्पादक—एन० वी० कृष्णवारियार, प्रकाशक—मातृभूमि प्रकाशन, कोरिक्कोड, केरल। वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति ।)।

काव्य, वैदुष्य और प्राकृतिक सौदर्य की जननी केरल भूमि है। विस्तृत सागर तट, नारिकेल, पूगीफल के हरियाले उपवन जिनका आलिगन करने में निरत नील नीरद दर्शक की आंखो मे शाश्वत-सुषमा भरते है। आनतलोचना, सुकेशी मलयाल सुन्दरियाँ केरल की जीवित सुन्दरता और शील-सी जान पडती है। कन्याकुमारी, लक्षद्वीप, नागरकोविल, पद्मनाभ पुरम्, शुचीन्द्रम्, कोटिकोड केरल की जनपदीय और सास्कृतिक सुषमा की निधि है। जगद्गुरु शकराचार्य, कुचननपियार, आशानवल्लतोल जैसे दिव्यात्माओ एव महाकवियो की जन्मदात्री तथा

कथाकली, तुल्लल नृत्यो और गीतो की प्रसविनी केरल मही में प्रभात का पाक्षिक उदय दक्षिण में हिन्दी के लिए स्वर्णिम प्रभात है।

इस पत्र के प्रथम अक के मुखपृष्ठ पर केरलीय कला-सज्जा से सज्जित हाथी का चित्र केरलीय सास्कृतिक निष्ठा का परिचायक है। मध्य केरल में अप्रैल के महीने मे आराट्टपुषा नाम के गाँव मे प्रतिवर्ष एक दिन मेला लगता है, जिस मे सौ सुसज्जित हाथी एक पक्ति में खडे होते है, उनके मध्य एक सर्वोपरि सुसज्जित हाथी खडा होता है, जिस पर भगवान श्रीराम की स्वर्ण प्रतिमा आरूढ रहती है। हाथियो के सामने तूर्यनाद, भेरी, पटह आदि वाद्य बजते है। ऐसे ही अवसर का चित्र मुखपृष्ठ की शोभा बढा रहा है।

इस अक में तीन सुन्दर कविताएँ, एक केरलीय कथा और सात उत्तम लेख है। लेख सामग्री और रूप सज्जा नितान्त उपयोगी और आकर्षक है। नि सन्देह यह सामग्री प्रभात की स्वर्णिम किरण बनी हुई है। हम नवजात सहयोगी का हार्दिक अभिनन्दन करते है।

आलोचना (त्रैमासिक) सम्पादक—नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

आलोचना पाँच वर्ष से प्रकाशित हो रही है। यह अक अप्रैल मास का अठारह सख्यक है। सम्पादकीय व्यवस्था मे परिवर्तन होने के कारण यह अक अति विलब से प्रकाशित हुआ है।

आलोचना साहित्य मे आलोचना किस पद्धति और सिद्धान्त को लेकर प्रकाशित होती है यह समझना कठिन हो रहा है। इसलिए कि शायद इसका निश्चय और निर्णय सपादक ही करते है, और जब प्रकाशक से उनका मतभेद हो जाता है तो सपादक के साथ आलोचना के ध्येय भी वदल जाया करते है। आलोचना अपने जन्म से लेकर कुछ वर्ष तक प्रगतिवाद का सहारा लेकर चली, जब हँसने बोलने लगी तो वह व्यक्तिवादी प्रयोगवादी बन कर नयी आलोचना बनी। व्यक्तिवाद की अगुली पकडते ही प्रकाशक द्वारा अकस्थ कर शास्त्रीय पद्धति पर उसे चलने की शिक्षा दी जाने लगी। उस पद्धति पर आलोचना का यह अठारहवाँ चरण है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे अन्वीक्षणशक्ति-सम्पन्न समालोचक और शील-सम्पन्न व्यक्तित्व गुमराह आलोचना को 'एष पन्था सनातन' की शिक्षा देने मे पूर्ण क्षम्य है इसमे सन्देह नही है। देखना यह है कि आलोचना के अभिभावक को यह पद्धति कब तक पसन्द आती है।

आलोचना का यह अक लेख-सामग्री से उतना उल्लेखनीय नही है जितना सम्पादकीय अग्रलेख से। नयी व्यवस्था, कम समय और भाराधिक्य के कारण लेखो का सामान्य होना स्वाभाविक है, किन्तु सम्पादकीय दृष्टिकोण मे जो सन्तुलन, समन्वय की भावना, साहित्य की प्रत्येक दिशा के उन्नयन का सकल्प और नीर-क्षीर विवेक का ध्येय है साथ ही उन्हें पूरा करने, उन पर अमल करने की जो सकल्पदृढता है, उससे बहुत कुछ सन्तोष और प्रसन्नता हो रही है। हमारी कामना है कि आचार्य वाजपेयी की रससिद्ध लेखनी आलोचना को सुसस्कृत, परिनिष्ठित और सोद्देश्य बनाने में सफल हो।

आजकल (वार्षिक अंक)

भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा बुद्ध की ढाई हजारवी जयन्ती के अवसर पर 'बौद्ध धर्म के पचीस सौ वर्ष' नाम की पुस्तक प्रकाशित की गयी थी। उसी पुस्तक को आजकल ने विशेषाक के रूप मे स्वीकृत कर प्रकाशित किया है।

इस पुस्तक के लेखक पी० वी० बापट है। डा० राधाकृष्णन ने भूमिका लिखी है। मूल्य ३) पब्लिकेशन्स डिवीजन ओल्ड सेक्रेटेरियट दिल्ली से प्राप्त।

तेरह अध्यायो मे विभक्त २५६ पृष्ठो की इस पुस्तक मे अधिकतर वही लेख सामग्री है जिसका सबध बौद्ध धर्म की उस शृखला से है जो हजारो वर्ष पूर्व भारत के साथ पूर्वी एशिया के अन्य देशो को जोडे हुए थी। यह सबध बौद्धधर्म की उस विशेषता पर आधारित थे जो समता, सद्भाव, मानवता और परदु खकातरता से उत्पन्न थी।

लेखो द्वारा बौद्धधर्म के सिद्धान्तो, सामाजिक आदर्शो और राजनीति तथा आचारो को बताया गया है। इनके अतिरिक्त भारत तथा विदेशो मे स्थित बौद्ध धर्म के मुख्य निकायो, सम्प्रदायो तथा बौद्ध साहित्य, कला, स्थापत्य का सुन्दर विवरण एव कालान्तर मे होने वाले परिवर्तनो का तुलनात्मक परिचय दिया गया है। वर्तमान समय फिर ढाई हजार वर्ष पुराने समय के उन आदर्शों की ओर उन्मुख हो रहा है जो उस समय पचशील पर आधारित थे। नैतिकता और आचरण, परस्पर सहयोग आदि को लेकर भारत ने विश्व की राजनीति मे बुद्ध द्वारा कहे गये 'पचशील' शब्द का प्रवेश कराया जो सर्वत्र समादरित हो रहा है। विश्व के एकमात्र सघटन राष्ट्र सघ मे भी शान्ति की महत्ता और उपयोगिता पूर्णरूप से स्वीकार कर ली गयी है। जब सारा विश्व सत्य, अहिसा शान्ति, मैत्री और मानवता प्राप्त करने, उन्हे व्यापक बनाने के लिए अन्धेरे मे टटोल रहा है ऐसे समय मे ऐसी पुस्तकें, ऐसे सघटन और इसी से सबधित समारोह नि -सन्देह अमृतफल सिद्ध होगे।

विधिपत्रिका—सपादक—श्री सिद्धनाथ सिह, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वार्षिक मूल्य १०)

किसी भी राष्ट्रीय सरकार के स्वाभिमान और गौरव की कसौटी राज-काज अपनी राष्ट्रभाषा मे होना है। विश्व के स्वतत्र स्वाभिमानी राष्ट्र अपनी राष्ट्रभाषा को सर्वोपरि महत्त्व दे रहे है। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी सविधान द्वारा स्वीकृत है तब हमारा कर्तव्य हो जाता है कि राष्ट्र के सभी प्रकार के विधि-विधानो मे हिन्दी का ही व्यवहार किया जाय, किन्तु हमारी राष्ट्रीय सरकार जब इस ओर से उदासीन है और अपनी अकल्पनीय विवशताएँ बताती है तब नागरी प्रचारिणी सभा जैसी सस्था का यह अभिमान अभिनन्दनीय है।

यद्यपि सम्पादकीय निवेदन मे कही गयी बाते नितान्त सुसस्कृत, वैध और अनिवार्य आवश्यकता कही जा सकती है, किन्तु जितना कहा गया है, सोचा गया है वह हमारी सीमा से परे केन्द्रीय सरकार के वृत्त के अन्दर की बात है। इसीलिए तदनुकूल चेष्टा न होकर केवल

अनुवाद ही इस अंक का उल्लेखनीय कार्य है जो प्रशस्त और प्रबुद्ध है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त, इलाहाबाद, पटना, राजस्थान, विन्ध्यप्रदेश आदि उच्च न्यायालयों के उल्लेखनीय निर्णयों, अधिनियमो और विधेयको के हिन्दी अनुवाद परिभाषाओं की दृष्टि से बहुत अच्छे हुए हैं।

गत वर्ष इसी उद्देश्य से ग्वालियर से उच्च न्यायालयीय निर्णय भी प्रकाशित हुआ है। विधि पत्रिका को प्रबुद्ध सम्पादको और परामर्शदाताओ का स्तुत्य सहयोग प्राप्त होने के कारण यह पत्रिका हिन्दी की एक बहुत बडी आवश्यकता की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकेगी—ऐसा विश्वास है।

वैश्वानर (दयाराम स्मारक अक)—सम्पादक—प्रेमलाल गो० 'भक्तिप्रिय', प्रकाशक—वैश्वानर कार्यालय, झवेरी बाजार, पोर बन्दर, इस अक का मूल्य १॥)।

जिस उद्देश्य को लेकर वैश्वानर प्रकाशित हो रहा है, उसकी पूर्ति के लिए वह उत्तरोत्तर सजग और सचेष्ट है। पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का सन्देशवाहक वैश्वानर गुजराती भाषा का एक ऐसा पत्र है, जो हिन्दी और गुजराती भाषा-भाषी भावप्रवण जनता के बीच सुदृढ शृखला है। प्रतिवर्ष जो विशेषाक यह पत्र प्रकाशित करता है, वह भक्ति भाव सम्पन्न वैष्णव जनता के लिए नितान्त उपयोगी हुआ करते है। ऐसे ही विशेषांको में यह 'दयाराम स्मारक' अक है जो भक्ति साहित्य के इतिहास का एक अध्याय है।

दयाराम भाई गुजराती नागर ब्राह्मण थे, हिन्दी और गुजराती भाषा मे लिखित उनका साहित्य गौरव की वस्तु है। नरसी मेहता के बाद गुजरात मे यदि किसी कवि की गणना की जाती है तो भक्त दयाराम भाई की, जो गुजरात मे सूरदास जी की भाँति प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। दयाराम भाई के नाम-स्मरण से ही राधा, कृष्ण, वृन्दावन, कुञ्ज, केलि, यमुना तट सब साकार होकर दृष्टि पथ पर आ जाते है। गुजराती का भक्ति साहित्य दयाराम भाई की रचनाओ से विशेष अलकृत हुआ है। उनके गरबे गुजराती कण्ठ के शृगार हैं। उनका समूचा साहित्य भगवत्-प्रेम साहित्य है जो लीलात्मक, भगवद्गुणात्मक, सिद्धान्तात्मक, उपदेशात्मक और आख्यानात्मक है।

ऐसे भक्त कवि के स्मारक का प्रतीक वैश्वानर का यह विशेषाक है, जो अनेकविध संस्मरणात्मक, इतिवृत्तात्मक और आलोचनात्मक सामग्री से सर्वांग सुन्दर है।

सम्पादकीय

साहित्य सर्जना

संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किये जाने पर भी हिन्दी का वैसा देश-व्यापी अध्ययन, प्रचार, प्रसार नही हो रहा है, जैसा कि राष्ट्रभाषा की दृष्टि से होना चाहिए। यही नही, राष्ट्रभाषा के नाम पर अनावश्यक, अनपेक्षित विसवाद भी प्राय जनता तथा राष्ट्रीय सरकार द्वारा उत्पन्न किया जा रहा है। क्षेत्रीय भाषा के नाम पर आन्दोलनो का सूत्रपात कर तथा उत्तर और दक्षिण एव आर्य अनार्य-भावनाओ को उभाडकर हिन्दी को पीछे ढकेलने की चेष्टाएँ की जा रही है।

अहिन्दी प्रदेशो के कतिपय वर्गों का कहना है, कि हिन्दी उन पर बलात् लादी जा रही है। हमे यह भी कहने मे सकोच नही हो रहा है, कि हिन्दी प्रदेश के कुछ अनधिकारी व्यक्ति अपने वक्तव्यो, भाषणो और लेखो द्वारा कभी कभी ऐसी बात कह डालते है, जिसमे ऐसा प्रतीत होता है, कि कशमकश के बाद सविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जाना हिन्दी वालो की विजय है। स्पष्ट है कि ऐसा विजयोन्माद, यह भ्रम कि हिन्दी अहिन्दी भाषियो पर बलात् लादी जा रही है—हिन्दी के विकास और निर्माण के लिए बाधा स्वरूप है।

इस स्थल पर हमें बिहार के राज्यपाल श्री दिवाकर महोदय की यह उक्ति न भूलनी चाहिए जो उन्होने गत मास हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग मे दीक्षान्त भाषण देते हुए कहा था कि 'साहित्य की सृष्टि मानसिक तथा सास्कृतिक विकास और प्रसार पर निर्भर है। इस कथन मे हमारे साहित्य-सर्जन की लम्बी परपरा और उसका इतिहास निहित है। वस्तुत भाषा और साहित्य के विकास का यह एक उच्च सिद्धान्त है। हमारे देश मे सस्कृत भाषा की व्यापकता, लोकप्रियता और उसका निर्णय-विकास इसी सिद्धान्त के आधार पर हुआ है। यह मानना अनुचित न होगा कि हिन्दी का जो विकास और प्रभाव क्रमश वर्द्धमान हुआ है सस्कृत भाषा के इसी सिद्धांत की वीथी पर चलने से हुआ है। हमारे सन्तो ने गुजरात, महाराष्ट्र, द्रविड, आन्ध्र, उत्कल, बगाल आदि अहिन्दी भाषी प्रान्तो में रहते हुए जिस सन्त-साहित्य की रचना हिन्दी में की है, वह मानसिक और सास्कृतिक विकास पर ही निर्भर है, वस्तुत यही कारण है कि देश की अन्यान्य भाषाओ की अपेक्षा हिन्दी के बोलने वाले, समझने वाले देश में बहुसख्यक व्यक्ति है। श्री दिवाकर जी का यह कहना भी यथार्थ है कि "हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में इसलिए स्वीकार नही किया गया कि वह अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा समृद्ध या पुरानी है बल्कि मुख्यत इसलिए कि उत्तर के अधिकाश लोग इसे समझते हैं और इसे स्वीकार करते हैं। सख्या गरिष्ठता ही राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति का कारण है।"

तर्क और सिद्धान्त द्वारा यह प्रमाणित है, कि वही भाषा लोकप्रिय हुआ करती है और उसी भाषा के बोलने वालो और समझनेवालों की सख्या अधिक हुआ करती हैं जो जनसस्कृति, धर्म और विचारों का वहन किया करती है। इतना तो निर्विवाद है, कि अन्य वर्तमान देशी भाषाओ की अपेक्षा हिन्दी मानसिक और सांस्कृतिक विचार प्रसार करने में प्रारंभ से ही क्षमताशील रही है। तुलसी, सूर, रहीम, जायसी जैसे उत्तर भारतीय सन्त कवियों को छोड़ दें तो भी संत ज्ञानेश्वर, विद्यापति, नामदेव, तुकाराम आदि अहिन्दी प्रदेशो के सतो तथा आन्ध्र, हैदराबाद, दक्षिण के सतो, मुसलमान कवियो ने आसेतु हिमालय मानसिक और सांस्कृतिक विचारो का प्रसारण हिन्दी के माध्यम से किया है।

आज हमें सन्तुलित मस्तिष्क से हिन्दी की विकास पद्धति और उसके विरुद्ध निदान को सोचने समझने की आवश्यकता है। हम हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए अग्रेजी के व्यापक प्रसार की पद्धति को अपनाने के लिए अधिक आतुर हो रहे हैं। अग्रेजी समस्त भारत मे इसलिए छा गयी थी, कि उसके पढने से सरकारी नौकरियो के मिलने की पूर्ण आशा रहती थी। यह तो राजनैतिक विवशता थी, आवश्यकता इस समय विवश बनाने या बलात् थोपने की नही बल्कि भावनाओ को बदलने और मन को जीतने की है। यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब हम हिन्दी साहित्य का निर्माण इसी दृष्टिकोण से करे। मन और भावनाओ पर अधिकार प्राप्त करने, आत्मीयता और एकता बढाने मे हमारे दर्शन और पौराणिक, ऐतिहासिक गाथा साहित्य एव नीति विज्ञान सहायक है। कहना न होगा संस्कृत भाषा के व्यापक प्रचार के मूल कारण यही तत्त्व हैं। इन्ही तत्त्वो के कुछ अशो को अपनाने से हिन्दी जीवित-जाग्रत भाषा बनी हुई है।

हिन्दी मे अनुवाद और परिभाषा कोशो का सर्जन तो द्रुत गति से हो रहा है आवश्यकता है दार्शनिक, सास्कृतिक साहित्य की, जिनका आधार कथाएँ हो। यदि इस पद्धति को हम स्वीकार कर हिन्दी के साहित्य की सृष्टि करे तो फैले हुए विवाद और विसवाद स्वत धूमिल पड जायँ, शान्त हो जायँ।

संस्कृत आयोग

जिस काम की अनिवार्यता को नष्ट कर उसे शिथिल या विचाराधीन रखना होता है तो उसके लिए उपसमितियाँ और आयोग नियुक्त कर देना आजकल की राजनीतिक कुशलता है। हमारी सरकार इस दिशा में बहुत अग्रसर और उन्मुख इसलिए रहती है, कि ससद सदस्यों की आलोचनाओं से बचने तथा अपनी मन सोची बात को करने का पूरा अवसर उसे उपसमितियाँ और आयोगो के सगठन से मिल जाता है। हिन्दी के सबध मे शिक्षामत्रालय की छीछालेदर जब चरम सीमा तक पहुँच गयी तो मुक्ति पाने के लिए उसने हिन्दी आयोग बनाकर सुख से सास ली, लेकिन ससद ने उस मत्रालय को चैन से बैठने न देने की मानो शपथ खा रखी है, हिन्दी से जी छूटा तो सस्कृत भाषा चन्द्रहास बनकर शिक्षामत्रालय की ओर लपलपाने लगी। फलत. आयोग

निर्माण में अभ्यस्त शिक्षामंत्री ने सस्कृत आयोग का स्वाग रचकर ससद-सदस्यों को शान्त कर दिया।

सस्कृत आयोग के उद्देश्यो और उसके सघटन को देखते हुए यह कहना पडता है कि शिक्षामत्री महोदय का उद्देश्य केवल यह है कि 'बैठे से बेगार भली।' ऐसे काम जिनका परिणाम जनहित, राष्ट्रहित की दृष्टि में शून्य निकलता हो अथवा लाभ के स्थान पर हानि की सभावना हो हमारी सरकार भारतीय करदाताओ का धन अपव्यय कर अपनी प्रच्छन्न मनोकामना पूरी करना चाहती है।

सस्कृत आयोग क्या है?—धोखे की टट्टी। कहने के लिए तो इस योजना को विभ्राट् कहा जाता है, किन्तु उसकी अन्त समीक्षा करने से वही 'ढाक के तीन पात' वाली कहावत चरितार्थ होती है। सस्कृत आयोग का खोखलापन उसकी सदस्य नामावली से ही प्रकट हो जाता है, जिसके विरुद्ध उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द जैसे मनीषी की नैतिकता ने आवाज उठायी है। आयोग के सदस्य ऐसे नामाकित किये गये हैं, जिनमे अधिकाश सस्कृत की प्राचीन प्रौढ परम्परा, पद्धति और उसके शैली-स्वरूपो से अपरिचित है। दूसरी बात जो सबसे बड़े रहस्य की है वह यह है, कि इस प्रकार के सदस्यो की नियुक्ति से सरकार एक तीर से दो शिकार आसानी से कर सकेगी। क्योकि अधिकतर सदस्य अहिन्दी भाषी होने के साथ ही अंग्रेजी के प्रबल समर्थक, पोषक और पक्षपाती हैं। यह मानी हुई बात है, कि यदि सस्कृत के अध्ययन, अध्यापन और उसके साहित्य के निर्माण, प्रकाशन में गतिशीलता होती है तो सस्कृत से आविर्भूत हिन्दी को अनायास समृद्धि, सम्पन्नता और व्यापकता प्राप्त होगी—जो वर्तमान शिक्षा मत्रालय को शायद अभीष्ट नही, इसलिए ऐसे सदस्य चुने गये हैं, जो सस्कृत के स्थान में अग्रेजी भाषा का उद्गीथ गान अपने प्रतिवेदन में करेंगे।

उत्तर भारत मे विशेषत उत्तर प्रदेश और इस प्रदेश की नगरी वाराणसी युग-युग से देश, विदेश में सस्कृत भाषा और संस्कृति तथा धर्म की जननी मानी जाती है। उसकी यह मान्यता भावुकतावश नही, बल्कि उसके शाश्वत प्रयासो, निर्माणो और उद्योगो के कारण है। काशी का यह अतीत गौरव अब भी अक्षुण्ण है आज भी काशी विश्व भर के जिज्ञासुओ के लिए विद्या और सस्कृति का केन्द्र है। प्रतिवर्ष सहस्रो विदेशी जिज्ञासु उन महामना विद्वानो के पास अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने के लिए आया करते है। समस्त भारत काशी के ज्ञान चक्षुओ को लेकर अपनी सास्कृतिक जीवन-नौका चला रहा है। वेद, षट्शास्त्र, षट्दर्शन, इतिहास, पुराण, व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य आदि विभिन्न विषयो के प्रौढ पारगत जो विद्वान् काशी मे हैं अन्यत्र नही है। सस्कृत भाषा के उद्भव से लेकर उसके अद्यतन विकास तक की अवधि की परंपरा, पद्धति और इतिहास के विशेषज्ञ काशी ही में है, किन्तु शिक्षामत्रालय ने उन्हें सस्कृत आयोग मे सदस्य बनाने की आवश्यकता नही समझी, उनकी उपेक्षा की। निश्चित है कि सगठित आयोग सस्कृत भाषा और भारतीय विद्वानो का प्रतिनिधि नही है, वह सरकारी मशीन मात्र है। ऐसे आयोग को देशवासी कहाँ तक मान्यता और सहयोग प्रदान करेंगे—यह नही कहा जा सकता किन्तु इतना तो

निश्चित ही कहा जा सकता है कि इस आयोग से संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति का हित संभव नहीं है।

एशियायी लेखक सम्मेलन

पिछले दिनों नयी दिल्ली में एशियायी लेखक सम्मेलन सम्पन्न हुआ। यद्यपि इस सम्मेलन का पूरा विवरण अभी हमे प्राप्त नही हुआ किन्तु समाचार पत्रो द्वारा तथा उत्तरदायी दर्शको द्वारा यत्किञ्चित् पढ़ने सुनने से मिला उससे निराश या दुःखी होने का भाव इसलिए नही उत्पन्न हुआ कि पूत के पाँव पालने में ही जान लिये गये थे, तात्पर्य यह कि वह सम्मेलन एक सुरक्षित वर्ग का सम्मेलन मात्र था। अमेरिका और रूस का मनोमय युद्ध था। ऐसा प्रतीत होता था कि भारत का कोई अस्तित्व या प्रतिनिधित्व ही नही रहा। उसमें तू-तू मैं-मैं के अतिरिक्त और रचनात्मक विचारधाराओ की आशा ही नही की जा सकती थी। हाँ इतना सुनकर क्षोभ अवश्य हुआ कि विदेशी लेखक अतिथियो के समक्ष इन भारतीय लेखको ने अपना जो परिचय दिया है, उससे देश की शानदार परपरा में धब्बा लग गया है। विचारो की विभिन्नता, शैली की विभिन्नता स्वाभाविक है, किन्तु साहित्यिक मच को राजनैतिक मच बनाकर विसवाद खडा कर देना लेखक या मनीषी का काम नही है।

स्वर्गीय पण्डित रविशंकर शुक्ल

गत वर्षान्त के दिन हमारे देश के सबसे बडे राज्य-प्रदेश के मुख्यमत्री रविशंकर शुक्ल जी का राजधानी नई दिल्ली मे आकस्मिक देहावसान हो गया। शुक्ल जी यद्यपि ८० वर्ष के थे तथापि उनका शरीर बहुत स्वस्थ, कर्मण्यता से भरा हुआ तथा पूर्ण नीरोग था। जिसने उन्हें एक दिन पूर्व देखा था, उसे स्वप्न मे यह आशंका नही थी कि शुक्ल जी का अवसान इतना समीप है। किन्तु क्रूर विधि का विधान कौन टाल सका है। सन्ध्या को साधारण ज्वर और खासी आरम्भ हुई, रात मे उसका रूप कुछ उग्र हुआ और दूसरे दिन ११ बजे तक दशा चिन्ता-जनक हो गई। फिर तो लगभग ढाई बजे वह अनहोनी दुर्घटना हुई जिसे सुनने और सहने के लिए हमारा देश तैयार नही था।

पण्डित शुक्ल हमारे देश की एक उज्ज्वल प्रतिभा थे। उनमे अपार कर्मण्यता तथा अदम्य निर्मात्री शक्ति थी। साहस के वे एक जगमगाते हुए पुज थे। उनका गभीर प्रशासनिक अनुभव और मधुर स्वभाव हमारे देश की प्राचीन सस्कृति का एक मोहक प्रतीक था। जैसे बाहर से देखने में वे विशाल व्यक्तित्व सम्पन्न थे वैसे ही उनकी परम उदार एव सुसस्कृत आत्मा भी थी। उनकी जैसी व्यवहार कुशलता एव विरोधियो के प्रति भी सहिष्णुता की उदात्त भावना आज के युग में दुर्लभ है। जैसी गभीरता और अविचलता उनके स्वभाव में थी वैसे ही निर्भीकता एव निष्ठा उनके कार्यों में भी होती थी। उनका सुप्रसन्न एव ओजस्वी विशाल मुख मण्डल तथा सुघटित एव, स्वस्थ शरीर जिस प्रकार सहस्रों की भीड में अनायास ही सब को आकृष्ट कर लेता था उसी प्रकार उनकी जन्मजात राष्ट्रीयता तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट निष्ठा भी

सर्वविदित थी। वय एवं अनुभव के साथ ही उनके सद्‌गुणों का उत्तरोत्तर विकास होता गया और ऐसा लगता था जैसे इससे भी बहुत ऊँचा उठने की उनमे शक्ति थी। अपनी मृत्यु के समय तो वे स्व० सरदार पटेल के समान हमारे देश के एक समादरणीय नेता बन चुके थे और उनकी ओर करोड़ो की आशाभरी आखें लगी हुई थी। अपने नवनिर्मित मध्यप्रदेश के तो वे सब कुछ थे। उसका परम दुर्भाग्य रहा कि दो महीने की अल्प अवस्था मे ही उसके पोषक पिता का स्वर्ग-वास हो गया।

शुक्ल जी के इस निधन से हिन्दी-जगत् की अपूरणीय क्षति हुई है। वे हिन्दी के सुदृढ स्तम्भ थे। अनेक कठिन क्षणो मे उनकी प्रतिभा तथा कार्य शक्ति के द्वारा हिन्दी की दुर्गम कठि-नाइयो का जिस प्रकार निराकरण हुआ है, उसे सभी सम्बद्ध लोग जानते है। जिन दिनो भारतीय सविधान परिषद् मे राष्ट्रभाषा का प्रश्न विचाराधीन था उन दिनो शुक्ल जी ने अपूर्व नेतृत्व एव सघटन शक्ति का अद्‌भुत परिचय दिया था। हिन्दी के प्रश्न पर वे सदा अविचल रहे और अपने ऊपर किसी का दबाव कभी स्वीकार नही किया। यही नही अपने इस अविचल हिन्दी-प्रेम के कारण उन्हें बड़े बड़ो से वैर भी मोल लेना पडा, किन्तु शुक्ल जी कभी कुठित नही हुए। अपने निश्चित पथ पर वे अविश्रान्त गति से बराबर आगे बढते रहे। यद्यपि हिन्दी आज सविधान द्वारा स्वीकृत राजभाषा के सिंहासन पर समासीन है और अगले ७,८ वर्षों मे उसे शासन के सभी कार्यों मे अग्रेजी का उच्च स्थान ग्रहण करना है तथापि अभी भी हिन्दी का पथ कटकाकीर्ण है। हिन्दी-विद्वेषियो की सख्या तो अधिक नही है किन्तु हिन्दी की उपेक्षा करने वालो की बहुसख्या शासन के सभी अड्डो पर जमी बैठी है। अभी हिन्दी को शुक्ल जी-जैसे अदम्य उत्साही एव निपुण हितेच्छु की बडी आवश्यकता थी। हमारे केन्द्रीय शिक्षा विभाग का हिन्दी प्रेम बहु विश्रुत है। समय समय पर यह विभाग हिन्दी की उपेक्षा करने में अपनी सारी बुद्धि लगा देता है। वह प्रकारान्तर से ऐसे उपायो की सृष्टि करता है, जिनके द्वारा हिन्दी को निर्दिष्ट समय मे अपना पद सभालने की स्थिति न आने पावे और सब सभावनाएँ दूर होती जायँ। यह स्मरणीय है कि हिन्दी के राजभाषा के रूप में स्वीकृत होने के कुछ दिनो बाद हिन्दी भाषी राज्यो के विश्वविद्यालयो के उपकुलपतियो का एक सम्मेलन पटना मे हुआ था जिसमे यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया था कि वैज्ञानिक विषयो की पारिभाषिक शब्दावलियाँ विश्वविद्यालयो के प्राध्यापको के द्वारा यथाशीघ्र तैयार कराई जायें और तत्तद् विषयो के विशेषज्ञो से हिन्दी की आवश्यकताओ की पाठ्य पुस्तके भी तैयार कराई जायँ। इस कार्य का आरम्भ भी यत्र तत्र होने जा रहा था कि इसी बीच केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विभाग ने इन दोनो योजनाओ को यह कहकर रोक देने का निर्देश जारी किया कि केन्द्रीय सरकार शीघ्र ही इन कार्यों को हाथ में लेगी। आप लोगो को इस पचडे में पड़ने की आवश्यकता नही। केंद्रीय शासन द्वारा यह कार्य हाथ में लेने की बात सुखद और सन्तोषजनक थी क्योंकि उसके पास अपार साधन थे, किन्तु सरकार ने उन कामो को तो रुकवा दिया और स्वय एक रत्ती भर का भी काम नही किया। परिणाम सामने है, आज ८ वर्ष की लबी अवधि बीत जाने पर भी हिन्दी की ये दोनों आवश्यकताए जहा की तहा बनी हुई है। किन्तु पण्डित रविशकर

शुक्ल ने अपने मध्यप्रदेश शासन की ओर से इस कार्य मे ढील नही होने दी। डाक्टर रघुवीर का सुप्रसिद्ध कोश उन्ही की प्रेरणा और सहयोग का एक उत्तम फल है, जिसका आज सभी हिन्दी-भाषी, किन्तु परन्तु, करते हुए भी, यथेष्ट लाभ उठा रहे हैं।

यही नही अभी कुछ दिन बीते हमारे केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय ने सभी राज्य सरकारो के पास यह निर्देश भेजा था कि शासन मे प्रयुक्त होने वाले टाइप राइटर के अंक रोमन रखे जायँ, क्योकि सविधान में नागरी लिपि के साथ रोमन अको को मान्यता दी गयी है। ये अक कितने अलोकप्रिय है, इसका उदाहरण केवल यही बता देने से मिल जायगा कि स्वय केन्द्रीय शासन के अनेक मत्रालयो में ही उनका उपयोग नही होता और उनकी जगह पर नागरी अंको का प्रयोग किया जाता है, किंतु फिर भी राज्य सरकारो को यह निर्देश भेजना केन्द्रीय शिक्षा विभाग का अनिवार्य कर्त्तव्य था। यद्यपि अन्य हिन्दी भाषी राज्य सरकारो ने केन्द्रीय शिक्षा विभाग की इस शुभ सम्मति का अभी तक स्वागत नही किया है तथापि हमें ज्ञात नही है कि किसी ने कोई उत्तर भी दिया हो। विश्वस्तसूत्र से हमे यह ज्ञात हुआ है कि तात्कालिक मध्य प्रदेश के मुख्यमत्री के रूप मे अकेले शुक्ल जी ने केन्द्रीय शिक्षा विभाग को मुहतोड उत्तर दिया और यह स्पष्ट कर दिया कि हम उन रोमन अको का प्रयोग नागरी लिपि के साथ कभी नही करेंगे, जो स्पष्टत नागरी अको मे कलक के समान लगते है।

इसी प्रकार कुछ वर्ष हुए केन्द्रीय शिक्षा विभाग की प्रेरणा से लखनऊ में नागरी लिपि सुधार का एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया गया था, स्वर्गीय शुक्ल जी भी उस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। उन्होने स्पष्ट शब्दो में सदा से चले आनेवाले नागरी अक्षरो के स्वरूप की रक्षा का प्रबल समर्थन किया था और ह्रस्व इ की मात्रा जैसे कुरूप एव असुविधा जनक परिवर्तनो का डटकर विरोध किया था। यही नही बहुमत से सिद्धान्त स्वीकृत हो जाने के बाद भी उन्होने हिन्दी की जन्मभूमि उत्तर प्रदेश की बेसिक कक्षाओ मे प्रचारित नागरी लिपि के विकृत सशोधनो को मध्यप्रदेश मे नही चलने दिया, जो सुधार के नाम पर आज अभिभावको के सहस्रो मुखर विरोधो के विपरीत भी हमारे राज्य के बच्चो पर बलात् लादे जा रहे है। पण्डित शुक्ल हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति के योजनाकार थे। उनकी विद्यामदिर योजना शिक्षक क्षेत्र मे एक अद्भुत प्रयोग है। वे हिन्दी को सर्वोच्च पद पर पहुँचाने के स्वप्नद्रष्टा थे। भगवान् ने उन्हे वैसी ही कार्यशक्ति तथा प्रतिभा भी दी थी, किन्तु हिन्दी का दुर्भाग्य कि आज उसके कठिन क्षणो में उसका एक प्रबल समर्थक चल बसा और सच तो यह है कि शुक्ल जी के इस आकस्मिक महाप्रयाण मे राष्ट्रभारती हिन्दी की सबसे अधिक क्षति हुई है और वह ऐसी क्षति है, जो दीर्घकाल तक किसी के द्वारा पूरी नही की जा सकती।

हम अत्यन्त भरे हृदय से उस तेजस्वी नेता की दिवगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

पुस्तक-विक्रय सम्बन्धी नवीन नियम

२५) रु० से अधिक मूल्य की पाठ्य-पुस्तकों पर पुस्तक-विक्रेताओं को १५ प्रतिशत तथा साधारण पुस्तको पर ३० प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

६) रु० से अधिक मूल्य की पुस्तके जो सम्मेलन की परीक्षाओ के पाठ्य-क्रम मे सहायक ग्रन्थो के रूप में निर्धारित है, उन पर तथा सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कोश ग्रन्थों पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

सम्मेलन के केन्द्र-व्यवस्थापको तथा पुस्तकालयो को १०) रुपया मूल्य के आर्डर पर पाठ्य-पुस्तको पर १२॥ प्रतिशत कमीशन तथा साधारण पुस्तको पर २०) रु० से अधिक के आर्डर पर २० प्रतिशत कमीशन दिया जाता है। किन्तु साथ में चौथाई मूल्य अग्रिम आना अनिवार्य है।

५००) रु० से ऊपर मूल्य की पुस्तको का रेलवे व्यय सम्मेलन वहन करता है।

पारसलो पर २ प्रतिशत पैकिंग व्यय लिया जायगा।

सम्मेलन की परीक्षाओ के परीक्षको तथा सम्मेलन के अधिकृत उपाधिधारियो को सामान्य पुस्तको २५ प्रतिशत कमीशन पर दी जाती है।

जो ... से अधिक की बिक्री करेंगे, उन्हें ... शत कमीशन दिया जायगा। ... और पाठ्य-क्रम की पुस्तको के ... अनिवार्य है।

प्रत ... थाई रकम अग्रिम भेजना आ...

आचार्य सा... ५)
तुलसी दर्श... १२)
गोरखबानी... २०)
हिन्दी का... ७॥), १०)
राजस्था...) और ११)
पालि सा... १॥)
प्रेमघन... ३॥)
शैवाल... ५)
शिशुपाल... रूपरेखा ३)
राजनीति... १०)
भारतीय... ३।॥)
आयुर्वेद... १५)
ज्योति... ८)
राजस्था... ६)
भोजपुरी... २॥)
भोजपुरी... ६॥)

...याग